UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180451
UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H83/M67Va Accession No. G.H. 1574

Author मिश्र, उमेशचन्द्र।

Title वल्मिका।

This book should be returned on or before the date last marked below.

Printed and Published **by K. Mittra, at The**
Indian Press, **Ltd** . Allahabad.

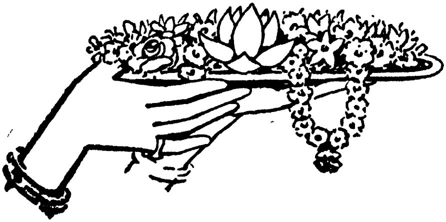

अपनी 'नन्दा' को

साभार........।

—उमेशचन्द्र मिश्र

वञ्चिता

(१)

"कौन है?" पेड़ों के झुरमुट से किसी ने कहा।

आवाज़ सुनकर तीनों अश्वारोही वहीं रुक गये। एक ने कहा—"वही मालूम होता है।"

"हाँ, है तो वही," दूसरे ने समर्थन किया।

"वही, ठीक वही," तीसरे ने भी अपना निश्चय प्रकट कर दिया।

पहला अश्वारोही घोड़े पर से उतर पड़ा। घोड़ा वृक्ष की डाल से अटका दिया। पलीते से मशाल जलाई और उसके प्रकाश के सहारे झुरमुट की ओर बढ़ा।

"ठहरो, इधर न आना। एक क़दम भी आगे बढ़ाया तो...!"

मशालवाला पहले कुछ ठिठका, फिर दो क़दम आगे बढ़ा।

"सुना नहीं, क्या तुम्हारे सर पर मौत सवार है जो...?"

"ज़रा सँभलकर बात करो, विजयपाल !"

"अरे, तुम हो मुराद बेग !"

"हाँ जनाब !"

"इधर किस लिए तशरीफ़ आ रही है ?"

"आपसे कैफ़ियत तलब करने ! सीधी तरह से इधर चले आइए और मेरे सवालों का क़ायदे से जवाब देते जाइए।"

"टेढ़े ढंग से किये गये आपके किसी भी सवाल का जवाब ..."

"देखो विजय, हम सचमुच तुमसे कुछ पूछना चाहते हैं।" दूसरे साथी ने कुछ नर्मी से कहा।

"अच्छा, आप भी हैं इम्दाद भाई। देखो, मैं साफ़ कहे देता हूँ कि आप लोगों का यह तौर-तरीक़ा मुझे क़तई पसन्द नहीं है।" विजयपाल ने अपने स्थान पर खड़े-खड़े ही कहा।

"मैं साफ़ बात पसन्द करता हूँ। चाहे कोई ख़ुश हो, चाहे नाख़ुश। मैं अपने कामों के लिए ज़िम्मेदार हूँ। तुम्हें भी अपनी ज़िम्मेदारी का ख़याल रखना चाहिये और उसी के मुताबिक़ तुम्हें अमल करना चाहिए।" मुराद ने कुछ अधिकार के स्वर में कहा।

"बात तो ठीक है। हम सब जब एक ही राह के राहगीर हैं-तब हमें एक दूसरे का रुख़ देखकर चलना होगा। अगर हम आपस ही में झगड़ेंगे तो अपनी ज़िम्मेदारी कैसे पूरी करेंगे। लेकिन तुम निकट क्यों नहीं आते, विजयपाल ! इस तरह बात का बतंगड़ बनाने से क्या लाभ ?"

"अच्छा, चम्पालाल जी भी हैं ! तुम लोगों की अगर ऐसी ही मर्ज़ी

है तो यही सही। लो, हाज़िर हो गया। क्या आज्ञा है?" विजयपाल ने तीनों व्यक्तियों के पास पहुँचते-पहुँचते कहा।

"चम्पालाल, तुम ज़रा सड़क की तरफ़ खड़े हो जाओ और इम्दाद तुम उधर बाग़ की तरफ़। हमारी बातचीत की भनक किसी ग़ैर को नहीं मिलनी चाहिए।" मुराद ने शासन के स्वर में कहा।

"ठीक है।" कहकर दोनों व्यक्ति अपने-अपने निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचकर सतर्कता के साथ खड़े हो गये।

"अब इसकी ज़रूरत नहीं," कहते हुए मुराद ने हाथ की मशाल को बुझा दिया। फिर वह तलवार की मूठ पर हाथ रख सीधा तनकर खड़ा हो गया।

"आख़िर आप लोग क्यों मेरा पीछा कर रहे हैं?" विजयपाल ने झुँझलाहट के स्वर में पूछा।

"कारण आप स्वयं जानते होंगे," मुराद ने कुछ रुखाई के स्वर में कहा।

"देखिए, आप लोग अपनी बुद्धिमानी का प्रयोग ग़लत जगह पर कर रहे हैं। मेरी समझ में नहीं आता कि आप लोग दिल्लगी कर रहे हैं या...?"

"नहीं दोस्त, दिल्लगी नहीं, सच बात है। जहाँ सैकड़ों जानों की बाज़ी लगी हो वहाँ दिल्लगी नहीं होती। तुम जानते ही हो कि हमारी थोड़ी-सी चूक हमें रसातल को पहुँचा देगी।"

"अगर दिल्लगी नहीं है तो इसके मानी यह हुए कि आप लोग मुझे संदेह की दृष्टि से देखते हैं।"

"हाँ, तुम ऐसा भी समझ सकते हो। जिस हालत में हम हैं, उसमें सूखे पत्ते की खड़क तक हमारे दिलों में संदेह उत्पन्न करने के लिए काफ़ी है। फिर यह तो हमारा अपना मामला ठहरा। हमें एक दूसरे पर अविश्वास करने का भी उतना ही अधिकार है जितना कि विश्वास करने का। हमारा काम ही कुछ इसी प्रकार का है।"

"देखो मुराद, यह मेरा अपमान है। मैं इसे सहन नहीं कर सकता।" तलवार को म्यान से बाहर करते-करते विजय ने कहा।

"इसकी मुझे रत्ती भर परवाह नहीं है। तुम्हें याद होगा, तुम लोगों ने मुझे अपना सरदार चुना था। तुम्हें सरदार की आज्ञा माननी होगी।"

"बेशक, पर सरदार होने से ही क्या गाली-गलौज और अपमान करने का अधिकार मिल जाता है! सरदार को मैंने अपना सिर सौंपा है, वह हाज़िर है।"

"वह सिर ग़लत जगह पर न कट जाय, इसका ख़याल रखना सरदार का काम है! पर इस बहस से क्या लाभ, जो कुछ मैं कहता हूँ, उसे मानना होगा। बोलो, इसके लिए तैयार हो?"

"अवश्य, पर एक मूक पशु की तरह नहीं।"

"एक सिपाही की तरह, एक मित्र की तरह, या जिस तरह भी तुम समझो। पर यह याद रखो, इस तरह हम, अपने उद्देश्य में कभी सफल नहीं हो सकते।"

"अपनी बात साफ़ साफ़ क्यों नहीं कहते। सफलता-असफलता हमारे हाथ की चीज़ नहीं है। जो कुछ हमें करना है, उसी पर बातें करना ठीक होगा।"

"तो जानते हो, इस जाड़े-पाले की अँधेरी रात में, जब कि कुत्ते भी किसी गर्म जगह पर मुँह छिपाये पड़े होंगे, हम क्यों इधर आये ?"

"यही तो जानना चाहता हूँ ?"

"पर यदि यह बता दो कि तुम यहाँ किस लिए आये तो फिर हमें अपने आने का कारण बताने की ज़रूरत न पड़े।"

"मैं इधर अपने निजी काम से आया हूँ।"

"और वह तुम्हारा निजी काम ही एक ऐसा काम है जो हमें सन्देह में डालता है। प्रबंध ठीक रहने के लिए प्रत्येक वस्तु का ठीक समय में और ठीक स्थान पर होना आवश्यक है। तुम इस समय जहाँ पर हो, क्या वहीं पर तुम्हें होना चाहिए था ?"

"नहीं, लेकिन कुछ कारणों ने इधर आने के लिए मुझे विवश कर दिया। जो भी हो, इससे हमारे सम्मिलित कार्य में कोई हानि नहीं पहुँच सकती।"

"न पहुँचे हानि, पर हानि की सम्भावना भी कम चिन्ताजनक नहीं होती। इसी लिए मैं तुमसे कुछ सफ़ाई चाहता हूँ।"

"ठीक है। आप पूछिए, मैं उत्तर देता हूँ।"

"पहले मेरी बात सुन लीजिए। जहाँ मैं ग़लती करूँ, वहाँ रोक देना। हम तीन दोस्त आपस में मंत्रणा कर रहे थे। हमारे दिलों में एक ही दर्द था, इसी लिए हम तीनों एक थे। बीच में तुम भी आ पड़े। हममें से कोई तुम्हें बुलाने नहीं गया था। हम यह भी नहीं जानते थे कि तुम मुग़लों के दुश्मन हो या भेदिया। सिर्फ़ चम्पालाल ने तुम्हारा परिचय देते

हुए कहा था कि तुम बैरम ख़ाँ से अपने चाचा की हत्या का बदला लेने के लिए व्याकुल हो।"

"बिलकुल ठीक है।"

"इसके बाद हमने तुम्हें अपने दल में शामिल कर लिया और तुम पर पूरा विश्वास करने लगे। धीरे-धीरे तुम हमारी सारी योजनायें जान गये। हम अपनी गुप्त मंत्रणाओं में भी तुम्हें शामिल करने लगे।"

"मैं मानता हूँ।"

"पिछली बैठक में बैरम ख़ाँ की हत्या का सुझाव तुम्हीं ने पेश किया था। तुम्हारी दलील थी कि जब तक बैरम ख़ाँ के जबर्दस्त हाथ का साया अकबर के सिर पर है, तब तक बालक होने पर भी अकबर का बाल तक बाँका करना सम्भव नहीं। इसी लिए बैरम ख़ाँ की जान लेने का प्रबन्ध सबसे पहले करना चाहिए।"

"मैं अपनी राय पर क़ायम हूँ।"

"कहने की ज़रूरत नहीं कि हममें से हर एक उस नरक के कुत्ते के ख़ून से अपने हाथ रँगना चाहता था। और हममें सबसे अधिक उतावले तुम थे।"

"वह तो मैं अब भी हूँ।"

"यही तो जानना है कि वास्तव में तुम अब भी वैसे ही उतावले हो या नहीं। हमारी योजना के अनुसार आज, इस समय, तुम्हें आगरे की सड़क पर नवीगंज की सराय में होना चाहिए था, पर हम तुम्हें देख रहे हैं क़न्नौज की ओर जाते हुए—जहाँ हमारा जानी दुश्मन मुग़लों का नया चकलेदार आकर ठहरा है।"

"इसका मतलब यह कि आपकी समझ में मैं अब अपनी योजना का भेद देने के लिए चकलेदार के पास जा रहा हूँ!"

"यह मैं नहीं कहता। न मैं इस तरह का सन्देह अपने मित्र पर करना चाहता हूँ। सदा की तरह मैं तुम्हें अब भी अपना परम विश्वास-पात्र समझता हूँ। पर इधर की तुम्हारी कुछ भूलें हमें दूसरी तरह सोचने के लिए मजबूर कर रही हैं। क़रीब दो महीने से तुम हमारी रात की बैठकों में शामिल होने से बराबर हीला-हवाला कर रहे हो। हमारे दिलों में सन्देह पैदा कर देने के लिए यह कम नहीं है। फिर आज हम लोगों को देखकर तुम्हारा इस तरह अँधेरे में छिप जाना क्या मानी रखता है!"

"पकड़े जाने का भय, तुम्हारी तरह, क्या मुझे नहीं हो सकता? ख़ासकर ऐसी हालत में जब कि मुग़लों के सवार हमेशा इधर-उधर गश्त लगाते रहते हैं?"

"तो तुमने हम लोगों को मुग़ल-सवार समझ लिया था—क्यों, यही न?"

"और नहीं तो क्या! फिर देखते नहीं कि मेरा घोड़ा भी ठोकर खाकर लँगड़ा हो गया।"

"यह भी मान लेता हूँ। पर इस समय तुम जा कहाँ रहे थे?" मुराद ने घोड़े की ओर ताकते हुए प्रश्न किया।

"अगर तुम मेरे पीछे-पीछे चुपचाप चले आते तो स्वयं जान जाते कि मैं कहाँ जा रहा था।"

"लेकिन यह तय है कि तुम आगरे नहीं जा रहे थे?"

"और क़न्नौज भी नहीं जा रहा था!"

"साफ़-साफ़ बातें बताओ। पहेली बुझाने की ज़रूरत नहीं है।"

"तो मेरी प्रार्थना यह है कि आप इस संबंध में परेशान न हों। यह मेरा निजी मामला है—बिलकुल निजी। न इससे आपकी कुछ हानि होगी, न आपके काम की। आपके पीछे पड़ने से न केवल मेरी, वरन् दूसरे की इज़्ज़त को भी धक्का लग सकता है। इससे कोई लाभ न होगा।"

"तो क्या किसी प्रेमिका से मिलने जा रहे थे?"

"जो भी हो।"

"मैं ऐसे चकमों में आनेवाला नहीं हूँ।"

"फिर अविश्वास! अच्छा, मैं कुछ भी कहना नहीं चाहता। आप जो करना चाहें, ख़ुशी से कर सकते हैं।"

बात को बढ़ते देख बीच-बिचाव के भाव से इम्दाद ने कहा—"सीधे-सीधे बता क्यों नहीं देते कि मामला क्या है। रात के समय हमें इस तरह यहाँ देखकर कोई क्या समझेगा? ख़ुदा न करे, अगर कहीं मुग़लों के कुत्ते इधर आ निकले तो...!"

विजय कुछ देर तक चुपचाप खड़ा रहा। मानो वह किसी बड़ी उलझन को मन ही मन सुलझाने का प्रयत्न कर रहा हो।

उसकी चुप्पी से उत्तेजित होकर मुराद फिर बोला—"सुनते हो मियाँ, मैं तुम्हारी ज़बान से सिर्फ़ वह क़लाम सुनना चाहता हूँ जो हमारे सन्देह को दूर कर दे। अगर तुम इसके लिए इसी वक़्त तैयार नहीं हो तो समझ लो कि तुम्हारे सिर की ख़ैर नहीं।"

विजय मन ही मन कुढ़कर इम्दाद की ओर देखने लगा। पर उसके मुँह से उसके समर्थन में जब एक भी शब्द न निकला तब उसका धैर्य सीमा

से बाहर हो गया। बर्छी की नोक से उसने अपनी उँगली से कुछ ख़ून निकाला और उससे अपने पटके के छोर पर कुछ लिखा। फिर उसे बायें हाथ में पकड़कर दाहिने हाथ से नङ्गी तलवार घुमाता हुआ बोला—"यह लो, तुम जो कुछ जानना चाहते हो, इसमें लिखा है। अगर तुम मेरा पर्दा उघाड़ने पर ही तुल गये हो तो इसे पढ़ लो। पर यह भी समझ लेना कि उधर तुम्हारी आँखें इन अक्षरों पर होंगी और इधर यह तलवार मेरे कलेजे के भीतर।"

यह कहकर उसने तलवार की नोक को इस तरह कलेजे के ऊपर अड़ा लिया मानो वह जो कुछ कह रहा है, उसे कर दिखाने को तैयार है।

"ठहरो। यह क्या बच्चों की तरह खिलवाड़...!" कहते हुए मुराद ने लपककर उसकी कलाई पकड़ ली।

वातावरण को शान्त करने के प्रयत्न में इम्दाद ने भी कहा—"तुम्हारी ऐसी बातें हमें ज़रा भी पसन्द नहीं हैं, विजय। आख़िर मुराद ने ऐसी कौन-सी बात कही थी जिससे तुम आपे से बाहर हो गये। और मुराद, तुम भी तो बात का बतंगड़ बनाने लगते हो। विजय उन लोगों में नहीं है जो अपने दिल की बात दोस्तों से छिपाते हैं। यदि तुम उससे नर्मी से कहते तो मुझे विश्वास है कि वह अपना सारा भेद हमें प्रसन्नता से बतला देता।"

"अच्छा, मेरे भाई!" मुराद ने विजय को गले लगाते हुए कहा—"तुम नहीं जानते कि मैं तुम्हें कितना प्यार करता हूँ! पर कर्त्तव्य हमें सबसे अधिक प्यारा होना चाहिए। जहाँ तक मेरा अपना सवाल है, मैं तुम्हारे पैरों की धूल अपनी पलकों से साफ़ करने को तैयार हूँ। पर जहाँ मैं सरदार हूँ, क्योंकि तुम्हीं लोगों ने मुझे ऐसा मान लिया है, वहाँ मैं रत्ती

भर रिश्रायत करने को तैयार नहीं हूँ। तुम मेरी गर्दन काट लो, यह मुझे मंज़ूर है, पर मुझे तुम्हारी हरकतों पर सन्देह करने का मौक़ा मिले, यह मुझे मंज़ूर नहीं है।"

"ऐसी हालत में दिल से सन्देह का निकाल डालना ही अच्छा है।"

"पर यह मेरे नहीं, तुम्हारे करने का काम है। तुम कहते हो कि तुम क़न्नौज नहीं जा रहे हो। इसके साथ साथ यह भी सच है कि तुम आगरे भी नहीं जा रहे हो। फिर ऐसी जाड़े-पाले की रात में तुम्हें कहाँ जाने की ज़रूरत पड़ गई? इधर तो कोई ऐसी आबादी भी नहीं है।"

क्षण भर की चुप्पी के बाद विजय ने कहा—"जब ऐसी बात है, तब यही उचित प्रतीत होता है कि तुम स्वयं चलकर अपनी आँखों सब कुछ देख लो।"

"और हम लोग क्या यहीं खड़े रहेंगे?" इम्दाद ने कुछ व्यग्रता के साथ कहा।

"नहीं, तुम लोग भी चलो। जब भेद खुलना ही है तब जैसे एक ने जाना, वैसे ही हज़ारों ने जाना।"

विजय के इस तरह तैयार हो जाने पर मुराद कुछ आश्वस्त हुआ। उसने चम्पालाल को भी संकेत किया। वह इस समय भी अपने स्थान पर खड़ा तत्परता के साथ पहरा दे रहा था। चारों मित्र घोड़ों की लगामें हाथों में पकड़े धीरे-धीरे दक्षिण की ओर चल दिये और लगभग एक घंटे बाद काली नदी के तट पर जा पहुँचे।

नदी के कगार पर खड़े होकर विजय ने कुछ देर तक इधर-उधर

देखा। फिर दूसरे किनारे की ओर उँगली उठाते हुए मुराद से कहा—“कुछ देख रहे हो?”

“कात्यायनी माई के थान की दीवाल के सिवा मुझे तो और कुछ भी दिखाई नहीं देता?” मुराद ने इंगित दिशा की ओर ध्यान के साथ देखते हुए उत्तर दिया।

“उधर देखो, सामने—दीवाल की ओर।”

“हाँ, एक खिड़की दिखाई पड़ रही है।”

“तो मैं वहीं जा रहा था।”

“वहाँ जाकर क्या करते?”

“उस खिड़की में, जँगले के पीछे, कोई मेरी राह देख रहा होगा।”

“कात्यायनी माई के थान में···!”

“हाँ वहीं। थान में एक लड़की रहती है। उसे मैं···!”

“उसे तुम प्यार करते हो, यही न? पर यह तो बताओ कि जहाँ परिन्दा तक पर नहीं मार सकता, वहाँ घुसकर डाका मारना तुम्हारे लिए कैसे संभव हो सका?”

“थान के माली की सहायता से। लड़की से अधिक उस माली की पूजा मुझे करनी पड़ी है!”

“क्या जान-पहचान भी माली के ज़रिये ही हुई थी?”

“नहीं, पिछले साल फूलमती देवी के मेले में कात्यायनी माई के साथ वह भी गई थी। वहीं मैंने उसे देखा और उसने मुझे। उस समय ऐसा लगा मानो आँखों ही आँखों में हम दोनों ने अपने-अपने दिल बदल लिये हैं।”

"क्या तुम रोज़ रात को यहाँ आते हो?"

"रोज़ तो नहीं, पर अकसर आया करता हूँ। इसी से पिछले दिनों तुम्हारी रात की बैठकों में शामिल न हो सका।"

"बहुत संभव है। पर नदी में पानी रहता है, जानवर भी कम नहीं हैं। अँधेरी रात में उसे तुम पार कैसे कर जाते हो?"

"प्रेम साहस देता है। उसकी प्रेम-पूर्ण चितवन रक्षा-कवच का कार्य करती है। फिर प्रियतम की राह में मर जाना भी क्या बुरा है? ख़ासकर मेरे जैसे आदमी के लिए, जिसका दुनिया में कहीं कोई नहीं है। जीवन में कोई आकर्षण नहीं है।"

"तुम बहुत साहसी हो भाई, साथ ही सज्जन भी। तुमने हमारे दिल पर से एक भारी बोझ उतार दिया। तुम नहीं जानते कि इस मामले को लेकर हम लोग कितने परेशान थे।"

"पर बोझ तुम्हारे दिलों पर से उतरकर मुझ ग़रीब के दिल पर आ गया, यह भी जानते हो?"

"वह कैसे?"

"अपने इस व्यवसाय को मैं गुप्त रखना चाहता था। अकेले मुझ पर उसकी हानि और लाभ की ज़िम्मेदारी थी। आज वह मेरा गुप्त भेद प्रकट हो गया। जो वस्तु आज तक अकेली मेरी थी, वह आज···।"

"नहीं भाई, तुम्हें ऐसा न सोचना चाहिए। हम तुम्हारे अपने हैं, ग़ैर नहीं! हम लोगों के बीच की बात तुम्हें ऐसी ही समझनी चाहिए मानो वह तुम्हारे दिल के भीतर ही है।"

"ख़ैर, इन बातों से अब कुछ लाभ नहीं। मुझे आज उससे अन्तिम भेंट करनी है।"

"ऐसा क्यों?"

"आज ही मुझे आगरे की ओर चल देना है। वहाँ से लौट सकूँगा या नहीं, कौन जानता है?"

"तुम्हें दुख हो रहा है?"

"अवश्य; पर दूसरा उपाय क्या है?"

"यही कि तुम वहाँ न जाओ।"

"मैंने अपने सिर पर जो ज़िम्मेदारी ली है, उसे अवश्य पूरा करना है। दिल रोया करे, पर हाथ अपना काम अवश्य करेंगे।"

"जब तक दिल और हाथ साथ नहीं होंगे, तब तक ऐसा नाज़ुक काम सँभलेगा नहीं।"

"न सँभले; इसके लिए कोई चारा नहीं है।"

"अगर तुम अपनी ज़िम्मेदारी को पूरा कर सके तो जानते हो, क्या होगा! तुम्हारा नाम इतिहास में मोटे-मोटे अक्षरों में लिखा जायगा। आनेवाली पीढ़ियाँ तुम्हें सम्मान के साथ याद करेंगी, तुम देश को एक बहुत बड़ी मुसीबत से बचा लोगे।"

"सब समझता हूँ। पर तसवीर का एक दूसरा रुख़ भी हो सकता है, जो उतना लुभावना नहीं है।"

"सच कहते हो। पर मुझे विश्वास है कि उसके लिए तुम हमारी अपेक्षा कम तैयार नहीं हो। ऐसी बड़ी ज़िम्मेदारी अपने ऊपर लेते समय

तुमने कहा था कि जो उद्देश्य जितने ऊँचे होते हैं, उनके लिए उतनी ही अधिक क़ीमत चुकानी पड़ती है।"

"अगर मेरी राय पूछो तो मैंने तसवीर का यही दूसरा रुख़ अपने लिए चुना है। अगर भाग्य से वह पहलू हाथ लगा, जिसकी ओर तुम्हारी आँखें लगी हैं, तो वह तुम्हारे लिए होगा, मेरे लिए नहीं।"

"एक प्रार्थना और है। मुझे पूरी आशा है कि उसे अवश्य स्वीकार कर लोगे। मैं केवल उत्सुकता के कारण यह और देखना चाहता हूँ कि तुम अपनी प्रेमिका से किस तरह भेंट करते हो। आशा है कि तुम इसमें बुरा न मानोगे।"

"अर्थात् अभी तक सन्देह बना हुआ है?"

"नहीं मित्र, यह बात नहीं है। पर अगर सन्देह हो भी तो कुछ अस्वाभाविक बात नहीं है। तुम जानते हो, मैं अपने बारे में भी सदा संदेहशील रहता हूँ। हम जिस हवा में चलते-फिरते और साँस लेते हैं, उसमें सन्देह की गुञ्जाइश सब जगह है। फिर भी ज़िन्दा रहना पड़ता है। तुम्हें बुरा न मानना चाहिए।"

मुराद के शब्दों में इस बार बहुत अधिक नम्रता थी।

विजय ने अपने घोड़े की बागडोर जवासे के एक पौदे से अटका दी। मुराद ने भी उसका अनुकरण किया। फिर दोनों नदी में उतरे। पानी घुटनों तक था। कुछ ही देर में दोनों दूसरे किनारे पर दीवाल के नीचे पहुँच गये। इस बार मुराद ने स्पष्ट देखा कि एक नारी-मूर्त्ति जँगले के भीतर से बाहर झाँक रही है। वह खिड़की से कुछ दूर, दीवाल से सटकर, खड़ा हो गया। विजय खिड़की के ठीक नीचे पहुँच गया। विजय की

ओर एक क्षण तक देखकर उस रमणी ने अपना हाथ जँगले से बाहर लटका दिया। विजय ने उसका हाथ अपने हाथ में लेकर चूमा, फिर हृदय से लगा लिया। कई क्षण तक दो में से किसी के मुँह से कोई शब्द न निकल सका।

इसी समय मुराद ने कुछ संकेत किया और उत्तर की प्रतीक्षा बिना किये ही वह दबे पाँव नदी के उसी किनारे की ओर लौट गया जिधर से आया था।

---

(२)

क़न्नौज से पाँच मील पूर्व में शेरशाह ने दो इमारतें बनवाई थीं— एक तो मस्जिद थी जो ठीक उस स्थान पर बनी है जहाँ पर उसने मुग़ल सम्राट् हुमायूँ को अन्तिम बार हराया था और दूसरा कात्यायनी देवी का थान, उक्त मस्जिद से पूर्व-उत्तर की ओर, काली नदी के तट पर। इन दोनों इमारतों के खँडहर दाइपुर या शेरगढ़ के आस-पास अब भी देखे जा सकते हैं।

कहते हैं कि जब शेरशाह अपनी सेना के साथ हुमायूँ का पीछा करता हुआ जौनपुर से क़न्नौज की ओर बढ़ रहा था, उसे एक जगह गंगा के किनारे एक छोटा-सा सुन्दर मन्दिर दिखाई दिया। इसके सामने एक सुन्दर से चबूतरे पर वटवृक्ष की घनी छाँह थी। वहाँ बैठी हुई एक युवती संन्यासिनी शेरशाह की सेना की ओर निरपेक्ष भाव से देख रही थी। संन्यासिनी के मुख-मंडल पर ऐसी दिव्य आभा थी कि शेरशाह उसकी उपेक्षा न कर सका। वह घोड़े से उतर पड़ा और अकेला जाकर चबूतरे के

नीचे सिर झुकाकर चुपचाप खड़ा हो गया। संन्यासिनी ने उसकी ओर दृष्टि फेरकर पूछा—"क्या चाहता है?"

"प्यास लगी है, मा।" शेरशाह ने विनीत भाव से उत्तर दिया।

"ठहर, जल लाकर तुझे पिलाती हूँ।" संन्यासिनी ने मन्दिर की ओर देखते हुए कहा।

"नहीं मा, इतना कष्ट न कीजिये।" कहकर शेरशाह मानो चलने के लिए उद्यत हो गया।

"क्यों, प्यास लगी है तो पानी पिये जा न!"

"दुआ काफ़ी होगी मा, पानी तो कहीं भी मिल जायगा।"

"तू वीर है। तेरी अवश्य विजय होगी।" नेत्रों से वात्सल्य की धारा प्रवाहित करते हुए संन्यासिनी ने आशीर्वाद दिया। शेरशाह गद्गद हो गया। उसे संन्यासिनी के शब्द दैवी वरदान से प्रतीत हुए।

"मा तेरी पूजा घी-शक्कर से करूँगा," कहता हुआ वह सेना की ओर चला गया। अपनी विजय के संबंध में उसे अब दृढ़ विश्वास हो गया था।

शिविर में पहुँचकर संन्यासिनी के वरदान को शेरशाह ने बहुत बढ़ा-चढ़ाकर अपने सरदारों को सुनाया। इससे उनका उत्साह दो गुना हो गया। लड़ाई से पहले महीने भर तक दोनों सेनायें आमने-सामने पड़ी रहीं और इस बीच शेरशाह प्रतिदिन कात्यायनी देवी के दर्शनार्थ जाता रहा। देवी का वरदान सच हुआ और लड़ाई होने पर हुमायूँ बुरी तरह पराजित हुआ। फिर देश में पैर टिकाना उसके लिए असंभव हो गया। विजयी शेरशाह ने विजय के दूसरे ही दिन संन्यासिनी से फिर भेंट की और इस

बार उसने दूर ही से भूमि पर गिरकर साष्टांग प्रणाम किया और आज्ञा चाही। संन्यासिनी ने कहा—"मुझे तू क्या देगा? पर यदि तू कुछ करना ही चाहता है तो यहाँ नदी के किनारे एक ऐसा मकान बनवा दे जिसमें अनाथ स्त्रियाँ आश्रय पा सकें। यह काम तेरे यश के अनुकूल होगा।"

संन्यासिनी का संकेत उन अभागिनों की ओर था जिन्हें मदोन्मत्त मुसलमान सैनिक बलात् भ्रष्ट कर देते थे और फिर जिनके लिए हिन्दू-गृहस्थों के द्वार सदा को बन्द हो जाते थे। उत्तर-भारत में उन दिनों सैन्य-संचालन और युद्ध के दृश्य अविरल थे, इसलिए ऐसी भ्रष्टाओं की संख्या में भी बहुत वृद्धि हो गई थी। उनकी रक्षा के लिए ही संन्यासिनी ने शेरशाह से ऐसी माँग की थी।

संन्यासिनी के कथनानुसार शेरशाह ने एक बहुत बड़ा घर काली नदी के किनारे पर बनवा दिया। इसकी रचना बहुत कुछ क़िले जैसी थी। उसका निर्माण जन-कोलाहल से दूर नदी के शान्त और एकान्त वातावरण में किया गया था। वह बाहर चारों ओर से एक मोटी दीवाल से घिरा था जिसमें दक्षिण की ओर केवल एक प्रधान द्वार था। रसद के लिए द्वार के फाटक सप्ताह में केवल एक बार खुलते थे।

सदर फाटक के अतिरिक्त एक छोटा-सा द्वार पूर्व की ओर भी था। यह शरणार्थिनियों के प्रवेश के लिए था। पास ही आम का एक घना बाग़ था, जिसमें एक माली रहा करता था। माली के संकेत देने पर संन्यासिनी—जिसे उस घर के निवासी कात्यायनी माई कहकर पुकारते थे—स्वयं आकर द्वार खोलतीं और दुःखिनी बहिनों को मधुर वचनों से आश्वासन देती हुई भीतर ले जातीं।

इस आश्रम को लोग कात्यायनी माई का थान कहते थे। इसका प्रबन्ध ऐसी सावधानी से होता था कि बाहर के मनुष्य के लिए यह जानना असंभव था कि उसमें कौन कहाँ रहता है। कात्यायनी माई की देख-रेख में उसकी आश्रिताएँ निश्चिन्तता के साथ सात्विक जीवन व्यतीत किया करती थीं।

इस थान की उत्तर ओर की खिड़की के नीचे, जो काली नदी की ओर खुलती थी, अपने सन्देहशील साथियों को बिदा करने के बाद विजय खड़ा था। कुछ क्षण तक एकटक उसके मुख की ओर निर्निमेष भाव से देखकर रमणी कण्ठ ने कहा—"तुम आज भी आ ही गये? देखो न, कैसी सर्दी है। पाला पड़ रहा है। फिर नदी का पानी—कहीं कुछ हो गया तो···!"

"नहीं नन्दा, मुझे कुछ नहीं होने का। तुम्हारी भोली-भाली चितवन मेरे लिए रक्षा-कवच का काम देती है।"

"तुम बड़े अच्छे हो, प्यारे विजय; जो मुझ जैसी अनाथ लड़की के लिए इतना कष्ट उठा रहे हो। मैं तुम्हारी कृपा का बदला कैसे चुका सकूँगी!"

"पर यह क्या?" एकाएक चौंककर विजय ने कहा—"आज तुम्हारी आँखें गीली क्यों हैं? क्या कोई विशेष बात है?"

"कुछ नहीं, आज सवेरे से ही मेरी आँखों से आँसू...!"

"तुम्हें मेरी क़सम है, सच सच बतलाओ, क्या हुआ है तुम्हें?" विजय ने चाहा कि रूमाल से नन्दा के आँसू पोंछ दे पर खिड़की काफ़ी ऊँची थी। उसने नन्दा का हाथ ज़ोर से अपने दोनों हाथों में दबा लिया।

"क्या बतलाऊँ, आज सबेरे ही सबेरे कात्यायनी माई ने मुझे बुलवाया। जब मैं गई तब पहले तो उन्होंने मुझे अपने पास बिठाकर प्यार किया, मेरे सिर पर हाथ फेरा, फिर आँखों में आँसू भरकर कहने लगीं—"बेटी नन्दा, इस आश्रम की लड़कियों में तू ही मुझे सबसे अधिक प्यारी है। तेरी अभागी मा आश्रम बनने के कुछ ही दिन बाद मेरे साथ ही यहाँ आई थी और तुझे मेरी गोद में सौंपकर न जाने कहाँ चली गई। आज पन्द्रह वर्ष से तू मेरी आँखों का तारा बनकर यहाँ रह रही है। लेकिन आज तेरे कुटुम्बवालों ने तुझे याद किया है। मुझे विश्वास है कि वहाँ जाकर तू अधिक प्रसन्न रह सकेगी। तुझे आज ही अपने जाने की तैयारी कर लेनी चाहिए।"

"लेकिन तुम तो सदा यही कहती रही हो कि तुम्हारे कहीं कोई नहीं है?" विजय ने आश्चर्य से कहा।

"अब तक मैं जो सुना करती थी, वही कहा करती थी। आज जो कुछ सुना, वह भी कह दिया।"

"कैसी भोली-भाली हो तुम नन्दा! मुझे डर है कि तुम्हारे यहाँ से हटाये जाने में कोई षड्यंत्र न हो?"

"कात्यायनी माई छल-छन्द नहीं जानतीं। वे सदा सत्य बोलती हैं।"

"इसी लिए वे भुलावे में भी सहज ही आ सकती हैं। मेरा मतलब यह है कि जिन्होंने तुम्हें बुलाया है, वे तुम्हारे घरवाले हैं, इसका क्या प्रमाण है?"

"प्रमाण मैं क्या दे सकती हूँ। मुझे तो केवल कात्यायनी माई ने आज्ञा दी है।"

"और तुमने बिना कुछ कहे-सुने उस आज्ञा को मान भी लिया है?"

"मुझे जन्म से ही उनके आज्ञा-पालन का अभ्यास रहा है। आज कोई नई बात कैसे कर सकती थी ?"

"पर अब तुम नासमझ नहीं हो। अपने हित-अहित का विचार कर सकती हो।"

"मैं कुछ नहीं कर सकती। वे मेरी संरक्षिका हैं। मुझसे अधिक उन्हें मेरे हिताहित का ध्यान हो सकता है!"

"तो तुम जाने के लिए स्वयं ख़ुशी से तैयार हो?"

"नहीं विजय, तुम नहीं जानते कि तुम्हारे कारण यह आश्रम और यहाँ का वातावरण मुझे कितना प्यारा हो गया है। इसी तरह इस खिड़की पर बैठकर तुम्हारी प्रतीक्षा में आँखें बिछाते-बिछाते मेरी सारी आयु कट जाती तो संसार में मैं शायद सबसे अधिक सुखी होती। पर देखती हूँ कि देवता मेरे इस सुख से भी ईर्ष्या कर रहे हैं।"

"कुछ समझ नहीं पड़ता कि भाग्य हमें किस ओर ले जाना चाहता है। यह तो तुम जानती ही हो कि तुम्हारे सिवा मेरे पास जीवित रहने के लिए दूसरा सहारा नहीं है। अच्छा, यह बता सकती हो कि तुम्हें कहाँ जाना होगा ?"

"जगह का नाम मुझे नहीं मालूम, पर कहीं आगरे के पास जाना होगा ?"

"आगरे के पास!" विजय को इन शब्दों से वैसा ही आश्वासन मिला जैसा किसी अथाह जल में डूबते-उतराते व्यक्ति को पैरों से पृथ्वी छू जाने पर मिलता है। उसने पूछा—"अच्छा, तो जाओगी तुम किस तरह ? मेरा

मतलब यह कि सवारी क्या रहेगी ? साथ कौन जायगा ? किस समय यहाँ से चलोगी ? बीच में कहाँ-कहाँ ठहरोगी ?"

"माता शचीदेवी शायद मेरे साथ जायँगी। हम लोग बहली पर कल तड़के ही प्रस्थान करेंगे। साथ में हीरा माली गाड़ीवान बनकर जायगा। माई जी ने उससे कह दिया है कि थोड़ी-थोड़ी दूर पर विश्राम करते हुए जाना जिससे यात्रा में अधिक कष्ट न हो।"

"माता शचीदेवी का स्वभाव कैसा है ?"

"बहुत भोला-भाला।"

"तब तो ईश्वर और भाग्य हमारे अनुकूल दिखाई दे रहे हैं, नन्दा ! आँखें बन्द रहने पर भी हमारी आहुति यज्ञ-कुण्ड के ठीक बीच में ही गिर रही है।"

"कैसे...?" नन्दा ने कुछ विस्मय के आवरण में अपनी प्रसन्नता को छिपाते हुए कहा।

"ईश्वर की माया है। कल मुझे भी एक आवश्यक कार्य से आगरे की ओर जाना है।"

"वह 'आवश्यक कार्य' मैं जानती हूँ। पर तुम्हारा इस तरह मेरे साथ-साथ आगरा चलना क्या उचित होगा ?"

"तुम ठीक नहीं समझीं। यदि तुम न जातीं तो भी मुझे आज आगरे की ओर जाना पड़ता। काम ही ऐसा आ पड़ा था।"

"तो तुम आज मुझसे बिदा लेने आये थे ?" सिहरते हुए नन्दा ने पूछा।

"पर विधाता का विधान तो देखो कि बिदा तुम्हीं ने माँगी, मैंने नहीं।"

"अर्थात् यह केवल संयोग की बात है कि हमारी यात्रायें एक ही दिन और एक ही दिशा की ओर हो रही हैं ?"

"मैं इसे भाग्य ही कहूँगा। अब हमें एक-दूसरे के निकट रहने का अवसर मिलेगा।"

"यह कैसे हो सकता है। मुझे तो ऐसा दिखाई पड़ता है कि तुम मेरे पास तक नहीं आ सकोगे !"

"तुम भी बडी भोली हो। बात यह है कि मैं घोड़े पर यात्रा करूँगा। साथ में मेरा विश्वासपात्र साईस रामपाल रहेगा। हम लोग प्रारंभ में ऐसा भाव दिखलायेंगे मानो हम एक-दूसरे से अपरिचित हैं। फिर लम्बे सफ़र में एक ही ओर चलनेवाले मुसाफिरों में जान-पहचान तो हो ही जाती है। इस प्रकार इस संयोग का लाभ उठाने का हमें स्वाभाविक अवसर मिल जायगा।"

"मेरे लिए इतना ही काफ़ी होगा कि बहली के पर्दे की आड़ से तुम्हारा दर्शन करती रहूँ।"

"मैं अपना घोड़ा तुम्हारी बहली के आस पास रखूँगा। मुझे भी यह अनुभव करके सुख मिलेगा कि मैं तुम्हारे निकट ही हूँ।"

"तुम कितने अच्छे हो मेरे विजय !"

"और तुम नन्दा ?"

इसी समय थान के आँगन में कुछ खटका सुनाई दिया। नन्दा ने चट से अपना हाथ खींचकर खिड़की बन्द कर ली। कुछ क्षण तक स्तब्ध होकर वहीं खड़े रहने के बाद विजय धीरे-धीरे नदी की ओर चल दिया।

---

(३)

यात्रा की पूरी तैयारी करके जिस समय विजयपाल ने घोड़े की रकाब पर पैर रखा, उस समय सूर्य आकाश में नेज़े भर ऊँचा चढ़ आया था। तुरन्त ही उसके मन में प्रश्न उठा—'नन्दा इस समय कहाँ पर होगी?'

मन ने ही उत्तर भी दे दिया—'यदि नन्दा ने सबेरे तड़के ही प्रस्थान कर दिया होगा तो वह निश्चय ही तीन-चार कोस निकल गई होगी और इस समय उसकी बहली फतहपुर के आस-पास कहीं चरमर करती आगे बढ़ती होगी। पर यदि उसे भी चलने में देर हो गई होगी तो अभी वह बड़ी सड़क पर भी न पहुँची होगी।'

दोनों ही बातें संभव थीं—और इन दोनों सम्भावनाओं के बीच विजयपाल यह निश्चय न कर सका कि नन्दा की बहली के साथ-साथ चलने के लिए उसे अपने घोड़े की चाल बढ़ानी चाहिए या घटानी। जो भी हो, वह चलता ही रहा। उसके पीछे-पीछे रामपाल तसली-तोबड़ा और अन्य आवश्यक सामान पीठ पर लादे आ रहा था।

तीन-चार मील तक दोनों में कोई बातचीत नहीं हुई। रामपाल ने समझा, मालिक अपने स्वभावानुसार इस समय जगदंबा का ध्यान कर रहे हैं जैसा कि किसी लम्बी यात्रा के लिए प्रस्थान करते समय वे प्रायः किया करते हैं। इस समय उनसे कुछ भी छेड़-छाड़ करना यात्रा के लिए अमागलिक हो सकता है।

विजयपाल अपने विचारों में मग्न था। उसका ध्यान न घोड़े की ओर था, न रामपाल की ओर। नन्दा की मधुर स्मृति और अपना अंधकारपूर्ण भविष्य उसके हृदय को इस समय समान रूप से मथ रहे थे। दोनों वस्तुएँ हृदय के निकटतम थीं। दोनों में से किसी एक को भी छोड़ना संभव नहीं। किन्तु इन दो परस्परविरोधी भावनाओं का भार हृदय पर लादे वह कब तक चल सकेगा! इधर नन्दा है—आशा की भाँति मोहिनी और मृदुल, उधर कर्त्तव्य है—भाग्य की भाँति सत्य और कठोर!

मार्ग की परिचित वस्तुएँ एक एक करके पीछे छूटने लगीं। पर अपने ही द्वन्द्व में तल्लीन विजय को उनकी ओर ध्यान देने का अवकाश नहीं था।

धीरे-धीरे वह बड़ी सड़क पर आगया। यही सड़क आगरे को जाती है। एक बार आँखें उठाकर विजय ने इधर-उधर देखा। कोई बहली नहीं थी। फिर उसने ध्यान से सड़क को देखा। अनेक बहलियों के पहियों के निशान बने थे जिनमें से कुछ ताज़े भी थे। इन्हीं में से कोई निशान नन्दा की बहली का भी हो सकता है—या फिर, कौन जाने, वह अभी तक आई ही न हो!

मन मारकर विजय ने घोड़े की रास पश्चिम की ओर मोड़ी। कुछ ही

दूर आगे सोलह कहार एक तामजान को कंधों पर उठाये चले जा रहे थे। अगल-बग़ल दो-दो सशस्त्र अश्वारोही चल रहे थे। किसी गाँव•ठाकुर के की सवारी प्रतीत होती थी। जान-पहचान करना इस समय विजय को अभीष्ट न था। उसने घोड़े की रास कुछ और ढीली कर दी। घोड़ा और धीमा चलने लगा।

मकरन्दनगर से कुछ आगे चलने पर अचानक, दूर पश्चिम में, किसी बहली की लाल छतरी की झलक दिखाई दी। विजय के हृदय में आशा का संचार हुआ। एक बार मन में आया कि घोडे को एड़ लगाकर बहली को पकड़ लिया जाय। उसने पीछे मुड़कर रामपाल को देखा। लगभग दो सौ क़दम के फ़ासले पर वह पीछे पीछे आ रहा था। रामपाल की धीमी चाल पर उसे बड़ी झुँझलाहट हुई। फिर अनावश्यक एड़ जमाकर और लगाम खींचकर उसने घोडे को गर्म किया और जब घोड़ा भाग खड़ा होने के लिए उतावला हो उठा तब उसे बलपूर्वक रोकते हुए एक कोड़ा और जमा दिया। दमदार ताज़ी इस तिरस्कार को न सहकर दहाने पर भरसक ज़ोर आज़माई करने लगा। रुके हुए उद्वेग से उसकी छाती फैल गई और तंग के एक ओर का तस्मा टूट गया।

रकाब से पैर निकालकर विजय चट घोड़े पर से कूदकर सड़क पर खड़ा हो गया और क्रोधपूर्ण दृष्टि से कभी रामपाल और कभी घोड़े की ओर देखने लगा। घोड़ा उत्तेजना की चरम सीमा पर पहुँचकर दहाने का शासन अस्वीकार कर रहा था। रामपाल ने दूर से ही घोड़े को आवाज़ देते हुए अपनी चाल बढ़ाई और क्षण भर में ही पास आ पहुँचा।

"बड़ा पाजी जानवर है!" विजयपाल ने कहा।

"दो महीने से बँधा रहा है, मालिक," रामपाल ने सफ़ाई देते हुए कहा—"दो मंज़िल चलने के बाद ठीक हो जायगा।"

"अभी तो यह बहुत परेशान कर रहा है। देखो, इसने भड़ककर तंग का तस्मा तोड़ डाला है।"

"मैं ठीक किये देता हूँ, सरकार," कहते हुए रामपाल ने घोड़े की रास थाम ली और चुमकारते हुए उसे सड़क के एक किनारे ले गया। विजयपाल उससे कुछ दूर हटकर खड़ा हो गया।

"क्या इसके साथ-साथ हमें भी अब पैदल ही चलना होगा?"

"नहीं मालिक, सवार होकर चलिए। फिर बिगड़े तो दो-एक मील की दौड़ लगा दीजिये। मैं ठिकाने पर आ मिलूँगा।" तस्मे को सँभालकर विजयपाल के हाथ में घोड़े की रास देते-देते रामपाल ने कहा। विजयपाल के पीठ पर पहुँचते ही घोड़ा फिर बिगड़ा। इस बार विजयपाल ने उसकी रास उठा दी और एड़ का इशारा देते हुए कहा—"तो मैं चल रहा हूँ।"

"चलिये, मैं आ जाऊँगा।" रामपाल ने अर्ध स्पष्ट स्वर में कहा।

घोड़ा हवा से बातें करने लगा। बहली एक कोस से अधिक दूर नहीं पहुँची थी। कुछ ही देर बाद वह दिखाई पड़ने लगी।

विजय ने घोड़े को चुमकारा और रास को कुछ नीचा गिराया। घोड़े ने चाल धीमी कर दी। बहली के पास तक पहुँचते-पहुँचते वह गाम पर आ गया। इससे पहले कि विजय की उत्सुक दृष्टि बहली के पर्दे को भेदकर नन्दा की उल्लसित दृष्टि से जा मिले, बहली का पर्दा उठ गया और दो

धुँधली आँखों ने घूरकर विजय की ओर देखा। फिर सुनाई पड़ा—"क्या हुक्म है?"

बहली का सवार शायद किसी गाँव का ठाकुर था और एक अपरिचित अश्वारोही के इस प्रकार बहली के पास आकर सहसा रुक जाने से आतंकित हो उठा था।

विजय ने इधर-उधर झाँककर देखा कि उसके सिवा बहली में दूसरा कोई नहीं है। झेंपते हुए उसने उत्तर दिया—

"जी, कोई बात नहीं है। घोड़ा ज़रा बिगड़ रहा था और उसे रास्ते पर लाने के लिए ही मैंने थोड़ा-सा छोड़ दिया था!"

"दोनों का गरम ख़ून जो ठहरा!" वृद्ध ने थोड़ा मुस्कराकर कहा। उत्तर में विजय ने भी मुस्करा दिया।

गर्म घोड़े के लिए बहली के पीछे-पीछे चार क़दम चलना भी कठिन था। वह बार-बार दाँतों से दहाने को दाब आगे निकल जाने की चेष्टा कर रहा था। विजय के लिए भी इस बहली में कुछ आकर्षण न था। उसने घोड़े की रास कुछ और ढीली कर दी। कुछ ही क्षणों में घोड़ा बहली को पीछे छोड, आगे निकल गया।

दूर-दूर तक दृष्टि फेंककर विजय ने देखा, दूसरी बहली का कहीं कोई चिह्न नहीं था। इक्के-दुक्के दिखाई पड़नेवाले राहगीरों से भी नन्दा की बहली का पता पाना असंभव था क्योंकि विजय को उस बहली की ऐसी कोई विशेषता ज्ञात नहीं थी जिसके कारण राहगीर उसे अन्य सामान्य बहलियों से पृथक् पहचान सकते।

उसने एक बार पीछे की ओर मुड़कर देखा। जिस बहली को वह अभी-अभी पीछे छोड़ आया था, वह उत्तर की ओर जाने के लिए कच्ची राह पर मुड़ गई थी। रामपाल का कहीं पता न था। घोड़े को चुमकारकर उसने सड़क के किनारेवाले पाकर की घनी छाँह में खड़ा किया और स्वयं उतर पड़ा। नन्दा आगे गई है, या पीछे है—यह प्रश्न उसके मस्तिष्क को आन्दोलित कर रहा था।

दोपहरी हो चुकी थी। जाड़े की ऋतु होने पर भी आकाश साफ़ था। हवा भी नहीं चल रही थी, इसलिए धूप में कुछ तेज़ी थी। वह क़न्नौज से छः कोस निकल आया था। पर नन्दा की बहली का अभी तक कहीं पता नहीं था।

अगले पड़ाव पर रुकने का निश्चय कर विजयपाल फिर घोड़े पर सवार हो गया। इस बार तेज़ चलने का कोई कारण नहीं था। गुरसहायगंज की सराय वहाँ से केवल दो कोस दूर थी। घंटे भर में वहाँ जा पहुँचेगा। नन्दा की बहली पहली मंज़िल में उस पडाव से आगे नहीं जा सकती। तीन कोस कच्ची और आठ कोस पक्की सड़क के ग्यारह-बारह कोस की मंज़िल बहली के लिए बहुत होती है। गुरसहायगंज की सराय में रुककर सम्भव है नन्दा उसकी प्रतीक्षा करे।

दिन ढलने से पहले ही वह गुरसहायगंज की सराय पहुँच गया। इमाम को अपने ठहरने की व्यवस्था करने के लिए उसने आदेश दिया और फिर उसकी नज़र सराय में पड़ाव डालनेवाली बहलियों में से किसी एक को खोज निकालने की व्यर्थ चेष्टा करने लगी।

सराय के प्रबन्धक के द्वारा घोड़े की उचित व्यवस्था हो जाने पर उसने एक बार सराय के सहन में पूरा चक्कर लगाया और अन्वेषक की दृष्टि से उसके तीन ओर बनी कोठरियों में ठहरे मुसाफ़िरों को देखा। नन्दा—जैसी आकृति वहाँ कोई नहीं थी। न गाड़ीवानों के झुण्ड में उसे हीरा माली ही कहीं दिखाई दिया। निराश हो वह सराय के फाटक पर आकर खड़ा हो गया और चिन्तापूर्ण दृष्टि से पूर्व की ओर देखने लगा।

इसी समय पसीने और थकान से लथपथ रामपाल आता दिखाई दिया। विजय को सराय के द्वार पर खड़ा देखकर उसने सन्तोष की एक साँस ली और कहा—"मालिक, अभी तो पहर भर दिन बाक़ी है। चार कोस और चला जा सकता है।"

"पर आगे कोई अच्छा पड़ाव नहीं है, यही सोचकर यहाँ ठहर गया। यहाँ घोड़े के लिए दाना-घास भी ठीक से मिल सकेगा और हम लोगों को भी आराम मिलेगा।" कहते हुए विजयपाल ने उस कोठरी की ओर संकेत किया जो उनके ठहरने के लिए दी गई थी। रामपाल अन्दर चला गया। विजयपाल फिर भी वहीं खड़ा रहा।

घोड़े को सुहलाकर और जल पिलाकर, ठहरने की कोठरी में सफ़ाई करने के बाद पलँग आदि लगाकर, जब रामपाल विजयपाल के पास आया और जलपान करने के लिए कहने लगा तब उसे ध्यान आया कि वह कितनी देर से इस प्रकार सराय के फाटक पर खड़ा-खड़ा सड़क की ओर देखता रहा है। उसे अपने ऊपर बड़ी झुँझलाहट आई। रामपाल भी जाने क्या सोचता होगा!

"ओह, ठीक!" विजयपाल ने जैसे चौंककर कहा और रामपाल के साथ भीतर चला गया। हाथ-पैर धोने के बाद जलपान करने लगा।

इसी समय एक बहली चरमर करती सराय में आई। विजयपाल की अन्वेषक आँखों को हीरा माली के पहचानने में देर न लगी। फिर भी वह स्थिर भाव से बैठा जलपान करता रहा। अपने भीतर की उत्सुकता वह रामपाल पर प्रकट होने देना न चाहता था।

हीरा माली ने बैलों को अलग बाँधकर सवारियों को उतारने के लिये पर्दा उठाया। एकाएक विजय की आँखें उस ओर घूम गईं। उसने देखा, हिम की तरह श्वेत वस्त्रों में सज्जित नन्दा अपनी स्वाभाविक फुर्ती के साथ उतरकर बहली के एक किनारे खड़ी हो गई। अगले ही क्षण उसने सहारा देकर एक दूसरी स्त्री को नीचे उतारा। दूसरी स्त्री अपने श्वेत रंग, श्वेत परिधान और धवल केशों के कारण साक्षात् गौरी-सी लगती थी।

जलपान के बाद रामपाल रसोई के आयोजन में व्यस्त हो गया और विजयपाल बाज़ार देखने के बहाने सराय से बाहर चला गया। बाज़ार में उसकी भेंट हीरा माली से हो गई। उसने बताया कि नन्दा को आगरे के सलीमशाह के महल में छोड़कर वह देवी जी के साथ फिर लौट आयगा।

रात भर विजयपाल नन्दा की आगरा-यात्रा के सम्बन्ध में तरह तरह की बातें सोचता रहा। पर उसकी कुछ समझ में न आया। सबेरे जिस समय विजय की आँखें खुलीं, सराय के आँगन में काफ़ी धूप फैल चुकी थी और दो-एक मुसाफिरों को छोड़कर, जो शायद बनजारे थे, शेष सब जा चुके थे। इसी समय रामपाल ने उपस्थित होकर पूछा—"मालिक, क्या घोड़ा तैयार किया जाय?"

"नहीं, अभी नहीं...!" विजयपाल ने कहा और एक सरसरी निगाह अपने सामान पर डाली जो यथास्थान सुरक्षित रखा था। फिर वह अँगड़ाई लेकर उठ खड़ा हुआ और बाहर सहन में आ गया। वहाँ जल, गमछा आदि सजा कर रखा हुआ था।

यात्रा आरंभ करने में विजय को ढील-ढाल करते देखकर रामपाल को आश्चर्य हो रहा था। किन्तु उसने कुछ कहा नहीं। वह चुपचाप अपने मालिक के तैयार होने की प्रतीक्षा करने लगा।

———

(४)

विजयपाल नन्दा की बहली के रवाना होने की प्रतीक्षा कर रहा था। वह सोच रहा था कि पहले नन्दा आगे चली जाय। इसके बाद वह उसे पकड़ लेगा। बहली के चलने के बाद विजयपाल चलने के लिए तैयार हुआ। आज घोडा कल की अपेक्षा अधिक सीधा था। पर एक मील चलने के बाद एक ऊँटगाड़ी को देखकर, जो पश्चिम से आ रही थी, वह असाधारण रूप से चंचल हो उठा और उछल-कूद करने लगा। उसकी यह गति विजयपाल को पसन्द नहीं आई और मुख पर कुछ क्रोध का भाव लाकर वह कहने लगा—"शैतान का बच्चा, क्या राह भर इसी तरह परेशान करता रहेगा?"

"अभी एक ही मंज़िल तो चला है, मालिक। नया घोड़ा है। दो-एक मंज़िल चलने पर सीधा हो जायगा।" रामपाल ने कहा।

"पर तब तक तो मुझे थका डालेगा! धीरे से चलना तो इसे आता ही नहीं। हमेशा भागना चाहता है।"

"तो चलिए न आप, मैं भी धीरे-धीरे आ लगूँगा।"

रामपाल की ओर से इतना संकेत विजयपाल के लिए काफ़ी था।

सवार के इशारे पर घोड़े ने अपनी चाल बढ़ा दी और कुछ ही देर में वह रामपाल की नज़रों से ओझल हो गया।

कुछ देर बाद विजयपाल ने देखा, नन्दा की बहली सड़क की पटरी पर एक खड्ड में फँसी खड़ी है और हीरा माली उसे निकालने के प्रयत्नों से थककर मानो किसी दैवी सहायता की प्रतीक्षा में सड़क पर खड़ा शून्य दृष्टि से देख रहा है। उसकी ओर देखकर विजयपाल मन ही मन मुस्कराया और बहली के पास जाकर उसने अपना घोड़ा रोक दिया। स्वर को बदलकर फिर उसने कहा—"पहिया फँस गया है क्या?"

"हाँ मालिक, हाथी को रास्ता देने के लिए बैल पटरी की ओर चले थे। इधर नीचे खड्ड था। उसमें पहिया फँस गया। बैल कच्ची काट चुके हैं। अब जुए के पास नहीं जाते।" हीरा माली ने उत्तर दिया।

"इन हरामी मुग़लों को सड़कों की भी परवाह नहीं है। देखो न, जाने कब से सड़क की मरम्मत नहीं कराई गई। जगह-जगह गढ़े पड़ गये हैं। सुनते हैं, कुछ आगे चलकर सड़क एकदम टूट गई है। मीलों कच्ची में चलना होता है। अच्छी-अच्छी जोड़ियाँ घुटने टेक देती हैं।"

कहते हुए विजयपाल देखने लगा कि गाड़ी के भीतर उसके कथन की कुछ प्रतिक्रिया होती है, या नहीं। पर उस ओर बिलकुल शान्ति रही। यह देखकर उसने हीरा माली को सम्बोधित करते हुए फिर कहा—"यही हाल रहा तो आगे निभाना कठिन हो जायगा। कहाँ तक पहुँचना है?"

"आगरे तक।"

"और आ कहाँ से रहे हो?"

"कात्यायनी माई के थान से।"

"गाड़ी को ख़ाली करने पर शायद बैल ज़ोर लगाकर निकाल ले जायँ। अगर ज़रूरत समझो तो एक पहिये पर मैं ज़ोर भरे देता हूँ।"

विजयपाल घोड़े से उतर पड़ा। घोडा उसने बहली की पींजनी से अटका दिया और बाँहें समेटकर फँसे हुए पहिये की ओर ज़ोर लगाने के लिए खड़ा हो गया। इसी समय दोनों सवारियाँ बहली से उतरकर एक ओर खड़ी हो गईं।

विजयपाल की सहायता से बैल बहली को खड्ड से बाहर खींच ले गये। दोनों सवारियाँ फिर उस पर चढ़ने के लिए बढ़ीं। शचीदेवी ने इसी समय प्रशंसासूचक दृष्टि से विजयपाल की ओर देखा। उत्तर में विजयपाल ने दोनों हाथ जोड़कर मस्तक झुका दिया। अभिवादन को स्वीकार करते हुए देवी ने कहा—"आपने बड़ी कृपा की, नहीं तो जाने कब तक हम लोगों को इस संकट में पड़े रहना पड़ता।"

अत्यधिक नम्रता और शिष्टाचार दिखलाते हुए विजयपाल ने उत्तर दिया—"जी, इस सड़क पर ऐसी घटनायें प्रायः होती रहती हैं। और सड़कें भी क्या करें, आठ-दस साल हो गये, उनकी मरम्मत की ओर ध्यान नहीं दिया गया। सुनता हूँ, राह में चोर-बटमार इतने बढ़ गये हैं कि मुसाफ़िरों का मील दो मील चलना मुश्किल कर देते हैं।"

बहली उस समय तक चल दी थी। विजयपाल भी घोड़े पर सवार होकर साथ चलने लगा। उससे बातें करने के लिए शचीदेवी ने एक ओर का पर्दा उलटते-उलटते कहा—"राज-परिवर्तन प्रजा के लिए कठिन परीक्षा का समय होता है।"

"वह तो देख ही रहा हूँ। पर ऐसे समय में आपका अकेले सफ़र पर चल देना किसी आवश्यक कार्यवश ही हो सकता है?"

"धर्म के मार्ग में बाधायें प्रायः नहीं सतातीं।" शचीदेवी ने कुछ मुस्कराकर कहा। उनके चेहरे पर आत्म-विश्वास का तेज झलक रहा था।

"सत्य है, पर अधार्मिकता के खड्ग पड़ जाने पर कुछ समय के लिए धार्मिकों को भी गति भ्रष्ट हो जाना पड़ता है।"

"ऐसे समय भगवान् हमारी सहायता करने के लिए किसी धर्मबन्धु को भेज देता है।" शचीदेवी ने अत्यन्त सहज भाव से उत्तर दिया। पर इस सीधे सादे और सरल उत्तर से चारों पथिकों के ओंठों पर मुस्कराहट दौड़ गई और नन्दा ने अभिप्राय-सूचक दृष्टि से विजयपाल की ओर देखा।

इसके बाद कुछ क्षण तक दोनों ओर से मौन रहा। यह मौन विजयपाल के लिए सचमुच एक परीक्षा थी। वह निश्चय न कर सका कि बहली के साथ-साथ उसका इस प्रकार चलना शचीदेवी के मौन धारण कर लेने के उपरान्त भी उचित होगा या नहीं। एक बार उसके मन में आया कि घोड़े को बढ़ाकर आगे निकल जाय और फिर वहाँ किसी बहाने रुककर फिर बहली के साथ हो जाय, पर उसका ऐसा करना भी कहीं शचीदेवी के मन में सन्देह उत्पन्न न कर दे और...!

वह इसी दुविधा में पड़ा था कि शचीदेवी ने कहा—"आप किस क्षत्रिय-वंश को विभूषित करते हैं?"

"मेरे क्षत्रिय होने का अनुमान आपने कैसे किया?" विजयपाल ने किञ्चित् आश्चर्य प्रदर्शन करते हुए प्रश्न किया।

"आपके वेश से, आपकी आकृति-प्रकृति से।"

"आपकी दृष्टि बड़ी पैनी है। मैं क्षत्रिय ही हूँ और मेरा घर आपके स्थान से अधिक दूर नहीं है।"

"आपके संरक्षण का लाभ हम लोगों को कहाँ तक प्राप्त हो सकता है?"

"जैसी आपकी आज्ञा हो। वैसे जाना तो मुझे भी आगरे तक ही है।"

"यदि साथ-साथ चल सकें तो...!"

"अवश्य। मेरे योग्य जो सेवा हो, उसके लिए तैयार हूँ।"

इसी समय एक धक्के के साथ बैल फिर रुक गये। बहली का पहिया सड़क की एक खाँच में जाकर ठहर गया था। सडक के ख़राब हो जाने के कारण बैलगाड़ियाँ इस स्थान को बचाकर निकल जाती थीं। पर सवारियों की बातचीत में दिलचस्पी लेने के कारण हीरा माली ने उधर ध्यान न दिया था।

"मालूम पड़ता है, अब पग-पग पर यही दशा होगी।" शचीदेवी ने कुछ खिजलाहट के साथ उतरने का प्रयत्न करते हुए कहा।

"नहीं-नहीं, आप कष्ट न कीजिये। मैं पहिया उठाए देता हूँ।"

विजय तुरन्त घोड़े से कूदकर पींजनी में ज़ोर लगाने के लिए पहुँच गया। इस बार नन्दा की ओर का पहिया अटका था। विजय को ज़ोर लगाते देखकर नन्दा की आँखों में आँसू भर आये। शचीदेवी इस समय हीरा को देख-भालकर बैलों को हाँकने के लिये झिड़क रही थीं। इसी बीच एक काग़ज़ बहली पर से विजय के पैरों के पास गिर पड़ा।

गाड़ी के खड्ड से निकलकर चल देने पर विजय ने धीरे से काग़ज़ उठा

लिया और तंग ठीक करने के बहाने घोड़े की आड़ में खड़े होकर उसे खोलकर देखा। नन्दा का पत्र था। पिछली रात सराय में उसने किसी प्रकार लिखा था। विजय ने पत्र को पढ़कर अपने हृदय से लगाया और फिर तहाकर भीतर की जेब में रख लिया। इसके बाद घोड़े को तेज़ कर वह बहली के पास आ गया।

घोड़े की टाप की आहट सुनकर शचीदेवी ने कहा—"देखती हूँ, आपकी सहायता की आवश्यकता हमें पग-पग पर पड़ेगी।"

"मैं वचन दे चुका हूँ। आप निश्चिन्त रहें।"

"अगले पड़ाव पर पास ही ठहरना ठीक रहेगा। अगर आपको आपत्ति न हो तो......!"

"जैसा आप ठीक समझें।" विजयपाल ने कुछ निरपेक्ष भाव से उत्तर दिया।

---

(५)

अपने पत्र में विजय ने क्या लिखा और क्या नहीं, इसका विवरण दे सकना कठिन है। नन्दा की उन गिनी-चुनी पंक्तियों के उत्तर में, जिन्हें जाने उसने कितने प्रयत्न से शचीदेवी की आँख बचाकर लिखा था, स्वयं उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि वह क्या लिखे और क्या नहीं। वह चाहता था कि नन्दा पर अपनी पूरी परिस्थिति स्पष्टतया प्रकट कर दे। भयानक पथ पर उसने पाँव रखा है। उसके जीवन का ख़तरा हर घड़ी बना रहता है। ऐसी स्थिति में नन्दा के हृदय में अपने प्रति मोह का संचार करना क्या ठीक होगा। सरल, एकनिष्ठ और भोली-भाली बालिका को मेरी असली हालत का बोध हो जाने पर कितना दुःख होगा।

यह विचार रह-रहकर उसके हृदय को कुरेदता था। पर दूसरी ओर नन्दा से रहित अपने जीवन की कल्पना तक कर सकना उसके लिए कठिन था। इसी दुविधा में, भावों की इसी उलझन में, रात भर में उसने न जाने कितने पत्र लिखे और लिखकर फाड डाले। अन्त में केवल एक छोटे से काग़ज़ पर यह लिखकर ही संतोष कर लिया—"प्यारी नन्दा, आज तुम्हारे साथ यात्रा करते हुए मैं सचमुच सुखी हूँ। यदि हमारा यह सुख चिर-स्थायी हो सकता, यदि हम यों ही साथ-साथ, एक दूसरे से अलग-अलग

मगर फिर भी पास रहते हुए, यात्रा करते रहते, और हमारी यात्रा हमारे जीवन जैसी ही लम्बी होती, तो हम कैसे सुखी होते! पर इस यात्रा का अन्त हर पड़ाव के बाद निकट आता जाता है और इसके साथ-साथ मेरी चिन्ता भी बढ़ती जाती है। नन्दा, मैं तुम्हें कैसे विश्वास दिलाऊँ कि तुम्हारा पवित्र प्रेम मुझे कितना बल देता है! मैं इतना अभागा हूँ कि अपनी भाग्य-लक्ष्मी के निकट रहकर भी उसे पूरी तरह अपना नहीं सकता।"

मार्ग में और कोई उल्लेखनीय घटना नहीं हुई। रामपाल और शची-देवी की निगाहें बचाकर विजयपाल और नन्दा एक दूसरे से बराबर पत्रों और लुकी-छुपी दृष्टियों का आदान-प्रदान करते रहे, यद्यपि उनके इस आदान-प्रदान में आन्तरिक व्याकुलता और भविष्य की चिन्ता के प्रकाशन के अतिरिक्त और कुछ न होता था। नन्दा के भावों में अपने भावी जीवन के साथ विजयपाल का सम्बन्ध स्थापित कर सुखपूर्ण जीवन का ताना-बाना बिनने की चेष्टा रहती थी और विजय के भावों में निराशा और अंधकार-पूर्ण भविष्य की चिन्ता दिखाई देती थी। नन्दा की समझ में नहीं आता था कि विजय उसकी सुखोल्लास की कल्पना में भाग क्यों नहीं लेता। वह कभी-कभी इस निष्कर्ष पर पहुँचती कि शायद विजय यह सोच रहा है कि नन्दा आगरा पहुँचकर वहाँ के सुख-विलास में डूब जायगी और फिर उसे मेरी याद न रहेगी। इसी लिये नन्दा अपने संकेतों में विजय को बराबर यह विश्वास दिलाने का प्रयत्न करती थी कि उसका संभाव्य कुटुम्ब कैसा ही ऐश्वर्यशाली और वैभवपूर्ण क्यों न हो, वह विजय को अपने हृदय से कदापि दूर न कर सकेगी।

विजय की परिस्थिति दूसरी ही थी। यदि नन्दा उसके प्रति कुछ

उपेक्षा-भाव दिखाती तो शायद उसके हृदय की चिन्ता की जलन बहुत कुछ कम हो जाती। पर वस्तुस्थिति सर्वथा विपरीत थी। अपनी ओर से वह नन्दा को साफ़ जवाब नहीं दे सकता था, न वह उसके प्रेम का पूर्ण रूप से उपभोग ही कर सकता था। उसकी दशा सर्वथा उस अपराधी जैसी थी जिसे कल फाँसी होने से पूर्व अपनी प्रेयसी से मिलने दिया जा रहा हो—एक ऐसी प्रेयसी से जिसे अपने प्रेमी की आगामी विपद् की कुछ भी सूचना न हो और जो उसे प्रसन्न करने का पूरा प्रयत्न कर रही हो, उसे अपने प्रेम का पूरा-पूरा विश्वास दिलाना चाहती हो। उधर प्रेमी की स्थिति यह थी कि न तो वह उसके आश्वासनों से आश्वस्त हो रहा था और न अपनी विपद् की सूचना देकर उसके क्षणिक आनन्द में विघ्न डालने का साहस कर सकता था। जैसे-जैसे नन्दा उसकी उदासी को दूर करने का प्रयत्न करती, विजय और भी उदास होता जाता था।

पाँच-छः दिन तक एक साथ यात्रा करते रहने के कारण विजय शची-देवी से अच्छी तरह परिचित हो गया। यात्रा की एकरसता को भंग करने के लिए जब कभी घोड़े से उतरकर वह पैदल चलने लगता तब शचीदेवी भी बहली से उतर आतीं और उसके साथ बातें करती बहुत दूर तक चली जातीं। नन्दा को भी अब विजय के साथ बातचीत करने में संकोच दिखाने का कोई कारण नही रह गया था। शचीदेवी की भाँति वह भी कभी-कभी बहली से उतरकर विजय के साथ-साथ पैदल चलने लगती थी। इसी बीच दोनों में कुछ बातचीत भी हो जाती थी जिसका आरम्भ प्रायः नन्दा की ओर से होता था और विजय केवल 'हाँ' या 'न' में उत्तर देकर उसे यथा-संभव संक्षिप्त करने की चेष्टा करता था।

आगरा केवल एक पड़ाव दूर रह गया था। नन्दा और विजय साथ-साथ पैदल चल रहे थे। नन्दा ने डरते-डरते कहा—"तुम्हारी उदासी बेकार है!"

"संभव है।" विजय ने उत्तर दिया।

"मेरा विश्वास करते हो?"

"अपने से अधिक।"

"फिर सन्देह क्यों?"

"मैं भविष्य को नहीं जानता।"

"मुझे विश्वास है कि वह मंगलमय है।"

"भगवान् करे ऐसा ही हो।"

"तुम मुझसे कुछ छिपा रहे हो!"

"पर उसके जानने से तुम्हें कुछ लाभ भी न होगा।"

"फिर भी मैं जानना चाहूँगी।"

"इतना तो जानती ही हो कि कल हम लोग अलग हो रहे हैं।"

"क्या फिर कभी न मिलने के लिए?"

"शायद!"

"नहीं विजय, ऐसा नहीं हो सकता। तुम्हारे मन का सन्देह मैं जान गई हूँ। मैं तुम्हारे चरणों की शपथ खाकर कह सकती हूँ कि इस जीवन में मुझे तुमसे कोई शक्ति अलग नहीं कर सकती।"

"उत्तेजित न हो नन्दा। मैं तुम्हारे ही भविष्य-सुख की चिन्ता कर रहा हूँ।"

"मैं सच कहती हूँ। कात्यायनी माई ने भी और शचीदेवी ने भी मुझे

बार बार विश्वास दिलाया है कि जहाँ मैं जा रही हूँ वहाँ किसी प्रकार का अभाव नहीं है और किसी भी प्रकार के सांसारिक ऐश्वर्य की मुझे कमी न रहेगी। फिर भी विजय, विश्वास मानो, वह सब ऐश्वर्य, वह सब सुख, मेरे प्राणों को भुलावे में नहीं रख सकता। मेरा जीवन तुम्हारे बिना अपूर्ण रहेगा। मैं अनुभव करूँगी कि कात्यायनी माई के थान में मेरा जीवन उससे अधिक पूर्ण और अधिक सुखी था—क्योंकि वहाँ तुम थे।"

"भूत काल की तुलना भविष्यत् से नहीं वर्त्तमान से करनी चाहिए।"

"पर मुझे अपने हृदय पर विश्वास है। तुम मुझे अपने साथ ले चलो। मैं उस सारे भविष्यत्-ऐश्वर्य पर लात मारती हूँ। तुम्हारे साथ मजूरी करके पेट भरते हुए भी मैं अधिक सुखी रह सकूँगी।"

"इसकी ज़रूरत नहीं पड़ेगी नन्दा। मेरी पैतृक सम्पत्ति हम दोनों का जीवन पार लगाने के लिए काफ़ी होगी।"

"फिर चिन्ता क्या है! मैं तुम्हें वचन देती हूँ कि..."

"यह सब तो ठीक है, लेकिन ..."

"लेकिन क्या?"

"यही कि मेरा भविष्य मेरे हाथ में नहीं है। वह दूसरे के हाथ में है।"

"किसके हाथ में?"

"दैव के, भाग्य के!"

"कहीं इसका मतलब यह तो नहीं कि तुम्हारा संबंध अन्यत्र पक्का हो चुका है?" भावों में कुटिलता लाते हुए और पैरों को अनावश्यक भार के साथ भूमि पर रखते हुए नन्दा ने प्रश्न किया।

"नहीं नन्दा, ऐसा नहीं है। यह तो मैं स्वप्न में भी नहीं सोच सकता।"

"पता नहीं क्यों, तुम सदा मुझे यों ही उलझन में डाले रहते हो। मैं मान सकती हूँ कि वर्तमान अंधकारपूर्ण है। पर मैं आशावादिनी हूँ। मैं भविष्य को उज्ज्वल देखती हूँ। अभी हमें बहुत दिन जीना है। अभी हमारी नई उम्र है। मन में उत्साह है, उमंगें हैं। हम एक दूसरे को प्राणों से भी अधिक प्यार करते हैं। यदि हम कठिनाइयों का सामना नहीं कर सकते तो फिर कौन करेगा। हममें इतना साहस और धैर्य होना चाहिए कि अपना मार्ग बना सकें। समझ में नहीं आता, मुझे तुम बार-बार क्यों हतोत्साह करना चाहते हो—ख़ासकर ऐसे मौक़े पर जब कि मैं स्वयं...!"

"मैं तुम्हारी बातें ठीक से समझ रहा हूँ, नन्दा!" विजय ने बीच में ही कहा—"मुझे तुम्हारे ऊपर पूरा विश्वास है। मैं जानता हूँ कि तुम मुझसे कुछ कहलाना चाहती हो। पर मैं कहूँ भी क्या? आज का दिन मेरा है; शायद कल का भी हो सकता है। यदि अपने भविष्यत् के दस-पाँच वर्ष भी इसी प्रकार मेरे अधिकार में होते तो मैं तुम्हें वचन दे देता। तुम्हें लेकर वहाँ चलता जहाँ केवल हम दो होते—जन-कोलाहल से दूर, प्रेम और परस्पर-विश्वास के पवित्र वातावरण में। पर लाचारी है। परसों सबेरे ही वह क्षण आ रहा है, जब मुझ पर स्वयं मेरा अधिकार न रहेगा।"

"क्यों नहीं तुम भी मेरे साथ ही चलते? मैं सारी लज्जा और संकोच छोड़कर अपने पति के रूप में तुम्हारा परिचय अपने कुटुम्बियों को दे दूँगी और मुझे विश्वास है कि वे लोग अपने पूज्य पाहुन के रूप में तुम्हारा स्वागत करेंगे। फिर अगर मेरे इस अपराध के कारण वे मुझे ग्रहण करना अस्वीकार भी कर दें तब भी कुछ बुरा न होगा।"

"नहीं नन्दा, मेरा संकोच दूसरे प्रकार का है। और जब तक मैं उससे मुक्ति न पा जाऊँ, निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कह सकता।"

"प्यारे विजय, देखती हूँ कि तुम्हारी बातें मुझे पागल बनाकर छोड़ेंगी। ऐसा प्रतीत होता है, भेद की बात तुम कभी न बतलाओगे। अच्छा, कृपा करके यही बता दो कि मैं तुम्हारी प्रतीक्षा कब तक कर सकती हूँ?"

"इसका निर्णय तुम्हीं ठीक कर सकती हो।"

"मैं जीवन भर प्रतीक्षा करने को तैयार हूँ।"

"इसकी आवश्यकता नहीं पड़ेगी। यदि परमात्मा ने चाहा तो..."

इसी समय विजय ने देखा कि शचीदेवी ने दोनों को अधिक पिछड़ा जानकर बहली रुकवा दी है। अगला पड़ाव भी अधिक दूर नहीं है। नन्दा को चुप रहने का संकेत करते हुए वह क़दम बढ़ाकर चलने लगा। नन्दा ने भी उसका साथ दिया। चलते-चलते पूरा साहस समेटकर नन्दा ने अन्तिम बार कहा—"क्या मैं समझूँ कि मेरी प्रार्थना व्यर्थ नहीं जायगी?"

"मैं प्राणपण से उसे पूरा करने की चेष्टा करूँगा।"

बहली के निकट पहुँचने पर शचीदेवी ने कहा—"संभव है, इस पड़ाव पर नन्दा के कुटुम्बियों में से कोई उसके स्वागत के लिये आया हो। इसलिये अब आपका हम लोगों के साथ रहना ठीक न होगा!"

"ठीक है।" कहकर घोड़े पर सवार हो विजयपाल आगे चल दिया।

शचीदेवी ने व्यर्थ ही विजयपाल का साथ छोड़ा। पड़ाव पर नन्दा के स्वागतार्थ कोई न मिला। वह रात भी पिछली रातों जैसी ही बीती। कोई असाधारण बात नहीं हुई। हाँ, एक अन्तर अवश्य रहा। वह यह कि विजयपाल पड़ाव से दूर ही रहा। वह या तो शचीदेवी की इस आशंका से खिन्न हो घोड़ा बढ़ाकर अगले पड़ाव को चला गया, या फिर बस्ती में किसी और के द्वारे टिक रहा। जो भी हो, नन्दा को यह ज़रा भी अच्छा न लगा। जीवन में पहली बार उसे शचीदेवी पर कुछ क्रोध भी आया। पर उसका वश क्या था। उस रात उसने कुछ खाया-पिया नहीं और सिर-दर्द का बहाना कर शाम से ही अपने बिस्तर पर पड़ रही।

शचीदेवी की रात भी निश्चिन्तता से नहीं कटी। विजय के साथ न रहने से सामान और नन्दा दोनों की रक्षा की ज़िम्मेदारी अकेले उन्हीं पर आ पड़ी थी। फिर कल आगरे पहुँच जाना भी था। आदेशानुसार वहाँ किसी की संरक्षता में नन्दा को छोड़कर उन्हें फिर अपने स्थान को लौट जाना था। नन्दा का भविष्य क्या होगा, आश्रम में बाल्य-काल से पली हुई यह भोली-भाली मृगी अपने संभावित कुटुम्ब में हिल-मिल सकेगी भी या नहीं, इस पड़ाव पर उसके स्वागत का कोई प्रबन्ध न होने का

कारण क्या है, क्या आगरे में उसके लिए किसी को कोई विशेष चिन्ता नहीं है, यदि यह सत्य हुआ तो क्या नन्दा को अपने साथ वापस ले आना ठीक रहेगा, यदि नन्दा वहाँ अकेले न रहना चाहे तो क्या मेरा उसके सन्तोष के लिए कुछ दिन आगरे ठहर जाना उचित होगा, आदि अनेक प्रश्न रात भर उनके मन में चक्कर काटते रहे।

नन्दा भी उस रात सो न सकी। शचीदेवी पर तो उसे क्रोध था ही, विजय पर भी कम क्रोध नहीं था। उससे बिना कुछ कहे-सुने उनका चुपचाप चल देना कदापि उचित नहीं था। उसे यह भी नहीं बताया कि आगे कब और किस प्रकार भेंट हो सकेगी। अपरिचित स्थान में क्या उसे बार-बार उनकी याद नहीं आयेगी! वह जितना ही अपने भविष्य के विषय में सोचती, उसकी खिजलाहट उतनी ही बढ़ती जाती।

नन्दा ने एक बार सोचा—ज़रा बाहर निकलकर सराय के सहन में कुछ देर तक टहला जाय जिससे दिमाग़ कुछ ठंडा हो जाय और वह कुछ निर्णय करने में समर्थ हो सके। पर उसे इस तरह सर्दी में घूमते यदि किसी ने देख लिया तो क्या कहेगा! लेकिन वह भी क्या करे, मन किसी तरह नहीं लगता! शचीदेवी तो अपनी लम्बी तानकर सो रही हैं। विजय का भी इस समय कुछ पता नहीं। यदि उन्हें उसकी इतनी फ़िक्र होती तो इसी सराय में आकर न ठहर जाते। उसे अकेली छोड़कर इस तरह अलग न हो जाते। पर नहीं, वे तो यात्रा के पहले दिन से ही उसके साथ रहे हैं। उसके साथ रहने के लिए उन्होंने क्या नहीं किया—बहली के पहिये में ज़ोर लगाया, घोड़े से उतरकर पैदल चले, दूर दूर से जाकर पानी लाए! यदि शचीदेवी व्यर्थ की आशंका में फँसकर उनसे जाने के लिए न कहतीं

तो वे कभी न जाते। ऐसे ही विचारों में डूबती-उतराती वह कभी शचीदेवी को कोसती, कभी अपने को और कभी विजय को। वह रात उसे पिछली रातों से कहीं अधिक भारी जान पड़ी—ऐसा प्रतीत होता था कि उसका कभी अन्त न होगा।

शचीदेवी स्वभावतः ब्राह्ममुहूर्त में जाग जाती थीं। यही समय पड़ाव से चलने का भी होता था। यात्रा के दिनों में उन्हें इससे भी पहले जागना होता था। आज भी जब वे जागीं तो उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि नन्दा, जो और दिनों प्रयत्न करने पर भी सवेरे मुश्किल से ही जागती थी, यात्रा के लिए आज सबसे पहले तैयार बैठी है। वे समझीं, नए कुटुम्बियों से मिलने की उत्सुकता इसका कारण हो सकती है। नन्दा की ओर देखकर उन्होंने सहज वात्सल्य भाव से मुस्करा दिया।

आज की यात्रा में नन्दा प्रसन्न नहीं दिखाई दी। वह दिन भर अन्यमनस्क-सी बहली में पड़ी रही। हाँ, कभी-कभी ताज़ी वायु में साँस लेने के बहाने से बहली का उघार उठाकर बाहर सिर निकाल लेती थी और बहुत देर तक सड़क पर आगे-पीछे, किनारे के छायादार वृक्षों की ओर, देखती रहती थी। देखते-देखते उसकी आँखों में आँसू आ जाते थे। शचीदेवी समझतीं कि कात्यायनी माई के स्थान से चिर-वियोग होने की कल्पना उसके हृदय को मथ रही है। इसी से वे कुछ कहती न थीं।

सूर्य डूबते-डूबते उनकी बहली ने आगरे की सीमा के भीतर प्रवेश किया।

पिटारा खोलकर शचीदेवी ने वह पत्र निकालकर देखा जो चलते समय कात्यायनी देवी ने उन्हें दिया था। इसमें उनके गन्तव्य स्थान का

पता लिखा हुआ था। पत्र का उक्त अंश इस प्रकार था— "आप नन्दिनी को किसी विश्वासपात्र के हाथ आगरे भेज दीजिये। वह उसे चौरंगी सराय के बग़लवाले सलीमशाही महल में छोड़कर चली जाय। वहाँ एक महिला उसकी देख-भाल करेगी। वहीं उसकी भेंट अपने मा-बाप से भी होगी। शाही दरबार से जो मदद आपके थान को मिलती रही है, वह नन्दा के चले आने के बाद भी जारी रहेगी।"

पत्र में भेजनेवाले ने अपना नाम-पता नहीं लिखा था। मालूम होता था कि कात्यायनी माई उससे सुपरिचित हैं। अब उनके उत्तरदायित्व का काम पूरा होने जा रहा है, यह सोचकर शचीदेवी ने गहरी साँस ली और एक बार क्षोभ-भरी दृष्टि से नन्दा को देखकर पत्र पिटारे में रख लिया। फिर उन्होंने हीरा माली को चौरंगी सराय का पता लगाकर वहाँ बहली पहुँचाने की आज्ञा दी।

आगरे की कच्ची और तंग सड़कों ने शचीदेवी को परेशान कर दिया। हीरा माली भी कुछ कम परेशान नहीं हुआ। पर परेशानी की सबसे अधिक गहरी छाया नन्दा के मुख पर थी। यदि उस समय कोई उसे देखता तो साफ़-साफ़ समझ लेता कि शहर का आना उसे ज़रा भी पसन्द नहीं आया। वह प्रतिक्षण अनुभव कर रही थी कि पिछले पड़ाव से वह जितना ही आगे बढ़ रही है, विजय से वह उतना ही दूर होती जा रही है और विजय से उसका मिलन भी उतना ही दुष्कर होता जा रहा है।

लगभग पहर भर चलकर, आधी रात से कुछ पहले, बहली एक आलीशान महल के सामने आकर रुकी। इसे ही सलीमशाह का महल बतलाया गया था। बहली के रुकते ही हरे मख़मल का कोट और सफ़ेद

पाजामा पहने पन्द्रह-सोलह वर्ष के वय का एक लड़का सामने आ खड़ा हुआ। अपने शरीर की गठन और पोशाक से वह ईरानी ज्ञात होता था। उसने झुककर पहले तो कोर्निश की, फिर उठकर बहली के पास आया और तीन बार उसके पायदान को चूमा। अन्त में बड़े अदब और तहज़ीब के साथ उसने बहली का उघार हटाया और आज्ञा की प्रतीक्षा में सिर झुकाकर एक ओर खड़ा हो गया।

हीरा माली की सहायता से शचीदेवी नन्दा के साथ बहली से नीचे उतरीं और ईरानी सेवक के संकेतानुसार पाँच या छः चौड़ी सीढ़ियाँ चढ़-कर वे महल के सिंहद्वार के सामने जा खड़ी हुईं। लड़के के फ़ाटक खोल देने पर वे भीतर घुसीं। बहुत विशाल महल था, पर एक दो कामदारों के सिवा और कोई निवासी वहाँ दिखाई नहीं देता था।

लड़के के पीछे पीछे दालान, चौड़ा आँगन उसके बीच में एक हौज़, फिर दालान और एक गलियारा, इसके बाद गुम्बददार दरवाज़ा पार करतीं दोनों महिलायें एक ऐसे कक्ष के सामने जा खड़ी हुईं जिसके द्वार पर साटन का एक सुनहली कामदार पर्दा झूल रहा था और कलमाकनी हाथ में नङ्गी तलवार लिए पहरा दे रही थी।

"यही ख़ास महल है," ईरानी लड़के ने बड़े अदब के साथ सलाम करते हुए निवेदन किया और फिर उलटे पाँव पीछे लौट गया। कलमाकनी ने तलवार खूँटी पर लटका दी और फिर घुटने तोड़कर दोनों महिलाओं को अभिवादन किया। इसके बाद उसने पर्दे को एक ओर से हटाते हुए कुछ कहा जिसका अर्थ शचीदेवी न समझ सकीं, पर संकेत से इतना अवश्य समझ गईं कि वह भीतर चलने को कह रही है।

महल की विशालता, पर्दे का कठिन प्रबन्ध, द्वारपाल, रक्षक, अदब-क़ायदे और सबसे बढ़कर कलमाकनी की आकृति और तलवार वन के शान्त और एकान्त वातावरण में जीवन बिताने की अभ्यस्त नन्दा को भयभीत करने के लिये पर्याप्त थे। उसे लगा कि वह स्वतन्त्र वातावरण से दूर एक ऐसे बन्दीघर में आ पड़ी है जिसके सींकचे दुर्दैव जैसे कठोर और जिसके नियम भाग्य जैसे अपरिवर्तनशील हैं।

धीरे-धीरे अस्खलित चरणों से शचीदेवी ने नन्दा का हाथ पकड़े कक्ष में प्रवेश किया। चार-चार फ़ानूसों के प्रकाश से कक्ष जगमगा रहा था। इसी समय एक भद्र महिला ने, जो संभवतः चिक के पीछे द्वार के एक ओर इनकी प्रतीक्षा में खड़ी थी, झुककर शचीदेवी के चरणों की धूल लेकर मस्तक में लगाई और फिर हाथ पकड़कर उनको एक बहुमूल्य पलँग पर, जिसके ईरानी क़ालीन पर सोने का कामदार पलँगपोश लगा हुआ था, बिठा दिया और स्वयं एक छोटे पीढ़े पर बैठकर अपने रेशमी आँचल से उनके चरण पोंछने लगी। आशीर्वाद देते हुए शचीदेवी ने उसके हाथ पकड़ लिए और अपने पास पलँग पर बैठने का आग्रह करने लगीं।

इसी समय महिला की दृष्टि नन्दा पर पड़ी। भय और आतंक से भरी नन्दा अभी तक द्वार के पास खड़ी थी। वह कभी फ़ानूसों, कभी कक्ष की दमदम करती हुई रत्नजटित विलास-सामग्री और कभी कल्पनातीत सुन्दर आभूषणों और वस्त्रों की ओर आँखें फाड़-फाड़कर देख रही थी। उसने दौड़कर नन्दा को पकड़कर छाती से लगाते हुए कहा—"तू आ गई नन्दिनी, मेरी बेटी, कब से हम लोग तेरी याद कर रहे थे।"

यह कहकर उसने कई बार उसका माथा चूम लिया। फिर प्यार के आवेग में उसके सिर पर हाथ फेरने लगी। अपरिचित और अप्रत्याशित वातावरण में पहुँचकर नन्दा मानो अपनी सारी सुधि-बुधि खो बैठी। वह कभी उस भद्र महिला को देखती और कभी शचीदेवी को। उसने सोचा, शायद मैं सो रही हूँ और यह जो कुछ दिखाई दे रहा है, वह सब स्वप्न है। स्वप्नों में देखे परी-लोक से वह इस स्थान की तुलना करने लगी।

महिला की शिष्टता और वातावरण की गुरुता का शचीदेवी पर भी कम प्रभाव नहीं पड़ा था। वे मन ही मन कक्ष की बहुमूल्य साज-सामग्री के आधार पर उसके स्वामी के अपार वैभव का अनुमान लगा रही थीं। वे यह भी सोच रही थीं कि पत्र में जिन भले कुल की महिला का ज़िक्र है, क्या यही वह हैं। अपने रत्नजटित वस्त्राभरण, प्रकाम शरीर, मुक्तोज्ज्वल वर्ण और आदर्श शिष्टाचार से तो ये कोई राजरानी-सी लगती हैं।

भद्र महिला ने नन्दा का हाथ पकड़कर पलँग के पास ही एक पीढ़े पर बिठा दिया। उसका कोमल लचकदार आसन उसके लिए नई बात थी। फिर उसने दाहिने हाथ की ओर की खूँटी पर लगी हुई एक रस्सी को हिलाया। एक अल्पवयस्का लड़की हाथ जोड़े सामने आकर खड़ी हो गई। महिला ने आदेश के स्वर में कहा—"पंडितों का नाश्ता......!"

दो नवयुवतियाँ जो अपने धवल वस्त्रों, लाल रोली और खौर से ब्राह्मणी प्रतीत होती थीं, हाथों में फलाहारी मिष्ठान्नों की तश्तरियाँ और चाँदी के कटोरों में जल लेकर हाज़िर हो गईं। साथ में कुछ बाँदियाँ भी हाथों में गमछे और चाँदी के जलपूर्ण कलश लेकर उपस्थित हो गईं। महिला ने शचीदेवी के चरण अपने हाथों से धोकर गमछे से पोंछ

दिये। फिर एक बाँदी ने नन्दा के चरण धोये। इसके बाद तश्तरियाँ दोनों के सामने रख दी गई।

शचीदेवी और नन्दा के जलपान से निवृत्त होने पर महिला ने उनसे पलँग पर आराम करने की प्रार्थना की और स्वयं मोरछल लेकर डुलाने लगीं। बाँदियाँ इस समय तक कक्ष के पिछले द्वार से अन्तर्धान हो चुकी थीं। इसी समय महिला ने एक पत्र शचीदेवी की ओर बढ़ा दिया।

पूर्वपरिचित हस्तलिपि में इस पत्र में लिखा था—

"देवी जी, मैं आपका बहुत उपकार मानता हूँ कि आपने मेरी पुत्री को सुरक्षित रूप में यहाँ तक पहुँचा दिया। अब आप निश्चिन्त हो जाइये और समझ लीजिये कि वह अपने माता-पिता के पास आ गई है। अगर आप पसन्द करें तो उसके साथ कुछ दिन तक महल में ठहर सकती हैं, पर यह सर्वथा आपकी इच्छा और कृपा पर निर्भर है। आपको अपनी आवश्यकता और सुविधा के अनुकूल सभी प्रकार का प्रबंध यहाँ मिलेगा। पर यदि आप ठहरना उचित न समझें तो निश्चिन्त भाव से लौट जा सकती हैं।

"इस महल की मालकिन दो सौ मोहरें माई जी के लिए स्थान और पचास मोहरें आपको तथा दस मोहरें गाड़ीवान को पुरस्कारार्थ भेंट करेंगी। कृपया उन्हें स्वीकार कर लीजिए। माई जी के चरणों में हम भक्तों का प्रणाम अवश्य निवेदन कर दीजिए।"

पत्र पढ़कर उसे नन्दा के हाथ में देते हुए शचीदेवी ने कहा—"बेटी नन्दा, तुझे तेरे असली अभिभावकों के हाथ में सौंपते मुझे बड़ा

सन्तोष हो रहा है। भगवान् ने तेरी तपस्या पूर्ण कर दी। जैसा हम लोगों का अनुमान था, उससे अधिक सुख और ऐश्वर्य तुझे यहाँ प्राप्त होगा। मैं कल सबेरे ही तुझसे विदा होना चाहती हूँ। स्थान की याद मुझे सता रही है, यद्यपि तेरे बिना हम लोगों को कुछ दिन तक वहाँ अच्छा न लगेगा।" कहते कहते उनकी आँखों से आँसू झरने लगे।

"इतनी जल्दी क्यों?" कहती हुई नन्दा पागल की भाँति उठी और शचीदेवी के गले से लिपटकर फूट-फूटकर रोने लगी। उसे समझा-बुझाकर शान्त करना उस समय शचीदेवी के लिए भी कठिन हो गया।

---

(७)

महल के सुसज्जित शयनागार में रात भर शचीदेवी और नन्दा अलग-अलग अपनी-अपनी समस्याओं को लेकर व्यस्त रहीं। जान पड़ता था कि उक्त भद्र महिला के व्यवहार से शचीदेवी को जितना सन्तोष हुआ था, पत्र से उतना ही कष्ट भी हुआ। इस पत्र का लेख उसी प्रकार का था जैसा कि उस पत्र का था जिसे वे स्थान से अपने साथ लाई थीं। शचीदेवी को इस बात का सन्तोष था कि वे नन्दा को ठीक स्थान पर ही छोड़कर जा रही हैं। पर नन्दा की मनोदशा जिस प्रकार की यहाँ आने पर हो गई थी, उसे देखते हुए उसे एकाएक अकेले छोड़कर जाना कुछ अन्याय-सा लगता था। साथ ही पत्र के इस वाक्य ने कि 'आप कुछ दिन नन्दा के साथ और ठहर सकती हैं, या यदि चाहें तो निश्चिन्त भाव से लौट भी सकती हैं,' शचीदेवी के हृदय को विचलित कर दिया था। इन शब्दों में उन्हें अपने प्रति कुछ उपेक्षा भाव की गंध का भी अनुभव हो रहा था। इसने उनकी संवेदना को अधिक मुखरित कर दिया था। साथ ही पत्र की पचास अशर्फ़ियाँ देने की बात भी उनको अच्छी न लगी थी और उन्होंने

उसे अनावश्यक प्रलोभन के रूप में लिया था। पर वे विवश थीं। परि-स्थितियाँ प्रतिकूल और अपने अधिकार से बाहर दिखाई दे रही थीं। कात्यायनी माई ने उन्हें केवल नन्दा को निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचा देने का उत्तरदायित्व सौंपा था जिसे वे पूरा कर चुकी थीं। अब रही बात नन्दा के भविष्य की, उसके लिये वे कर भी क्या सकती थीं!

नन्दा की उलझन दूसरे प्रकार थी। वह बार बार सोचती थी कि इस सोने के पींजड़े में, जिसके द्वार पर एक विकराल तातारी बाँदी नङ्गी तलवार लिये पहरा दे रही है, विजय से मेरी भेंट हो सकेगी या नहीं। बेचारा विजय यह भी नहीं जानता होगा कि मैं कहाँ ठहराई गई हूँ। फिर वह एक ऐसा काम करने जा रहा है जिसमें उसकी जान का ख़तरा है। इसी लिए वह मुझसे अपने मन की बात छिपा रहा था। यदि यह ठीक हो, और उसे कुछ हो जाय तो...!

इसके आगे वह सोच न सकी और तकिए में मुँह छिपाकर रोने लगी। शचीदेवी ने समझा कि वह उससे बिछुड़ने की सम्भावना से रो रही है। इस विचार से उनके मन को बहुत कुछ सन्तोष भी हुआ।

सारी रात इसी तरह बीती। प्रातःकाल के नवीन प्रकाश ने गत रात्रि के कालुष्य को बहुत कुछ धो दिया जिससे शचीदेवी को नवीन साहस प्राप्त हुआ। प्रातःकृत्यों से निवृत्त होकर यथासंभव शीघ्र वे जाने के लिये तैयार हो गईं। महिला भी ठीक समय पर उन्हें विदाई देने के लिये आ गई। विदाई के आवश्यक उपचार के पश्चात् जब वह उन्हें पचास अशर्फ़ियों की भेंट देने लगीं तब शचीदेवी ने यह कहते हुए उसे अस्वीकार

कर दिया—"मेरे साथ रक्षक नहीं हैं, इसलिए मार्ग में यह धन कोई लूट लेगा। दाता यदि सीधे थान में पहुँचाने का प्रबन्ध कर दें तो ठीक होगा।"

विदा होने से पूर्व शचीदेवी ने नन्दा को कुछ आवश्यक उपदेश दिया और फिर भद्र महिला के हाथ में नन्दा का हाथ सौंप वे शीघ्रता से महल से बाहर निकल आईं। हीरा माली उनकी प्रतीक्षा कर रहा था। शचीदेवी के चले जाने पर नन्दा ने एक बार आँखें पसारकर चारों ओर देखा; फिर कटी हुई लता की भाँति पास पड़े हुए पलँग पर गिर पड़ी और फूट-फूटकर रोने लगी।

वह न जाने कब तक इसी प्रकार रोती पड़ी रहती यदि महिला आकर उसे समझाने-बुझाने का प्रयत्न न करती। उसने आते ही नन्दा को गोद में उठा लिया और प्रेमपूर्वक उसके सिर पर हाथ फेरती हुई बोली—"पगली बिटिया है मेरी—अपने मा-बाप के घर आकर कहीं इस तरह भी रोया जाता है?"

नन्दा ने चट अपने आँसू पोंछ डाले और सिसकियाँ भरते हुए पूछा—"कहाँ हैं मेरे मा-बाप?"

"वे जल्द ही तुझे मिलेंगे।"

"कब?"

"कब क्या, शायद आज ही—शायद कल। पर इसी हफ़्ते में ज़रूर मिलेंगे।"

"क्या आप मेरी मा नहीं हैं?"

नन्दा के इस वात्सल्यपूर्ण सीधे-सादे प्रश्न ने महिला को विचलित कर दिया। अपने को बहुत कुछ सँभालते हुए उसने उत्तर दिया—"तब तक तुम मुझे मा कह सकती हो।"

"क्या मेरी मा भी आपकी जैसी ही हैं?" नन्दा ने आश्वासन पाकर प्रश्न किया।

"मुझसे भी अच्छी।" महिला ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया।

विस्मय और कौतूहल के आवेग से नन्दा पलँग से उतरकर नीचे खड़ी हो गई और कहने लगी—"आप बड़ी अच्छी हैं। क्या आप मुझे अपनी मा से आज ही नहीं मिला सकतीं?"

"मिला क्यों नहीं सकती, पर उनकी आज्ञा नहीं है।"

"उन्होंने क्यों आज्ञा नहीं दी?" नन्दा ने शिशु-सुलभ भोलेपन से प्रश्न किया।

"उनकी सब बातें अजब ही होती हैं। वे कब क्या करना चाहती हैं, यह कोई नहीं जान सकता।"

नन्दा का रोना-धोना हवा हो गया। वह अपनी मा की कल्पना में निमग्न हो गई। उसकी मा के पास बहुत-सा धन और बहुत-से नौकर-चाकर होंगे; वे बहुत सुन्दर होंगी, देखने में वे रानी-सी लगती होंगी, लेकिन अब तक मा ने क्यों नहीं मुझे अपने पास बुलाया। बड़ी निष्ठुर हैं वे। अपनी लड़की को कोई यों भी भुला देता है। इसी लिए वह अब तक अपने को अनाथ समझती रही। वह सचमुच बड़े भ्रम मे थी। उसके क्या नहीं है! यदि आज विजय किसी प्रकार जान पाते कि नन्दा रानी की बेटी है, तो उन्हें कितना आश्चर्य होता। फिर वे मुझे बहुत अधिक प्यार करते और शायद यह भी कहते कि नन्दा अब मैं तुझे कभी न छोड़ूँगा—सदा अपनी आँखों के आगे रखूँगा...!

वह विजय की उपस्थिति के लिए छटपटा उठी। अब तक उसके पास

केवल एक बल था, प्रेम का। उसके सहारे ही वह विजय के हृदय पर आंशिक अधिकार प्राप्त कर सकी थी। पर आज तो उसके पास सब कुछ था—यदि कुछ नहीं था तो केवल विजय !

अपनी मा की अनेक रूपों में कल्पना करने में नन्दा उस दिन ऐसी व्यस्त रही कि उसे शचीदेवी की याद एक बार भी नहीं आई। मा उससे क्या कहेंगी—वह मा का अभिवादन किस प्रकार करेगी—देखते ही उनके चरणों पर गिर पड़ना और फूट-फूटकर रोने लगना क्या ठीक रहेगा—शायद ऐसा करना ठीक न होगा—मा समझेंगी कि मैं स्थान में बहुत दुखी रही हूँ। नहीं, यह ठीक नहीं होगा—तो क्या दूर से ही हाथ जोड़कर उन्हें नमस्कार करना ठीक रहेगा—पर इस प्रकार का अभिवादन तो अच्छा नहीं होता—उसमें आत्मीयता नहीं रहती—कहीं मा यह न समझ लें कि मैं साधारण शिष्टाचार भी नहीं जानती—और यदि मैं जाकर सीधी उनकी गोद में गिर पड़ूँ—निश्चय ही ऐसा करने पर वे मेरे सिर पर हाथ फेर-कर मुझे प्यार करेंगी—पर मेरे और छोटे भाई-बहन भी तो होंगे—मुझ अपरिचिता को इस तरह अपनी मा की गोद में बैठते देखकर क्या उन्हें बुरा न लगेगा—अवश्य बुरा लगेगा—तब क्या करना ठीक रहेगा—यदि मा को देखकर मैं अपरिचित की भाँति चुपचाप खड़ी रहूँ और उन्हीं की ओर से आरंभ की प्रतीक्षा करूँ—शायद यही ठीक रहेगा—यद्यपि इसी ढंग में कुछ ढिठाई या आत्माभिमान की छाया अवश्य है। मा इसे अशिष्टता भी समझ सकती हैं—पर यदि मा के सिवा वहाँ अन्य कोई स्त्री भी हुई—इस दशा में मेरा चुपचाप खड़ा रहना ही शायद सबसे ज़्यादा ठीक रहेगा !

नन्दा की विचार-धारा मा की दिशा में न जाने कब तक एक रूप से बहती रहती, यदि संध्या से कुछ पहले वही महिला उसे अचानक यह संवाद न सुनाती कि आज तेरे पिता तुझसे भेंट करने आ रहे हैं। इस अप्रत्याशित संवाद ने नन्दा को एक साथ विचलित कर दिया। वह यह निश्चय न कर सकी कि उसे क्या करना चाहिये। कुछ देर इधर-उधर करने के पश्चात् उसने पूछा—"क्या मेरी मा भी उनके साथ आ रही हैं?"

"नहीं", सिर हिलाकर भद्र महिला ने संकेत कर दिया।

नन्दा कुछ देर तक खोई-खोई-सी बैठी रही। फिर उसने प्रश्न किया—"पिता जी किस समय आ रहे हैं?"

"आधी रात के बाद।"

"आधी रात के बाद!" नन्दा आश्चर्य से चौंक पड़ी! "क्यों, वे दिन में क्यों नहीं आते?"

"वे परिवारवालों से रात में ही भेंट करते हैं। दिन में उन्हें छुट्टी नहीं मिलती।"

"वे क्या करते हैं—क्या वे सिपाही हैं?" नन्दा ने सुना था कि सिपाहियों को बहुत काम करना पड़ता है।

"यह सब जानना तुम्हारे लिए ज़रूरी नहीं है। यही समझ लो कि वे बहुत से काम करते हैं। इसी लिए दिन में किसी से बात करने की उन्हें फ़ुरसत नहीं मिलती।"

"पर मैं उन्हें पहचानूँगी कैसे?"

"वे अकेले ही आयेंगे। उनके साथ और कोई नहीं होगा।"

"आप भी मेरे पास रहेंगी न ?"

"यह कुछ ज़रूरी नहीं है।"

"मुझे डर जो लगेगा ?"

"बाप की मौजूदगी में लड़की को डरने की क्या ज़रूरत है ?" यह कहकर और नन्दा को कुछ अन्य आवश्यक बातें बताकर महिला उसके कक्ष से बाहर हो गई।

कुछ देर तक किंकर्त्तव्यविमूढ़ की भाँति खड़ी रहने के बाद नन्दा अपने पिता के स्वागत की तैयारी करने लगी। महिला ने विविध प्रकार के वस्त्राभूषणों से भरा एक पिटारा उसको दिया था, पर उन वस्त्रों को ठीक से पहनना नन्दा को आता नहीं था। उसके लिए यह निर्णय करना भी कठिन था कि वह अपने पिता से मिलने के लिए किस प्रकार के वस्त्र पहने। अन्त में एक जड़ाऊ लहँगे पर उसकी निगाह ठहर गई जो अंधकार में भी चमक रहा था। उसने उसी को पहनना ठीक समझा।

---

(८)

"अजब परेशानी है!" चौरंगी सराय के सदर कमरे में लगे हुए तख़्त पर मसनद के सहारे लेटे हुए व्यक्ति ने कुछ झुँझलाहट के साथ कहा। उसकी रोब भरी काली दाढ़ी, गौरवर्ण, काली चमकीली आँखें, लम्बा गठीला बदन और लम्बा काला चोग़ा उसके तुर्क़ अमीर होने की सूचना दे रहे थे।

"पूरब में अफ़ग़ान, पश्चिम में अफ़ग़ान, कम्बख़्त सारे हिन्दुस्तान को अफ़ग़ानिस्तान बनाये हुए हैं। आँख के अन्धों को यह भी होश नहीं कि—कुलाहे खुसरवी ओ ताजे शाही, बहरकुल के रसद हाशाओ कुल्ला*—तक़दीर का सितारा बुलन्द था, तभी जब कुछ न कर सके, विकरमाजीत जैसा बहादुर सिपहसालार जब घुटने टेककर रह गया तो फिर इनकी बिसात ही क्या है। यह अब चले हैं शेर के मुँह में से बकरी की टाँग खींचने! मालूम होता है कि इनकी अक़्ल मारी गई है!"

यह कहते हुए उसने सामने रखे काग़ज़ों को उलट-पलटकर देखा।

---

* एक प्रसिद्ध पुरानी कहावत, जिसका अभिप्राय है—"ख़ुसरो की कुलाह (फ़ारस का प्रतापी बादशाह ख़ुसरो मुकुट की जगह कुलाह पहनता था।) और बादशाही ताज हर किसी को सहज में, अचानक और सहसा नहीं मिलता।

फिर इतनी ज़ोर से पास रखी हुई घंटी पर दस्तक दी कि द्वार पर खड़ा दरबान घबड़ा गया और हुज़ूर-हुज़ूर कहता भीतर दौड़ आया।

काग़ज़ों पर निगाह जमाये ही अमीर ने कहा—"आज इन हरामियों की लाशों का एक अम्बार लग जायेगा!"

फिर अपनी तलवार की ओर देखा जो सामने खूँटी पर लटक रही थी। साथ ही पेशक़ब्ज़ को कमर पर ठीक किया और दाढ़ी पर एक बार ऊपर से नीचे तक हाथ फेरा। उसकी प्रश्नसूचक आँखें दरबान पर टिकी थीं।

"पीरो मुरशिद, आग़ामीर हाज़िर होनेवाला है।" दरबान ने कुछ काँपती हुई आवाज़ में निवेदन किया।

"हरामी पिल्ला, अब तक कहाँ मर गया था। फ़ौरन उसे हाज़िर करो।" अमीर ने बेसबरी और क्रोध मिले स्वर में कहा। इसके बाद वह फिर अपने सामने रखे हुए काग़ज़ों को देखने लगा। दरबान तुरन्त बाहर चला गया।

कुछ देर बाद वह अपने साथ एक ऐसे आदमी को लेकर आया जिसका मैला और चुस्त अँगरखा बतला रहा था कि वह अभी-अभी कहीं दूर के सफ़र से आ रहा है। आते ही उसने घुटने झुकाकर सलाम किया और फिर अदब के साथ एक ओर खड़ा हो गया।

अमीर ने आँखें उठाईं और आनेवाले को सिर से पैर तक गहरी निगाह से देखा। फिर सामने रखे हुए काग़ज़ों में एक स्थान पर उँगली रखकर पूछा—"आग़ा साहब, आप इस दोज़ख़ के कुत्ते का पीछा कहाँ से कर रहे हैं?"

"सराय गुपाल से जनाब आली।"

"कब चला था यह अपनी जगह से?"

"रमज़ान की तीसरी को, आलीजाह!"

"और सराय गुपाल से?"

"चौथी की दोपहर को।"

"वहाँ रात को नहीं ठहरा था?"

"नहीं जनाब, घोड़े को दाना-पानी देने और आराम करने के लिए दो घड़ी ठहर गया था।"

"उस रात किस पड़ाव में ठहरा था?"

"नबीगंज की सराय में।"

"यानी दो कोस का सफ़र आधे दिन में तय किया?"

"जी हुज़ूर, बहुत नज़दीक-नज़दीक पड़ाव करता आ रहा है।"

" यह ग़ैर मामूली बात है। कुछ नशा-वशा करता है क्या?"

"जहाँ तक मुझे मालूम है, कोई नशा-वशा नहीं करता।"

"बतला सकते हो कि यह इतने धीरे-धीरे सफ़र क्यों कर रहा था?"

"मुझे ख़ुद ताज्जुब है, सरकार!"

"तुम बड़े निकम्मे आदमी हो। अच्छा, फ़िरोज़ाबाद से इसकी निगरानी किसके ज़िम्मे थी?"

"दौलत ख़ाँ के।"

"दरबान, दौलत ख़ाँ को हाज़िर करो।"

"इस वक़्त सराय खास में हाज़िरी दे रहा है, ग़रीब परवर!" दरबान ने हाथ जोड़कर निवेदन किया।

"उसकी जगह क़ादिरबख़्श को तैनात कर दो और उसे अभी हाज़िर करो।"

"जो इरशाद !" यह कहकर और एक बार फिर ताज़ीम करके दरबान कमरे से बाहर हो गया। उसके पीछे-पीछे आग़ामीर भी निकल गया। अमीर ने फिर घंटी बजाई। दूसरा दरबान हाथ जोड़े दौड़ा आया।

"इमाम को हाज़िर करो !" अमीर ने हुक्म दिया।

"जो इरशाद !" कहकर दरबान तुरन्त चला गया और सराय चौरंगी के सदर इमाम को अपने साथ ले आया।

"तुम यहाँ के इमाम हो ?" अमीर ने इमाम की सफ़ेद दाढ़ी और पीले चेहरे की ओर देखते हुए प्रश्न किया।

"ग़रीब परवर।"

"कितनी पुरानी नौकरी है ?"

"हुज़ूर, शेरशाही वक़्त से है।"

"तो तुम अफ़ग़ानों के कुत्ते हो—ख़ुद भी शायद अफ़ग़ान ही हो ? क्या नाम है तुम्हारा ?"

"माक़ूल ख़ाँ, सरकार !" इमाम भय से काँपता हुआ बोला।

"अच्छा ख़ाँ साहब, आज से आप अपने को सराय चौरंगी की सदर इमामी से सुबुक-दोश समझें। ठहरिए, ख़ुद तशरीफ़ ले जाने की ज़रूरत नहीं।" यह कहकर अमीर ने बाईं ओर के कमरे की ओर, जिसके द्वार पर चिक लटक रही थी, देखा।

तुरन्त छः सशस्त्र सैनिक बाहर निकल आये और इमाम की मुश्कें बाँध लीं।

"ख़बरदार, इसे बिना किसी शोरग़ुल के ठिकाने पर पहुँचा दो।" अमीर ने धीरे से कहा।

इमाम को लिये हुए सिपाही दबे पाँव पिछले दरवाज़े से बाहर हो गये।

"दौलत ख़ाँ हाज़िर है।" पहले दरबान ने प्रवेश करते हुए अदब के साथ सूचना दी।

"बतलाओ दौलत ख़ाँ, फ़िरोज़ाबाद में उस आदमी के बच्चे ने किससे क्या बातचीत की?"

"किसी बाहरी आदमी से कोई बातचीत नहीं की सरकार।"

"तुम झूठ बोलते हो। तुम जानते हो कि मुक़ामी ख़ुफ़िया नवीस ने क्या लिख भेजा है?" अमीर ने काग़ज़ों की ओर संकेत करते हुए कहा।

"हुज़ूर, मैं बराबर उसकी निगरानी करता रहा। उस रात तो मरदूद सराय से बाहर भी नहीं निकला था। रात भर बैठा-बैठा ख़त लिखता और फाड़ता रहा था। सबेरा होने से कुछ पहले थोड़ा झपक भी गया था?"

"क्या लिखता रहा था वह?"

"ये टुकड़े हैं हुज़ूर," कहकर दौलत ख़ाँ ने कुछ टुकड़े पेश कर दिये।

काग़ज़ के टुकड़ों को सँभालकर सामने रखी सन्दूक़ची के एक ख़ाने में रखते हुए अमीर ने कहा, "अब तुम जा सकते हो। मोहतिसब* को हाज़िर करो।"

दौलत ख़ाँ के चले जाने के कुछ ही क्षण बाद दरबान के साथ मोहतिसब ने कमरे में प्रवेश किया और शाही ढंग से कोर्निश बजाकर वह एक तरफ़ खड़ा हो गया।

---

* मुग़लों के समय का एक अधिकारी, जिसका पद आजकल के 'पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट' के समान था।

"दीन-दुनिया की भी आपको कुछ फ़िक्र है, मोहतिसब साहब ?" अमीर ने भवों में बल डालते हुए पूछा।

"बन्दा ख़ास जगह से ही आ रहा है, परवरदिगार !"

"जानते हो, ख़ानख़ाना तुम पर कितना भरोसा रखते हैं ?"

"बन्दा भी सरकार के हर इशारे पर सर देने को तैयार है, ख़ुदा-वन्द।"

"किस नतीजे पर पहुँचे अब तक ?"

"जी ख़ास मतलब तो सब निकल आया है, थोड़ा-सा बाक़ी रह गया है जिसके लिए कुछ आँच दिखाने की ज़रूरत होगी। जाड़े का मक्खन कुछ गर्मी पाने पर ही पूरा-पूरा निकलता है।" यह कहकर मोहतिसब ज़रा रहस्यपूर्ण ढंग से मुस्कराया।

"ठीक है। उसका इन्तज़ाम भी करना है। अच्छा, इस वक्त ख़ानख़ाना कहाँ तशरीफ़ रख रहे हैं ?"

"नमाज़े सहर के बाद कुछ चुने हुए सरदारों के साथ तराई के शिकार-गाह की जानिब तशरीफ़ ले आये हैं।"

"अच्छा मज़ाक़ है। तलवार गरदन पर लटक रही है और ख़ानख़ाना साहब हैं कि अमीरी की रस्म अदा करते फिर रहे हैं। किसी ख़ास लिबास में हैं ?"

"जी नहीं, शिकार के ही लिबास में हैं ?"

"वही ज़रूरी था। अच्छा, उधर पूरी निगाह रखना। जो कुछ हो रहा है, तुमसे छिपा न होगा ?"

"जी, मैंने पूरा इन्तज़ाम कर रखा है।"

"और उसका क्या हाल है ?"

"वह भी ठीक है ।"

"तो उसे हाज़िर करो, क्यों न उससे यहीं और आज ही निबट लिया जाय ।"

"बेहतर है । मैं माक़ूल इन्तज़ाम किये देता हूँ ।"

यह कहकर फिर एक बार शाही क़ायदे से आदाब करने के बाद मोहतिसब बाहर हो गया। इसके बाद आधी घड़ी तक कमरे में सन्नाटा छाया रहा । केवल बीच-बीच में अमीर के काग़ज़ उलटने-पलटने या सन्दूक़ची खोलने-बन्द करने का शब्द आता रहा । फिर दरबान एक व्यक्ति को लेकर कमरे में आया । ड्योढ़ी के भीतर पैर रखते ही उसने साथ के आदमी से, जो कुछ देहाती-सा मालूम पड़ता था, कहा—"मीर अद्ल, अमीरुल उमरा, वकील मुतलक़, मुल्ला पीर मोहम्मद को इस तरह आदाब बजाओ ।"

फिर अपने हाथों से पकड़कर उसकी गरदन अमीर के पैरों के आगे झुका दी । उसके हाथ किसी अज्ञात कारण से ही आपस में मिल गये थे । मुल्ला साहब का नाम ही उसके दुर्बल शरीर में हड़कम्प पैदा करने को शायद काफ़ी था ।

इसके बाद दरबान ने स्वयं भी नियत प्रकार से अभिवादन करते हुए अर्ज़ किया—"साईस रामपाल ख़िदमत में कुछ गुज़ारिश करने को हाज़िर हुआ है ।"

भेद भरी दृष्टि से रामपाल की ओर देखते हुए अमीर ने कहा—"तुम बहुत सीधे आदमी दिखाई देते हो जी ?"

रामपाल गरदन झुकाये चुपचाप खड़ा रहा। उसे अपने दिल की धड़कन साफ़ सुनाई दे रही थी।

"कहो, क्या कहना है तुम्हें ?"

"हुज़ूर," रामपाल के मुँह से केवल यही एक शब्द निकल सका। उसे लगा जैसे उसका कण्ठ सूख गया है और एक शब्द भी बोल सकना उसके लिए असम्भव हो गया है।

"कहो न, डरते क्यों हो! तुम तो राजा-महाराजाओं के हमेशा साथ रहनेवालों में हो। मैं भी तुम्हें अपना दोस्त ही मानता हूँ, कुछ ग़ैर नहीं। तुम जो कुछ कहना चाहते हो, बेखटके कह सकते हो।"

रामपाल एकटक अपने पैरों की ओर गरदन झुकाये देखता रहा। प्रयत्न करने पर भी उसके मुँह से कुछ न निकला। इसी समय कमरे की चिक को हटाकर दो भयानक मूर्त्तियों ने कमरे में प्रवेश किया और दोनों रामपाल के पीछे एक-एक कोने में खड़ी हो गईं। रामपाल ने निगाह को कुछ दायें-बायें घुमाकर उनकी ओर देखा। उसके सारे शरीर से एक साथ पसीना निकल पड़ा।

अमीर के संकेत पर दरबान ने तिजोरी खोली और उसमें से दो तोड़े बाहर निकाले। फिर अमीर ने अपने हाथ से एक तोड़े को अपने सामने तख़्त पर ख़ाली कर दिया। खनखन करती हुई और अपनी चमक से चकाचौंध पैदा करती हुई मोहरें बाहर निकल पड़ीं। अमीर ने बड़ी सावधानी के साथ गिना। फिर उसने पाँच-पाँच की ढेरियाँ लगाईं। इस तरह कुल बीस ढेरियाँ बनीं। इसके बाद मुस्कराते हुए उसने रामपाल की ओर देखा और कहा—"देखो जी, अगर तुम ख़ुद कुछ नहीं कह सकते

तो मेरे कुछ सवालों का जवाब दो। हर सवाल के सही जवाब के लिए तुम्हें एक ढेरी इनाम में दी जायगी। अगर तुमने सब सवालों का ठीक-ठीक जवाब दे दिया तो यह सारी मोहरें तुम्हारी हो जायँगी।"

यह कहकर वह चुपचाप रामपाल के चेहरे के भाव-परिवर्त्तन को पढ़ने का प्रयत्न करने लगा।

इतना स्वर्ण इकट्ठा रामपाल ने अपनी ज़िन्दगी में कभी न देखा था। यदि यह सब उसे मिल जाय तो वह भी अमीर हो जाय! फिर उसे किसी के घोड़े के पीछे दौड़ने की ज़रूरत न रहे! वह भी अपना सफ़ेद मकान बनवाकर आराम से रहे! बाल-बच्चे, नौकर-चाकर, उसके पास भी सब कुछ हो जाये! यह अमीर साहब भी कितने सज्जन हैं! उसके साथ कितनी भलमनसी का बर्त्ताव कर रहे हैं!

रामपाल के मुँह में पानी भर आया। उसे अपना कण्ठ खुलता प्रतीत हुआ। कुछ खाँसकर उसने हाथ जोड़कर कहा—"आपकी क्या आज्ञा है?"

रामपाल की आँखों में सहसा झलक उठनेवाली लोभ की चमक अमीर से छिपी न रह सकी। रामपाल को रास्ते पर आया देख अमीर ने कहा—"मैं कुछ सवाल करूँगा। तुम्हें उनका सही-सही जवाब देना होगा।"

"मैं तैयार हूँ।"

"अगर तुम मेरे सवालों का सही-सही जवाब दे सके तो यह सारी मोहरें तो तुम्हें मिलेंगी ही, कुसुमख़ोर परगने की जागीर भी बख़शीश में दी जायगी। फिर तुम भी हमारी तरह शाही हाकिम कहलाओगे?"

अमीर ने रंग को पक्का करने के लिए एक और बोर दिया। राम-

पाल का मन चंचल हो उठा। लोभ का मोह उसकी सहनशक्ति का अतिक्रम कर गया। घुटनों के बल बैठकर उसने अमीर के पैर के अँगूठे चूम लिये और कहा—"मैं आपकी ख़िदमत करने को तैयार हूँ।"

अमीर मसनद के सहारे उठंग गया और लापरवाही से पूछने लगा—"तुम्हारे मालिक का असली नाम क्या है?"

"पूरब के लोग उन्हें नाहरपाल के नाम से जानते हैं। पर कड़ा और क़न्नौज में लोग उन्हें विजयपाल कहते हैं।"

"नाहरपाल?" अमीर ने अपनी स्मृति पर कुछ ज़ोर देते हुए कहा—"क्या ये विकरमाजीत के कोई अज़ीज़ होते हैं?"

यह कह अमीर ने मोहरों की एक ढेरी सामने से उठाकर दाहिनी ओर अलग रख दी। रामपाल ने ढेरी की ओर देखते हुए उत्तर दिया—"जी, वे स्वर्गीय महाराज हेमू विक्रमादित्य के भतीजे हैं।"

दूसरी गड्डी को दाहिनी ओर जमाते हुए अमीर ने प्रश्न किया—"तुम्हारे मालिक घर पर क्या किया करते थे?"

"वही सब कुछ, जो उनकी उम्र के राजकुमार किया करते हैं—शिकार, सैर-सपाटा, व्यायाम, घोड़े की सवारी और जब-तब जागीर की देख-भाल!"

"कुछ और भी?"

"और कुछ नहीं।"

"देखो जी, तुम्हारा यह जवाब ग़लत है। तुम जानते हो कि मैं बदख़्शाँ से लेकर बंगाले तक की पूरी-पूरी ख़बर रखता हूँ। मैं सिर्फ़ तुम्हारी ईमान-

दारी की जाँच करने के लिए तुमसे पूछ रहा हूँ। वरना मुझसे छिपा कुछ भी नहीं है।"

रामपाल चुपचाप अमीर के मुँह की ओर ताकने लगा। वह शायद अमीर का अभिप्राय समझने की कोशिश कर रहा था। इसी समय उसके पीछे खड़े जल्लादों ने हरकत की। रामपाल को स्पष्ट दीखने लगा कि उसकी झोली और सामने तख़्त पर रखी हुई अशर्फ़ियों के बीच का अन्तर उस अन्तर से कहीं बड़ा है जो उसकी गरदन और जल्लादों के प्रहार के बीच है।

अमीर ने फिर प्रश्न किया—"अच्छा, रास्ते में उन्होंने क्या-क्या किया?"

"उन्होंने पहला पड़ाव गुरसहायगंज में किया, दूसरा छिबरामऊ में, तीसरा...!"

"चुप रहो, तुम बेवक़ूफ़ हो। तुम बिना समझे जवाब देने लगते हो।" अमीर उठकर सीधा बैठ गया। जल्लादों की हरकत में और भी सरगर्मी आ गई।

रामपाल किंकर्त्तव्य विमूढ़ की भाँति खड़ा रहा। अमीर ने फिर प्रश्न किया—"रास्ते में उसने किसी से जान-पहचान या बातचीत की थी?"

"माई कात्यायनी के थान से एक लड़की बहली पर आगरे की ओर आ रही थी। गुरसहायगंज के पड़ाव से आगे चलकर उससे मालिक की जान-पहचान हो गई थी। वहाँ से सब लोग साथ ही साथ यहाँ तक आये।"

"अब आये रास्ते पर।"

यह कहते हुए अमीर ने एक गड्डी और दाहिनी ओर बढ़ा दी। रामपाल ने देखा, पन्द्रह मोहरें उसके खाते में जमा हो चुकी हैं।

"तुम्हारे मालिक उस लौंडिया को चाहने लगे हैं क्या?"

"ठीक नहीं कह सकता। पर चिट्ठी-पत्री रास्ते भर होती रही थी।"

"सूरत-शक्ल में वह कैसी है?" रामपाल की आँखों में आँखें डालते हुए अमीर ने प्रश्न किया।

"चम्पई रंग, छरहरा बदन, पन्द्रह-सोलह की उम्र, लाल-लाल पतले होंठ, नरियाला चेहरा, बड़ी-बड़ी काली-काली आँखें, मुलायम गावदुम उँगलियाँ—बड़ी ख़ूबसूरत है।"

एक अँगड़ाई लेते हुए अमीर ने एक और ढेरी उठाकर दाहिनी ओर रख दी। अब रामपाल की समझ में कुछ-कुछ आ गया था कि अमीर किस तरह के उत्तर चाहता है। उसे अपनी बुद्धिमानी पर संतोष होने लगा।

"यह कहाँ तक सच है कि तुम्हारे मालिक की जान-पहचान उससे रास्ते में ही हुई है?" अमीर ने प्रसंग को बदलते हुए प्रश्न किया।

"इससे पहले उनमें जान-पहचान हो ही कैसे सकती थी?"

"ख़ैर, तो क्या तुम यह बतला सकते हो कि जुदा होते वक़्त उन दोनों में फिर कब और कहाँ मिलने का क़ौल-क़रार हुआ था?"

"वे लोग उस दिन बहली से बहुत पीछे पैदल चल रहे थे। उनकी बातचीत मैं सुन नहीं सका। जब दोनों बहली के पास पहुँचे तब शचीदेवी ने मालिक को अपने साथ रहने से मना कर दिया और मुझे भी बहली पर से उतरकर अलग-अलग चलने को कह दिया।"

"अच्छा, इसे भी जाने दो। तुम्हारे मालिक की दोस्ती उनके इलाक़े में किस तरह के लोगों से है?"

"यों तो उनकी दोस्ती सैकड़ों अफ़ग़ानों और हिन्दुओं से है, पर तीन दोस्त उनके बहुत गहरे हैं—मुराद ख़ाँ, चम्पालाल और इम्दाद भाई।"

"ये लोग कौन हैं और कहाँ के रहनेवाले हैं?"

"चम्पालाल राजा भगवानदास का लड़का है। मुराद बेग कहीं पश्चिम का रहनेवाला है और इम्दाद भाई ख़ास जौनपुर के एक अफ़ग़ान सरदार का लड़का है।"

"मुराद बेग मुसाहब बेग के साहबज़ादे हो सकते हैं। ख़ानख़ाँना को उनकी ज़रूरत भी होगी। ख़ैर तुम्हारे ये जवाब बहुत माक़ूल हैं।" कहते हुए अमीर ने तीन गड्डियाँ फिर उठाकर दाहिनी ओर रख दीं।

इसी समय क़ादिरबख़्श ने घबराहट की मुद्रा में कमरे में प्रवेश किया।

"ठहरो रामपाल! कहो मियाँ क़ादिर, सब चौपट कर आये न!"

"नहीं जनाब, पर ज़रा ज़रूरी काम है और आपके मशविरे की ज़रूरत है।"

"कहो न फिर?"

"तख़लिये में अर्ज़ करना चाहता हूँ।"

"अच्छा रामपाल, तुम अब जा सकते हो। यह अपने साथ सब लेते जाओ।" कहते हुए अमीर ने तोड़े की बची हुई मोहरें भी उधर बढ़ा दीं। फिर कहा—"मगर देखो, मुझसे बराबर मिलते-जुलते रहना। इस दर्मियान अगर तुम्हारे मालिक की किसी के साथ ख़त-किताबत हो तो सब

ख़त लाकर मुझे ज़रूर दिखा जाना। तुम्हें हर ज़रूरी ख़त के लिए पाँच से लेकर दस अशर्फ़ियाँ तक इनाम में मिलेंगी—समझे न ?"

यह कहकर अमीर क़ादिरबख़्श की ओर घूम गया। अशर्फ़ियों को फेंट में बाँधकर रामपाल चुपचाप बाहर निकल गया। उसके पैर आज मन-मन के भारी हो रहे थे। शायद कमर के बोझ के कारण—शायद मन के बोझ के कारण !

---

(६)

"मैं किसी दूसरे नतीजे पर पहुँच रहा हूँ," एकान्त हो जाने पर क़ादिरबख़्श ने निवेदन किया।

"वह क्या ?" मुल्ला ने प्रश्न-सूचक भाव से उसकी ओर देखते हुए पूछा।

"अपनी चाल-ढाल से वह नौजवान बड़ा नेकचलन और शरीफ़ मालूम पड़ता है।"

"हाँ, ख़ानदानी तो वह है ही—महाराज हेमू विक्रमादित्य का भतीजा!"

"उसका इरादा भी बुरा नहीं मालूम होता।"

"यह ख़याल ग़लत है। अपना इरादा कोई दीवालों पर लिखता नहीं फिरता।"

"जो भी हो, चाल-ढाल पर अच्छे और बुरे इरादे का साया ज़रूर पडता है। मैं हज़ारों मामलों में इसका तजरबा कर चुका हूँ।"

"लेकिन सब मामले एक से नहीं होते—न ही सब मुलज़िम एक-सी हालत में एक ही तरह से पेश आते हैं।"

"गत रात लगातार कई घंटे तक मैं उसका चेहरा देखता रहा—भोला-भाला, शरीफ़ चेहरा; जिसमें जवानी की उमंगें भी ज़ाहिर नहीं होतीं। उसकी जगह अगर और कोई होता तो बाज़ार की सब गलियाँ छान डालता, पर वह है कि जब से आया है, अपनी कोठरी में क़ैद है। ज़रूरत के सिवा सराय के सहन तक में नहीं आता। खाने-पीने का भी कोई ख़ास शौक़ नहीं दिखाई पड़ता। जो कुछ ब्राह्मण ने पेश कर दिया, चुपचाप खा लिया। शाम को जितने दाम बतलाये गये चुपचाप गिन दिये। वह उन अमीरज़ादों की तरह नहीं है जो फर्माइशों के मारे नाक में दम कर देते हैं—यह लाओ वह लाओ—इस्ताम्बूली लाओ, अस्फ़हानी लाओ। ज़रा भी कुछ गड़बड़ हुआ कि समझ लीजिए कि ख़ानसामाँ की शामत आ गई। पैसा देने में ऐसे कंजूस कि कौड़ी-कौड़ी को दाँत से पकड़ेंगे।"

"ठीक है। लेकिन इस तरह के आदमी ख़तरनाक नहीं होते। हाफ़िज ने साफ़ कहा है कि उससे डरो जो जवानी पाकर भी परहेज़गार बना रहता है!"

"यह तो वक्त ही बतलायेगा कि वह ख़तरनाक है या नहीं। हाँ, यह ज़रूर है कि अगर आप उसे एक दफ़ा देख लें तो यक़ीनन आप भी उसे प्यार करने लगें।"

"ओह, तब तो अच्छा हुआ कि मैंने उसे देखा नहीं। ख़ैर, हमें तो सल्तनत का इन्तज़ाम सँभालना है। इन्तज़ाम की तलवार यह नहीं देखती कि सिर ख़ूबसूरत है या बदसूरत। आख़िर घरेलू मक्खी को शहद के छत्ते में घुसने की ज़रूरत क्या थी?"

"मुझे तो यही समझ पड़ता है कि वह उसी लौंडिया के चक्कर में ही

यहाँ तक आया है। उसे न ख़ानख़ाँना से कुछ मतलब है, न मुग़ल-सल्तनत से।"

"मुमकिन है, आपका अन्दाज़ ठीक हो, पर ख़ुफ़ियानवीसों की बहुत पहले की ऐसी इत्तिलायें मौजूद हैं जिनसे उसके साज़िश में शामिल होने का पता चलता है। फिर दुश्मन का लड़का दुश्मनी करने आयेगा, दोस्ती करने नहीं।"

"अभी तक तो उसने कुछ किया नहीं है।"

"मौक़ा न मिला होगा। मौक़ा मिलने पर कभी न चूकेगा।"

"ख़ैर, यह फ़रमाइए कि हमें अब क्या करना होगा?"

"मैं समझता हूँ, उसके पास कुछ शिनाख़्ती चीज़ें ज़रूर होंगी।"

"उसे गिरफ़्तार किये बिना उन चीज़ों का पता कैसे लग सकता है?"

"गिरफ़्तार करना अभी ठीक नहीं है। पहली बात तो यह है कि उसे गिरफ़्तार कर लेने पर उसके और साथी नौ-दो ग्यारह हो जायेंगे। इस तरह हमें उनके इरादे या ताक़त का पता नहीं लगेगा और उन सबको गिरफ़्तार करने का मौक़ा भी हाथ से जाता रहेगा। यह तो मानी हुई बात है कि हर एक साज़िश् के पीछे कोई ज़बर्दस्त हाथ रहता है। इनके पीछे भी कोई ज़बर्दस्त हाथ ज़रूर है जो इनकी आवश्यकताओं की पूर्त्ति करता है। जड़ वही है। ये लोग तो उसकी शाख़ें हैं। शाख़ें काटने से काम नहीं चलेगा। जड़ काटना ही ठीक होगा।"

"वह जड़ कौन हो सकता है?"

"बस, यही जानने की तो ज़रूरत है। इसके लिए सबसे पहली बात यह है कि इस जवान को, मनमानी करने के लिए, फ़िलहाल आज़ाद छोड़

दिया जाय। उसके रास्ते में कोई रुकावट न पैदा की जाय। दूर से सिर्फ़ उसकी निगरानी की जाय!"

"फिर शिनाख़्ती चीज़ें कैसे हाथ लगेंगी?"

"तुम कहते हो कि वह अपने कमरे से बाहर नहीं निकलता?"

"हाँ, अभी तक तो ऐसा ही है।"

"पर वह निकलेगा ज़रूर। उसकी प्रेमिका जब यहीं है तो वह इस तरह चुप नहीं बैठा रह सकता। उससे मिलने की ज़रूर कोशिश करेगा।"

"यह तो ठीक है। लेकिन उसके पास पकड़ में आनेवाली कोई चीज़ हुई तो वह उसे भी सदा अपने साथ ही रखेगा और हमें...।"

"पागल हुए हो। डाकू भी अपनी प्रेमिका से मिलने के लिए सफ़ेद पोशों के लिबास में जाता है। वह जगह ही ऐसी होती है। तलवार बाँध कर ज़ियारत नहीं की जाती। ऐसे मौक़े से पूरा फ़ायदा उठाना हमारा काम है। तालियों का गुच्छा तैयार रखो। जैसे ही वह कमरे से बाहर जाय, तुम अन्दर दाख़िल हो जाओ। हर एक चीज़ को ध्यान से देखो। जो चीज़ मतलब की निकले, उसका विवरण दर्ज कर लो। कोई चीज़ अपनी जगह से हटाई न जाय। नहीं तो कमरे में आने पर वह चौकन्ना हो जायगा।"

इसी समय बाहर बरामदे में किसी के पैरों की आहट सुनाई दी। अमीर चुप हो रहा। चिक हटाकर रामपाल को कमरे में दाख़िल होता देख वह मुस्कराया! फिर कहा—"आइए रामपाल जी, क्या ख़बर लाये?"

अमीर का इशारा पाकर क़ादिरबख़्श बाहर चला गया। कादिरबख़्श के चले जाने के बाद रामपाल ने एक सुन्दर चम्पई रंग का लिफ़ाफ़ा अमीर के हाथ पर रख दिया। लिफ़ाफ़ा केवड़े में बसाया गया प्रतीत होता

था। एक बार मुस्कराकर अमीर ने उसे नाक से लगाया। फिर कहा—"केवड़ा मालूम होता है।"

"जी," कहकर रामपाल भी मुस्करा दिया।

"महबूबा को लिखा है।" कहकर अमीर ने ऊपर लिखे पते पर एक नज़र डाली। फिर ध्यान से मुद्रा को देखा। लाख की मुद्रा पर सूर्य की छाप ठीक उतर आई थी। अमीर ने एक तेज़ चाक़ू निकाला और उससे लिफ़ाफ़े के एक किनारे पर पतला चीरा लगाया। मोहर ठीक बनी रही और पत्र निकल आया। उसमें लिखा था—

"प्राणेश्वरी, तुमने इस बार अपूर्व साहस का परिचय दिया है। इससे मुझे बड़ी आशायें होने लगी हैं। अब सबसे पहले हम दोनों के मिलने की आवश्यकता है। इसका ठीक प्रबन्ध करो। मिलने पर और बातें बताऊँगा।

—दर्शनाभिलाषी, वि०।"

पढ़ने के बाद अमीर ने पत्र लिफ़ाफ़े में रख दिया और अरबी गोंद के घोल से लिफ़ाफ़े के किनारे को सफ़ाई से चिपका दिया। फिर उसे पाँच अशर्फ़ियों के साथ रामपाल के हाथ पर रखते हुए कहा—"तुम सचमुच में बड़े काम के आदमी हो। तुम्हारा नाम सल्तनत के आला ख़ैरख़्वाहों में दर्ज किया जायगा और जल्द ही तुम हुज़ूर के एक्कों में शामिल कर लिये जाओगे। वहाँ तुम्हें ऊँची तलब मिलेगी। इनाम और खिलअत की भी कमी न रहेगी। मगर सुनो, इस ख़त का जो जवाब मिले, वह भी मुझे ज़रूर दिखलाते जाना। अगर वह काम का हुआ तो तुम्हें दस अशर्फ़ियाँ इनाम में मिलेंगी।"

रामपाल सलाम करके ख़ुशी-ख़ुशी बाहर चला गया। अमीर के कहने के मुताबिक़ जब वह दोबारा लौटकर आया तो उसके हाथ में इस बार भी चम्पई रंग का एक लिफ़ाफ़ा था। लेकिन इस बार न उस पर मोहर थी, न केवड़े की महक। अमीर ने उसे आसानी से पानी लगाकर खोल दिया। उसमें लिखा था—"आज मेरे पिता जी मुझसे मिलने आयेंगे। मैं बहुत डर रही हूँ। सुनती हूँ कि वे बहुत बड़े आदमी हैं। कहीं मुझसे कोई भूल न हो जाय। मैं तो यह भी नहीं जानती कि उनका किस तरह अभिवादन करना चाहिए। न जाने वे मुझसे क्या कहेंगे। आज मैं बड़ी परेशानी में हूँ। आज भेंट करने का अवसर नहीं मिल सकेगा। कल प्रयत्न करूँगी। कल पिता जी की भेंट का सारा हाल भी मालूम हो जायगा। फिर आप जो कुछ कहेगें, उसे निबाहने का प्रयत्न करूँगी। आप अपने स्वास्थ्य का पूरा-पूरा ध्यान रखिए। कहीं ऐसा न हो कि एक नई जगह में बीमार पड़ जायँ। मैं प्रसन्न हूँ। भेंट होने पर बातें विस्तार से होंगी।

—आपकी दासी नन्दिनी।"

"मासूम बच्ची!" कहकर अमीर ने एक गहरी साँस ली और पत्र को पहले की तरह लिफ़ाफ़े में बन्द कर दिया। फिर उसने दस अशर्फ़ियों के साथ लिफ़ाफ़े को रामपाल के हाथ पर रखते हुए कहा—"जल्द जाकर इसे अपने मालिक के पास पहुँचा दो।"

डेढ़ पहर रात बीत चुकी थी। बाज़ार की रौनक़ बहुत कुछ रात की गोद में विलीन हो गई थी। जो दो-चार दूकानें खुली रह गई थीं, वे भी अब धीरे-धीरे बन्द होती जा रही थीं। बड़ी कोठियों में टट्टों के पीछे चौमुखी दीपक जलाये मुनीम लोग दिन भर का हिसाब मिलाने में व्यस्त थे। महल के सदर फाटक बन्द हो चुके थे और उनके सामने पहरेदार पहरा दे रहे थे। महल के जँगलों से प्रकाश छन-छनकर बाहर आ रहा था। बाहर बन्द होने पर भी, ऐसा प्रतीत होता था, महल का भीतरी जीवन अब प्रारम्भ हुआ है।

इसी समय दो सवार चौरंगी सराय के सामने रुके। इनमें से एक अपने बहुमूल्य परिधान, ऊँचे तुर्की घोड़े और उसके सुनहले साज से कोई दरबारी अमीर ज्ञात होता था। वह कुछ आगे बढ़ा और उसने अपना घोड़ा ठीक फाटक के पास लगा दिया—मानो वह अपनी उपस्थिति से सराय के दरबान को आतंकित करना चाहता हो।

सवार की ओर निगाह जाते ही दरबान ऐसा चौंक पड़ा, मानो पैर के नीचे साँप आ गया हो। उसने तुरन्त बड़े अदब से सलाम किया और फिर आगे बढ़कर घोड़े की बाग थाम ली। वह व्यक्ति घोड़े से उतर पड़ा और सीधा सराय में चला गया।

दूसरा सवार भी जो अपने छोटे घोड़े, मामूली पोशाक और ढाठे से बँधी दाढ़ी के कारण पहले सवार का नौकर-सा लगता था, घोड़े से उतर पड़ा। उसने अपना घोड़ा पास ही खड़े साईस के लड़के को थमा दिया। कुछ क्षण तक वहीं रुककर उसने मानो किसी की प्रतीक्षा की। फिर साधारण अन्यमनस्क भाव से चहलक़दमी करता हुआ वह सलीमशाह के महल में चला गया। उसके भीतर होते ही पूर्व-परिचित ईरानी ड्योढ़ीवान ने फाटक को बाहर से बन्द कर दिया।

नन्दा इस समय अपनी रुचि और समझदारी के अनुसार वस्त्राभूषणों से सजकर पिता के आने की प्रतीक्षा कर रही थी। सामने के सहन में भारी जूतों की आहट पाकर वह चौंक पड़ी और उसका हृदय ज़ोर-ज़ोर से धड़कने लगा। उसने झाँककर बाहर देखा। कहीं कुछ दिखाई न दिया। बाहर का प्रकाश पहले से ही बुझा दिया गया था।

जूतों का शब्द सहन के दक्षिणी भाग की ओर बढ़ता गया और कुछ दूर पर जाकर रुक गया। नन्दा के शयनागार का एक द्वार इसी ओर था।

इसी समय भद्र महिला सहसा नन्दा के कमरे में आई और बोली—"मुबारक क़दम। बेटी नन्दा, तू तैयार है न, जापनाह तुझसे मिलने आ पहुँचे।"

'जापनाह!' नन्दा कुछ आतंकित हो उठी। क्या कोई बादशाह उससे मिलने आये हैं। क्या उसके पिता बादशाह हैं। उसने डरते-डरते महिला से कहा—"मैं तैयार हूँ, माता जी; पर जापनाह मुझसे मिलने क्यों आये हैं?"

"वे तेरे पिता जो हैं, पगली!"

"मेरे पिता जी 'जापनाह' हैं ?"

"और नहीं तो क्या वे कोई मामूली आदमी हैं। वे तुझसे तेरे शयनागार में भेंट करेंगे। चल, वहीं चलकर प्रतीक्षा कर।"

"पिता जी शयनागार में भेंट करेंगे!" नन्दा का रोम-रोम सिहर उठा। बिखरे साहस को बटोरने का प्रयत्न करते हुए उसने पूछा—"आप भी मेरे साथ रहेंगी न, माता जी ?"

"उनकी आज्ञा ऐसी नहीं है।"

"तो फिर अकेली मैं भी न जा सकूँगी।"

"क्यों ?"

"मुझे बड़ा डर मालूम होता है।"

"पागलों की-सी बातें नहीं करते।"—यह कहते हुए महिला ने हाथ पकड़कर नन्दा को उठाया और उसे शयनागार की ओर ले गई। फिर उसे एक पलँग पर बैठने का संकेत करती हुई वह स्वयं कमरे के प्रकाश को बुझाकर बाहर निकल आई। नन्दा मन ही मन भगवान् का ध्यान करने लगी। उसे प्रतीत होता था कि वह किसी ऐसे फन्दे में आ फँसी है, जिससे छुटकारा पाना उसकी शक्ति से बाहर है।

अभी नन्दा पलँग पर बैठी ही थी कि कमरे के पीछेवाला द्वार खुला और एक छाया-मूर्ति ने आकर ड्योढ़ी पर खड़े-खड़े प्रश्न किया—

"सब इन्तज़ाम माक़ूल है न, बेगम मुअज़्ज़िमा ?"

"सब ठीक है, जापनाह।"

"पहरा सब दुरुस्त है न ?"

"जापनाह विश्वास करें कि सब ठीक है।"

"रोशनी—?"

"श्रीमान् के प्रताप के सिवा और कोई रोशनी नहीं है।"

"और वह लड़की?"

"अपनी ख़्वाबगाह में श्रीमान् के स्वागत की प्रतीक्षा कर रही है।"

"क्या वह वैसी ही मासूम और हसीन है जैसी कि मुझे बतलाई गई है?"

"उससे भी ज़्यादा, बन्दा परवर।"

नन्दा चौंक पड़ी। ये शब्द पिता के नहीं हो सकते। वह उठकर पलँग के नीचे खड़ी हो गई और घने अन्धकार में आँखें फाड़-फाड़कर कुछ देखने का प्रयत्न करने लगी।

भारी जूतों के शब्द से नन्दा ने अनुभव किया कि एक छाया-मूर्ति धीरे-धीरे कमरे के मध्यभाग की ओर अग्रसर हो रही है। उसका सारा शरीर सन्न हो गया। उसे ऐसा लगा मानो वह बेहोश हो जायगी। उसने पीछे घूमकर पुकारा—"माता जी!"

इसका कोई उत्तर न मिला।

पदचाप अब उसके पास तक पहुँच चुकी थी। किसी के भारी श्वास-प्रश्वासों का अनुभव वह अन्धकार की नीरवता में भी कर रही थी।

"किधर है तू—ज़रा अपने हाथ का सहारा देना।" छाया-मूर्ति ने भारी पर मंद कंठ-स्वर में कहा।

नन्दा ने अपना काँपता हुआ हाथ आगे बढ़ा दिया।

"तेरा नाम क्या है?"

"नन्दा।" नन्दिनी ने अर्धस्पष्ट स्वर में कहा।

"क्या डर लग रहा है ?" नन्दा के स्वेद-पूर्ण कम्पित हाथ से अनुमान करते हुए छाया-मूर्ति ने पूछा। नन्दा ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह अनुभव कर रही थी कि उसके हाथ को पकडनेवाला हाथ भी काँप रहा है।

"डर मत !" कहकर छाया-मूर्ति ने अपना दूसरा हाथ आगे बढ़ाया और टटोलकर नन्दा के सिर पर रखा। नन्दा कुछ झिझकी। फिर भी वहीं खड़ी रही।

"इधर आ मेरे पास !"

नन्दा ने कुछ पीछे हटने का प्रयत्न किया। पर उसका हाथ छाया-मूर्ति के हाथ में था। विवश होकर उसने फिर पुकारा—"माता जी, कहाँ हैं आप ?"

कोई उत्तर नहीं मिला।

"मेरा हाथ छोड़ दीजिए। मैं आपके पैरों पड़ती हूँ।"

"पागल लड़की, सुन। तू क्यों डर रही है। चल, पलँग पर बैठ। बेगम मुअज़िमा, सब किवाड़ होशियारी से बन्द रहें।"

नन्दा अपने स्थान से हिली नहीं।

"तू मेरी बेटी है, पगली !" छाया-मूर्ति ने आश्वासन के स्वर में कहा।

"जापनाह।"

"तेरे मुँह से यह लफ़्ज़ अच्छा नहीं लगता।"

"क्षमा कीजिए। मैं नहीं जानती कि आपको क्या कहूँ। ग़रीबपरवर, आलीजाह, हुज़ूर...?"

"सिर्फ़ चाचा कहना काफ़ी होगा।"

"चाचा जी...लेकिन क्या आप मेरे पिता नहीं हैं ?" नन्दा ने निराशा-मिश्रित स्वर में प्रश्न किया।

"यह कैसी बातें करती है बेटी। अगर मैं अपने को तेरे जैसी लायक़ लडकी का चाचा भी साबित कर सका तो बड़ी बात होगी। तेरे अब्बाजान का मुझ पर बहुत बड़ा क़र्ज़ है।"

"अब्बाजान का क़र्ज़! मुझे ठीक-ठीक बतलाइए चाचा जी। मैं जो कुछ समझ रही थी, या जो कुछ मुझे बतलाया गया था, क्या वह सच नहीं है ?"

"सब कुछ सच है बेटी। अपनी-अपनी समझ के मुताबिक़ एक ही चीज़ के अलग-अलग पहलू देखे जा सकते हैं और एक ही चीज़ की बाबत तरह-तरह की राय क़ायम हो सकती हैं। पर मैं चाहता हूँ कि तू मेरे साथ मेरी नज़र से नज़र मिलाकर--चीज़ों को देखे। अपने पाकदामन और नेक पिता की छाया तू मुझमें ज़रूर पायेगी।"

"और माता जी ?"

"तुझसे ज़्यादा दूर नहीं हैं। सिर्फ़ पहचाननेवाली नज़र की ज़रूरत है।"

"आप बड़े भले हैं चाचा जी। क्या आप मुझे मेरी मा से मिला देंगे ?" नन्दा ने उत्सुकता से प्रश्न किया।

"इसमें मेरी मदद की ज़रूरत न होगी। तू ख़ुद उससे मिलेगी।"

"आप लोगों ने अब तक मेरी ख़बर क्यों नहीं ली, चाचा जी ?"

"मैं यहाँ नहीं था बेटी। हाँ, तेरी मा ज़रूर यहीं थी। पर वह भी ऐसी हालत में नहीं थी कि तेरी ख़बर ले सकती। तुझे थान में छोड़

आने के बाद उसके लिए एक जगह जमकर रहना मुश्किल हो गया। बेचारी बारह-तेरह साल तक...!"

"क्या उससे अनजान में कोई अपराध हो गया था, चाचा जी ?" नन्दा ने बीच में ही बात काटकर पूछा।

"तक़दीर का सितारा ख़िलाफ़ हो गया था, बेटी। वर्ना उसके जैसी देवियाँ किसी का क्या अपराध कर सकती हैं। तुझसे बातें करते मुझे बहुत अच्छा लगता है, नन्दा। आ बेटी, मेरी गोद में आकर बैठ जा।"

इस बार नन्दा आपत्ति न कर सकी। उसने अपना सिर चाचा जी की गोद में रख दिया।

उसकी रेशम जैसी मुलायम केश-राशि से खेलते हुए छाया-मूर्ति ने कहा—"तू अपनी मा जैसी ही ख़ूबसूरत और भोली-भाली है।"

नन्दा कुछ क्षण तक वात्सल्य का रस लेती रही। सहसा उसके स्मृति-पट पर विजय का आलोक चमक गया। उसने कुछ सँभलकर कहा—"अब फिर आप मुझसे कब मिलेंगे, चाचा जी ? आपसे कुछ ज़रूरी बातें करनी हैं।"

नन्दा के स्वर में इस बार चपलता थी, शिशुसुलभ भोलापन नहीं था। छाया-मूर्ति को स्वर के इस परिवर्तन पर आश्चर्य नहीं हुआ। उसने कहा—"ठीक तो नहीं कह सकता, पर अब मुलाक़ात अकसर हुआ करेगी। तुझे यहाँ पर सब तरह का आराम तो है न ?"

"हाँ, मैं बड़े मज़े में हूँ। पर कृपा करके आप शीघ्र-शीघ्र दर्शन देते रहिए। मैं एक ख़ास विषय में आपसे परामर्श करना चाहती हूँ। बताइए, कब मिलेंगे आप ?"

नन्दा के भोले-भाले हृदय से कोई सरल रहस्य बाहर आने को व्याकुल हो रहा है, यह भाँपने में छाया-मूर्ति को देर न लगी। उसे लगा कि कुछ देर और ठहरने पर नन्दा अपना रहस्य अपने आप खोल देगी। अतः उठने का प्रयत्न करते हुए उसने कहा—"अभी नहीं, इस समय कई ज़रूरी काम हैं। मैं जल्द ही फिर आने की कोशिश करूँगा। तब मैं कुछ ज़्यादा देर ठहरूँगा और तेरी सारी दास्तान सुनूँगा।"

"अब की बार दिन में आइएगा चाचा जी—या कम से कम ऐसे समय में जब कि कुछ प्रकाश तो बना रहे!"

उत्तर में छाया-मूर्ति ने हँस दिया। फिर वह उठकर खड़ी हो गई और उसकी मंद पदचाप से नन्दा ने अनुभव किया कि वह उसके पास से दूर हटती हुई धीरे-धीरे पश्चिम के द्वार की ओर जा रही है। कुछ क्षण बाद पीछे के द्वार के बाहर से बन्द किये जाने का शब्द सुन पड़ा और फिर हाथ में प्रकाश लिये भद्र महिला ने पीछे से पुकारा—"जाग रही है न, बेटी नन्दिनी?"

(११)

चाचा जी के चले जाने पर नन्दा की अजीब हालत हो गई। वह परिस्थिति को ठीक से समझ नहीं पा रही थी। उनके प्रारम्भ के व्यवहार से वह सचमुच डर गई थी। शारीरिक सौन्दर्य के विषय में वे इस तरह प्रश्न करेंगे और इस तरह अँधेरे कमरे में उससे मिलना चाहेंगे, इसका उसे स्वप्न में भी गुमान नहीं था। बातें करने के लिए उसने न जाने क्या-क्या सोच रखा था, पर वह कुछ भी न कह पाई। परिस्थितियों ने उसे कुछ दूसरे प्रकार की बातें करने को विवश कर दिया। वह ऐसी एक भी बात नहीं कर सकी जिससे किसी निश्चय पर पहुँचा जा सकता। वह सन्देह में पड़ गई कि जिनसे वह मिली है, वह वास्तव में उसके कोई होते भी हैं या नहीं।

चाचा जी की इस भेंट से वह अधिक प्रभावित नहीं हुई। कारण, उसने सोचा कुछ और था, हुआ कुछ और। वह महिला से भी भेंट के संबंध में कुछ न कह सकी और बुलाई जाने पर गुम-सुम-सी जाकर खड़ी हो गई। उसे डर था कि भेंट के संबंध में प्रश्न किये जाने पर वह क्या उत्तर देगी। पर महिला ने उससे कोई प्रश्न न किया। यह कहकर कि अब रात बहुत जा चुकी है, थोड़ा-सा गर्म दूध पीकर नन्दा को सो जाना चाहिए। शयनागार की ओर संकेत करके वह चली गई।

नन्दा दूध पीकर पलँग पर लेट गई, पर उसे नींद न आई। बीती हुई घटनायें बार बार उसके मानसपटल पर चित्रित होने लगीं। उसे लगा मानो वह एक जाल में फँस गई है जिससे मुक्ति पाना असंभव है। अपने मा-बाप के संबंध में उसने विचारों और कल्पनाओं का जो महल खड़ा कर लिया था, उसकी नींव अब हिलती दिखाई देती थी और इस महल में रहने को नन्दा का मन अब नहीं तैयार हो रहा था। जहाँ की प्रत्येक बात रहस्यपूर्ण है; जहाँ अपने निकट-संबंधी भी खुलकर बात नहीं करते; जहाँ अपने आत्मीयों से भी इच्छानुसार नहीं मिला जा सकता, वहाँ रहकर वह क्या करे!

महल में रहनेवाली महिला से भी नन्दा अब तक ठीक परिचित न हो पाई थी। यह सच है कि नन्दा के साथ उसका व्यवहार आदरपूर्ण था, पर उसमें ऐसा कुछ भी नहीं था, जिसकी अभिलाषा नन्दा को थी। वहाँ शिष्टाचार था, गौरव था, सम्मान था—सब कुछ था, पर आत्मीयता नहीं थी। जिसके लिए आश्रम से उसे इतनी दूर लाया गया था, वह नहीं मिला, आगे मिल सकेगा, इसमें भी संदेह था।

इस दशा में क्या यह उचित न होगा कि वह व्यर्थ की इस सुख-कल्पना को छोड़कर जो कुछ प्राप्त है, उसकी ओर बढ़े। लेकिन यदि वह यहाँ से चली जाना भी चाहे तो कहाँ जायगी? द्वार पर खड़ी वह तातारी बाँदी और वह ईरानी दरबान क्या उसे बाहर जाने देंगे? फिर यदि उन्होंने जाने भी दिया तो वह जायगी कहाँ? कात्यायनी माई के स्थान पहुँच सकना दुष्कर है। विजय के पास वह जा सकती है, पर विजय इसे पसन्द करेंगे या नहीं, यह कौन जाने। फिर विजय भी आजकल आव-

श्यकता से अधिक रहस्यपूर्ण हो रहे हैं। यह सच है कि वे उसे प्रेम करते हैं। सबसे अधिक उसे चाहते हैं, पर वे जो कुछ करने जा रहे हैं, उसका मूल्य उनके निकट सबसे अधिक है। वह स्वयं उनके कार्य में बाधक नहीं बनना चाहती। जो अपने उत्तरदायित्व को भी दृढ़ता से न निबाह सके, वह पुरुष क्या। ऐसे पुरुष से नन्दा प्रेम नहीं कर सकती। कर्त्तव्य-भ्रष्ट विजय को वह स्वयं कभी न पसन्द करेगी। उनके मार्ग में बाधा न डालते हुए शान्तिपूर्वक उनकी सफलता की प्रतीक्षा करनी चाहिए। यदि सफलता मिल गई तो वह राज-रानी बनेगी—एक कर्मवीर की अर्धाङ्गिनी। वह सुख, वह गौरव, आज की सब चिन्ता को भुला देगा।

पर आज की चिन्ता भी निराधार नहीं है। आसपास जो कुछ दिखाई दे रहा है, उसमें विजय का कोई स्थान नहीं है। उसके चारों ओर जो नई परिधि बन रही है, उसमें चाचा जी हैं, वह महिला है, महल है, धन-सम्पत्ति है, पर विजय नहीं हैं। पहले वह जिस स्थान पर थी, वह स्थान विजय की निर्मित परिधि के भीतर था। नन्दा को ऐसा लगा कि वह उस परिधि से निकालकर सहसा दूसरी परिधि के भीतर डाल दी गई है। दोनों परिधियाँ कालचक्र के साथ पृथक्-पृथक् तेज़ी से घूम रही हैं। उनके घूमने की गति इतनी तेज़ है कि नन्दा की कल्पना उसका अनुसरण नहीं कर पाती। दोनों परिधियाँ वात्याचक्र की भाँति घूमती हुई एक-दूसरे से प्रतिक्षण दूर से दूरतर होती जा रही हैं।

इससे आगे नन्दा कुछ न सोच सकी। दूसरे दिन वह कुछ देर से जगी। उसे अपने मुँह का स्वाद कुछ फीका-कड़वा लगा और सिर में पीड़ा का अनुभव हुआ। 'शायद उसे रात को ज्वर हो आया हो। आश्रम में तो

ऐसा कभी नहीं होता था। बड़ी बुरी जगह है यह। यदि यही हाल रहा तो......!

बैठे ही बैठे उसने पिछवाड़े की खिड़की की ओर दृष्टि डाली। एक सफ़ेद लिफ़ाफ़ा पड़ा था। प्रसन्न होकर नन्दा ने उसे उठा लिया। विजय का पत्र था। उसमें लिखा था—

"नन्दा,

अब सहना कठिन हो रहा है। तुमसे दूर जीवन का प्रत्येक पल मुझे व्यर्थ लगता है। आज की रात मैं तुमसे मिलना चाहता हूँ। आशा है तुम इसका प्रबन्ध कर सकोगी। पहर रात जाने से पहले मैं तुम्हारे द्वार पर पहुँच जाऊँगा। आगे तुम्हारी चतुरता पर निर्भर है।"

पत्र को चोली में छिपाकर उसने कमरे का द्वार खोला। धूप आँगन तक फैल रही थी। वह स्नान-गृह की ओर चली गई।

उसे विश्वास था कि कल की भेंट के सम्बन्ध में महिला आज उससे प्रश्न करेंगी। जब भी वह सामने पड़ती, नन्दा को लगता मानो अब प्रश्न हुआ। पर दिन समाप्त हो चला, दिन के अन्य कार्य भी पहले की भाँति होते गये, पर भेंट के सम्बन्ध में उससे किसी ने कुछ न पूछा। आज वह कल से अधिक फ़ुर्ती अनुभव कर रही थी और क्षण-क्षण धूप की ओर देखती जाती थी। वह चाहती थी कि बीच का समय किसी अदृश्य शक्ति की प्रेरणा से ग़ायब हो जाय और सन्ध्या अविलम्ब आ जाय।

विजय से मिलने का प्रश्न साधारण नहीं था। यों विजय बग़लवाली गली से आकर उस खिड़की की राह उसके पास आ सकता था, जिससे उसका पत्र आता-जाता था, पर इतना आगे बढ़ चुकने पर उसे इस प्रकार

का मिलन पसन्द आयेगा, यह सन्दिग्ध था। सदर दरवाज़े से भीतर बुलाने के लिए महिला की स्वीकृति अनिवार्य थी। पर महिला इसके लिए शायद ही स्वीकृति देंगी। यदि उससे कहा गया और उसने नाहीं कर दी तो—फिर कहा भी किस बहाने से जायगा। यदि उसने यह पूछा कि वह व्यक्ति जिससे मैं भेंट करना चाहती हूँ कौन है तो क्या उत्तर दूँगी। उसे अपना सम्बन्धी तो बतलाया नहीं जा सकता। स्थान से उसका सम्बन्ध जोड़ सकना भी कठिन है। यात्रा के समय का परिचय कुछ मूल्य नहीं रखता। क्या कहकर महिला को स्वीकृति के लिए राजी किया जायगा। नन्दा को कोई बहाना सूझ नहीं पड़ता था।

सन्ध्या ज्यों-ज्यों निकट आ रही थी, उसकी बेचैनी बढ़ती जा रही थी। आख़िर उसे अस्वाभाविक और अव्यवस्थित रूप में देखकर महिला ने ही पूछा—"किस चिन्ता में पडी है नन्दा?" "आज तू रोज़ की तरह हँस-बोल नहीं रही है?"

"सबेरे से एक बात सोच रही हूँ, माता जी!"

"क्या?"

"............"

"क्या सोच रही है, बता न आख़िर?"

"यही कि मुझे कब तक यहाँ इस तरह रहना होगा?"

"क्यों, क्या यहाँ किसी तरह का कष्ट है?"

"आपकी दया से कष्ट तो कुछ भी नहीं है, पर न जाने क्यों मेरा जी घबड़ा रहा है। मुझे लगता है कि यदि मैं यहाँ कुछ दिन और रही तो मर जाऊँगी। रात भर मेरे सिर में तेज़ दर्द होता रहा..!"

"तो बालाख़ाने पर चली जाया कर। कुछ देर ताज़ी हवा में टहला कर। या फिर पीछे की बग़ीची में निकल जाया कर। हम लोग तो पींजड़े की चिड़ियाँ हैं। हमें इसी तरह ज़िन्दगी काटनी होती है। मैं हकीम जी को बुला भेजती हूँ।"

"मैं दवा नहीं खाऊँगी। मैंने कभी दवा नहीं खाई है।"

"नहीं खाई है तो क्या आगे भी नहीं खायेगी। यह भी कोई बात है। ज़िन्दगी में हमें बहुत से ऐसे नये काम करने पड़ते हैं, जिन्हें हम पहले कभी नहीं करते।"

"कहीं जाने या दवा खाने की ज़रूरत नहीं पड़ेगी। मैं ऐसे ही अच्छी हो जाऊँगी। आज मुझसे मिलने शायद कोई आयेगा ?"

बिना सोचे-समझे ही नन्दा यह कह गई। अपनी जल्दबाज़ी पर उसे भी झुँझलाहट आ गई।

"कोई मिलने आयेगा आज ? पर मुझे तो इसकी बाबत कुछ बताया नहीं गया ? क्या कल जापनाह ने तुझसे कुछ कहा था ?" नन्दा की इस अप्रत्याशित बात से शंकित होकर महिला ने प्रश्न किया।

"नहीं, चाचा जी ने कुछ नहीं कहा था। वे उन्हें नहीं जानते ?"

"उन्हें किन्हें ?"

"एक मेरी जान-पहचान के आदमी हैं ?"

"तेरी जान-पहचान के आदमी ?" महिला ने और अधिक सन्देह में पड़ते हुए कहा।

"हाँ, वे हमारे स्थान के पास के ही रहनेवाले हैं। माता शचीदेवी उन्हें अच्छी तरह जानती हैं।"

"क्या स्थान की स्त्रियाँ बाहरी पुरुषों से भी सम्पर्क रख सकती हैं ! क्या वहाँ पुरुषों के लिए आना-जाना सम्भव होता है ?"

"भीतर तो वहाँ दरबान और मज़दूर भी नहीं जाने पाते।"

"तो क्या आश्रम की औरतें ही बाहर मैदान में निकलकर दूसरे आदमियों से जान-पहचान करती फिरती हैं ?"

"आप व्यर्थ संदेह कर रही हैं, माता जी। बात यह है कि उनसे हमारा परिचय रास्ते में हुआ था।"

"यानी शचीदेवी को रास्ते में ग़ैर मर्दों से जान-पहचान करने का भी मौक़ा मिल गया।" महिला ने त्योरियों पर बल देते हुए कहा।

"नहीं, जान-पहचान तो उनसे अचानक ही हो गई है। बात यह है कि हमारी गाड़ी अटक गई थी। वह भी इधर आ रहे थे। माता जी के प्रार्थना करने पर उन्होंने हाथ लगाकर गाड़ी को निकाल दिया। फिर आगे भी उन्होंने बहुत बार सहायता की। माता जी कहती थीं कि यदि वे साथ न होते तो हम लोग यहाँ तक कभी न पहुँच पाते। कोई रास्ते में ही हमें लूट लेता और मार डालता।"

"पर अब तुम यहाँ सुरक्षित हो। यहाँ लूटे जाने या क़त्ल हो जाने का कोई ख़तरा नहीं है।" कहते हुए महिला ने नन्दा को संदेह-भरी दृष्टि से देखा।

नन्दा को ऐसा लगा मानो उसका सारा शरीर काँप रहा है और उसके पैरों को काठ मार गया है। उसे ऐसी दृष्टि से पहले किसी ने नहीं देखा था। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि वह आगे क्या कहे। लेकिन कुछ न कहने से संदेह और भी बढ़ सकता था। अतः उसने अपने मन पर

असाधारण ज़ोर देते हुए कहा—"मैं चाहती हूँ कि यदि वे आ जायें तो उनके हाथ कुछ पत्र और उपहार स्थान की अपनी सहेलियों को भेज दूँ और माता जी को प्रणाम भी कहला भेजूँ।"

महिला कुछ देर तक सोचती रहीं। फिर बोलीं—"तुझे कैसे मालूम हुआ कि वह कल जानेवाला है?"

"मैं यह नहीं जानती कि वे कल जानेवाले हैं या परसों, या कुछ दिन बाद। पर हम लोगों से विदा होते समय माता शचीदेवी ने उनसे यह कहा था कि जब लौटना तब नन्दा से अवश्य मिलते आना। इसी से मैं सोचती हूँ कि जाते समय वे ज़रूर मिलने आयेंगे। उन्होंने आगरे में अपना दो दिन का काम बतलाया था। अब दो दिन हो चुके हैं, इसी से मैं सोचती हूँ कि वे आनेवाले ही होंगे।"

"अच्छी बात है। जब वे आयेंगे तब मैं उन्हें भीतर बुलवा लूँगी। तू उनसे मेरे सामने बातें कर लेना।"

नन्दा की रही-सही आशा इस उत्तर से जाती रही। महिला की उपस्थिति में विजय से वह किस प्रकार बातें कर सकेगी। अपनी परवशता पर उसे बड़ा क्रोध आया। साथ ही महिला के इस प्रकार के व्यवहार पर भी उसे बड़ी झुँझलाहट हुई।

अपने को सँभालते हुए उसने कहा—"यह तो ठीक ही है, माता जी। पर क्या आप समझती हैं कि मैं यहाँ की कोई बुराई स्थान को कहला भेजूँगी?"

"नहीं, पर तुम सयानी हो और मैं किसी बाहरी आदमी से तुम्हारी मुलाक़ात उचित नहीं समझती।"

"पर कल चाचा जी से भेंट होते समय तो आप मेरे पास खड़ी तक नहीं हुई थीं !" नन्दा ने व्यंग्यपूर्ण स्वर में कहा।

"वे कोई ग़ैर नहीं थे, इसलिए।"

"मेरे लिए वे अजनबी तो थे ही। मैं तो डर से काँप उठी थी। और ग़ैर तो वे भी नहीं हैं।"

"मैं तो उन्हें नहीं जानती।"

"यानी आप जिससे चाहेंगी, ज़बरन मुझे उससे मिलना होगा। जिसे नहीं चाहेंगी, उससे नहीं ?"

महिला ने आँखें उठाकर नन्दा की ओर देखा। चेहरा रोष, अपमान और खीसी के कारण तमतमा आया था और आँखों में अवज्ञा का भाव झलकने लगा था। उसने कुछ उत्तर नहीं दिया और नन्दा के भाव-परिवर्तन को आश्चर्य के साथ एकटक देखती रही।

कुछ देर तक उत्तर की प्रतीक्षा में नन्दा खड़ी रही। फिर वह धम-धम करती हुई अपने सोने के कमरे में चली गई और भीतर से कुंडी चढ़ाकर पलँग पर गिर पड़ी। उसके रोने का शब्द आवरण की अवहेलना करता हुआ बाहर से साफ़ सुनाई देता था।

महिला ने इस रोने-धोने पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। वह चुपचाप उठी और अपने कमरे में जाकर शमादान के सामने बैठकर एक पत्र लिखने लगी।

भद्र महिला के हृदय में भावों का तूफ़ान उठ रहा था। नन्दा का आशय उसकी समझ में नहीं आ रहा था। एक तरह से नन्दा ने मुहजोरी की थी। यह उसकी मर्यादा के लिए खुली चुनौती थी। उसके अधिकारों का तिरस्कार था। नन्दा को उसकी आज्ञा माननी ही होगी। अन्यथा उसे अपने किये का फल भुगतना होगा।

लेकिन नन्दा पर उसका अधिकार भी क्या है। नन्दा क्यों उसका नियंत्रण स्वीकार करे। यह ठीक है कि वह नन्दा की संरक्षिका है। संरक्षिका का शासन नन्दा को मानना चाहिए। पर वह संरक्षिका बन ही कैसे गई। निश्चय ही नन्दा पर उसका अधिकार वैसा नहीं है, जैसा कि वह चाहती है। नन्दा उसे नहीं समझ सकती। वह स्वयं भी नन्दा को नहीं समझा सकती।

भद्र महिला का हृदय कचोटने लगा। जब नन्दा पर उसका नैसर्गिक अधिकार नहीं है, तब इस बनावटी अधिकार से काम भी कितने दिन चल सकता है! वह अधिकार चाहती है, ठीक उसी रूप में जिस रूप में कि प्रकृति ने उसे दिया था; और जिसे वह खो चुकी है। धन और वैभव से वह अधिकार नहीं मिलता। क्या वह नन्दा के सामने अपने हृदय को खोलकर

रख दे। ऐसा करने से क्या वह अधिकार उसे प्राप्त हो जायगा? नन्दा उसे अपने सामने देखकर सिर झुका देगी? क्या उस रहस्य के प्रकट हो जाने से नन्दा का हित होगा?

भद्र महिला का चित्त निर्बन्ध हो गया। समय की सीमा को पार कर वह उस युग में जा पहुँचा जब कि वह नन्दा जितनी ही बड़ी थी। मा-बाप उसे अपनी आँख की पुतली समझते थे। उद्यान की लताओं के साथ-साथ काश्मीर के एक राजघराने में वह बढ़ रही थी। सगे-सम्बन्धी सब उसे राजरानी कहते थे। नन्दा को अपने सगे-सम्बन्धियों का वह स्नेह मिला ही कहाँ। वह तो पराये हाथों में पली। वह क्या जाने कि मा की ममता क्या होती है, मा का हृदय क्या चाहता है।

भद्र महिला की आँखों से आँसुओं की झरी लग गई। स्मृति का सूत्र पकड़कर कल्पना आगे बढ़ी। धुँधले भूत काल के एक एक जीर्णपट को उठाने लगी। एक दिन वह राजरानी थी—काश्मीर की कलियों-सी लुभावनी। देश भर में उसके नाम की धूम थी। सब उसे अपूर्व सुन्दरी कहते थे।

वह बड़ी हुई। संबंध के लिए देश-विदेशों से उसके पिता के पास संवाद आने लगे। लखनऊ के महाराज मित्रसेन के यहाँ से भी संवाद पहुँचा। कुल और जाति गौरव के अनुकूल होने के कारण पिता ने इस संबंध को स्वीकार कर लिया। काश्मीर की उपत्यकाओं को छोड़ राजरानी को लखनऊ आना पड़ा। लखनऊ के राज-प्रासाद की वह ज्योति बन गई—महाराज मित्रसेन के भतीजे रतनसेन की राजरानी!

रतनसेन की वीर मूर्त्ति की कल्पना-मात्र से भद्र महिला की छाती फूल उठी। प्रशस्त ललाट, विशाल वक्षःस्थल, दिव्य कांति। उन्हें देखते ही उसके पिता ने कहा था—"गंगा समुद्र में ही समा सकती है।"

किशोरावस्था में ही रतनसेन ने अपार कीर्त्ति अर्जित कर ली थी। ख़ानख़ानाँ ने उन्हें पगड़ी बदल भाई बना लिया था। बादशाह हुमायूँ ने उन्हें बिलग्राम का सूबा बनाकर आगरा और जौनपुर के बीच एक लोहे की दीवाल खड़ी कर दी थी। उसके कारण पश्चिम की ओर मुँह करके देखने का साहस भी पठानों को नहीं रहा था।

इसी वीरपुङ्गव की प्राणेश्वरी बनने का उसे सौभाग्य प्राप्त हुआ—वह सचमुच की राजरानी बन गई।

भद्र महिला की स्मृति कुछ धुँधली पड़ गई। सामने रखा शमादान भी धुँधला दीखने लगा। उसे प्रतीत हुआ—सामने रतनसेन खड़े हैं। उनकी आँखें लाल-लाल हैं। वे जैसे कह रहे हैं—हमारी राजरानी और थी, तू वह राजरानी नहीं है!

भद्र महिला ने दोनों हाथों से अपनी आँखें बन्द कर लीं।

कुछ देर बाद उसने अपनी आँखें खोलीं। स्मृति ने भी साथ दिया और एक उपद्रवी पठान की मूर्त्ति उसकी कल्पना के सामने आकर खड़ी हो गई। उस पठान का नाम शेरख़ाँ था। उसने मुग़लों के सूबेदार को बंगाल से खदेड़ दिया था और उसकी जगह स्वयं सूबेदार बन बैठा था।

शेरख़ाँ की शक्ति बहुत बढ़ गई थी। पश्चिम की ओर बढ़ते-बढ़ते

वह पटना तक आ गया। आगरा उसका लक्ष्य था। हुमायूँ बादशाह को तख़्त से उतार कर...!

काली-काली भयानक मूर्त्ति, बड़े-बड़े दाँत! भद्र महिला शेरख़ाँ के इस स्मृतिचित्र से सिहर उठी। उसे ध्यान हो आया अपने पति रतनसेन का। उसकी इस भीरुता पर वे हँस देते थे। वे कहते थे, "राजरानी बड़ी डरपोक है। राजपूतों की स्त्रियाँ ऐसी डरपोक नहीं होतीं।"

उसका डर दूर करने के लिए वे उसे हम्मीर की मा की कहानियाँ सुनाते, राणा साँगा की वीरता का वर्णन करते। अपने रणमत्त हाथियों के नाम गिनाते, रणदूल्हा घोड़ों का उल्लेख करते, अपने वीर बाँकुरों की प्रशंसा करते और फिर अपने भुजदंडों पर हाथ फेरते हुए कहते—"देखती हो ये भुजदंड, इन्हें तलवार कभी नहीं काट सकती।"

वह उन्हें ध्यान से देखती रहती। ऐसे विशाल और वज्र-से दृढ़ भुजदंड उसने कहीं न देखे थे। वह अपने वीर पति पर अभिमान करती थी।

अफ़ग़ानों का उपद्रव बढ़ता जा रहा था। पूर्व का कोलाहल अधिक समीप आ रहा था। रतनसेन ने सीकरी पत्र भेजा और उसके उत्तर की प्रतीक्षा करने लगे। वे चिन्तित थे—हे भगवान्, अब क्या होगा!

पत्र का उत्तर आ गया। लिखा था—पठानों के दाँत तोड़ने के लिए शाहंशाह ख़ुद तशरीफ़ ले जा रहे हैं। यह जानकर चिन्ता बहुत कुछ कम हो गई। पूर्व की भाँति सन्तोष की साँस ली। हाथियों की लड़ाई, बाज़ का शिकार, नौका-विहार—सभी पूर्ववत् शुरू हो गये।

फिर अचानक व्याघात! चौंसा के पास बादशाह की सेना की पराजय! रतनसेन फिर चिन्तित! आठों पहर सेना सजाने में व्यस्त! युद्ध

के लिए हाथी और घोड़ों की तैयारी, जवानों की भर्ती......! एक-एक कर सभी दृश्य चलचित्र की भाँति भद्र महिला के मस्तिष्क में घूम गये। घटनाओं का तेज़ प्रवाह—कुछ सोचने-समझने का अवकाश नहीं—भारी उथल-पुथल।

दोपहर का समय! रतनसेन की घबराई हुई आवाज़—"राजरानी, हमारा सौभाग्य है कि आज सम्राट् हुमायूँ हमारे अतिथि हुए हैं। ख़ान-ख़ानाँ और दूसरे सरदार भी उनके साथ हैं।"

चिकों की आड़ में से उसने अपने राजसी अतिथियों को देखा। सम्राट् हुमायूँ की मुद्रा के सामने उसका सिर अपने आप आदर से झुक गया।

एकाएक भद्र महिला का हृदय काँप उठा। उसका सिर चकराने लगा। आगे की घटनायें वह न सोच सकी। उसे लगा, शमादान बुझ-सा रहा है। अंधकार का एक घना काला पर्दा चारों ओर फैलता जा रहा है। उसने हाथ बढ़ाया कि शमादान का प्रकाश कुछ और तेज़ कर दे। पर काँपते हाथों के स्पर्श से वह बुझ गया। अंधकार पूर्ण रूप से पुञ्जीभूत हो गया। ऐसा प्रतीत हुआ मानो एक भयानक काला दैत्य सम्पूर्ण दृश्य-जगत् को अपने पंजे में दबोचकर बैठने का उपक्रम कर रहा है।

भद्र महिला का दम घुटने लगा। वह निकलकर बाहर की ओर भागी। महल की बाँदियाँ भी घबराई-सी उसके पीछे-पीछे हो लीं। उन्हें देखकर राजरानी कुछ सँभली। वह घूमकर खड़ी हो गई। बाँदियाँ जहाँ थीं, वहीं रुक गईं। उन्हें अपने पीछे न आने का आदेश दे वह धीरे-धीरे ख़ानाबाग़ की ओर बढ़ गई।

रातरानी हँस रही थी। नरगिस मानो उसी की ओर देख रही थी। चाँदनी की डाल पर बैठे एक पक्षी ने पंख फटफटाये और 'भग-भग-भग' करता हुआ उड़ गया। भद्र महिला का हृदय ज़ोर-ज़ोर से धड़कने लगा। कलेजे पर हाथ रखकर वह एक स्फटिक-शिला पर बैठ गई। धीरे-धीरे चेतना वापस आई। बीते दिनों के दृश्य उभर-उभरकर फिर आँखों के सामने घूमने लगे।

कैसी भयावनी रात्रि थी। इधर सदर फाटक से लुटेरे अफ़ग़ान घुस रहे थे; उधर खिड़की की राह नौकर-चाकर और बाँदियाँ भागी जा रही थीं। कोहराम मच गया था। उसे समझने में देर न लगी कि उसकी रक्षा करनेवाले प्रतापी भुजदण्ड कटकर गिर पड़े हैं। अब वह निराश्रिता है। अन्त में वह भी बाँदियों के पीछे भागी—धन छोड़कर, घर छोड़कर।

नन्दिनी उस समय पेट में थी। तेज़ चलना असम्भव था। फिर भी वह भागी। इसके सिवा और कोई उपाय नहीं था।

कहाँ जाये, कुछ निश्चय नहीं। जिधर मुँह उठ गया, उधर चल दी—सूरज से छिपती, तारों से राह पूछती, झाऊ की झाड़ियों से झगड़ती, जवासों से उलझती-सुलझती, गिरती-पड़ती!

एकाएक वह रुकी। रात के सन्नाटे को भंग करता स्वर आ रहा था—"कौन है?"

वह बहुत डर गई थी। चाहती थी कि भागकर कहीं जा छिपे। पर भागना कठिन था और छिप रहना असम्भव। वह चुपचाप खड़ी हो गई। प्रश्न करनेवाला उसकी ओर अग्रसर हुआ। एक बार साहस कर उसने उसकी ओर देखा।

प्रश्नकर्त्ता और निकट आ गया। राजरानी ने उसे अच्छी तरह देखा। गेरुआ वस्त्र पहने एक युवती संन्यासिनी सामने खड़ी थी। उसे प्रतीत हुआ मानो साक्षात् जगदम्बा उसकी सहायता के लिए स्वर्ग से अवतरित हुई हैं।

संन्यासिनी ने फिर वही प्रश्न दोहराया—"कौन है ?"

राजरानी मौन। उसने कोई उत्तर नहीं दिया। उसकी दुविधा को लक्ष्य कर संन्यासिनी ने कहा—

"ठहर जा, मेरी एक बात का उत्तर दे। फिर जहाँ चाहे, चली जाना। मैं तुझे न रोकूँगी। मैं जानती हूँ कि तू कौन है और कहाँ जा रही है। अच्छा, यह बता कि तूने रामायण पढ़ी है ?"

राजरानी ने तब तक रामायण नहीं पढ़ी थी। केवल रामायण का नाम सुना था। संन्यासिनी के सामने वह चुपचाप खड़ी रही।

कुछ देर तक उत्तर की प्रतीक्षा करने के बाद संन्यासिनी ने फिर प्रश्न किया—"रामायण न पढ़ी हो तो भी उसकी कथा तो अवश्य सुनी होगी। बता न, भगवान् रामचन्द्र द्वारा त्याग दिये जाने पर भी जगदम्बा जानकी ने आत्महत्या क्यों नहीं की थी ?"

वह फिर भी कुछ उत्तर न दे सकी। उसे मौन देखकर संन्यासिनी ने स्वयं ही अपने प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा—"जगदम्बा उस समय गर्भवती थीं। उनके आत्महत्या करने से पति का वंश नष्ट हो जाता। नारी-जीवन की चरम सार्थकता यही है।"

वह खड़ी न रह सकी। उसके पाँव लड़खड़ाये और वह संन्यासिनी के चरणों में गिर पड़ी। भद्र महिला की आँखों के सामने अँधेरा छा गया।

स्मृति-चित्र छिन्न-भिन्न होकर अंधकार में विलीन हो गये। कुछ देर बाद स्मृति-चित्रों का सिलसिला फिर शुरू हुआ और कात्यायनी माई के थान के दृश्य, एक-एक कर, आँखों के सामने घूमने लगे।

कात्यायनी देवी के सत्संग के दिन उसे अभी तक याद हैं। अपनी कुटिया के आगे बैठकर वे उसे धर्मोपदेश देती थीं। वे उसे गीता-रामायण सुनातीं, जप-पूजन सिखातीं। कुछ दिन इस तरह बीते और उसका मन आश्वस्त होने लगा।

समय आने पर नन्दा का जन्म हुआ। उसके चाँद जैसे मुखड़े को देखकर कात्यायनी देवी बहुत प्रसन्न हुईं। उनके मुँह से निकल पड़ा—"पारिजात पुष्प नन्दनवन में ही फूलता है।"

यदि वह वहीं बनी रहती तो अच्छा होता। पर उसका अभ्यन्तर तो उसका शत्रु हो रहा था।

बाद में उसे जब ज्ञात हुआ कि इस स्थान का निर्माण उन्हीं हाथों से हुआ है जो उसके पति के हत्यारे हैं तो उसने अनुभव किया, स्थान की ईंटें जिस गारे से जोड़ी गई हैं, वह उसके पति के रक्त से ही गीला किया गया है। इसके बाद स्थान में एक क्षण भी रहना उसके लिए भारी हो गया। उसने चाहा, किसी प्रकार काश्मीर में, अपने माता-पिता की गोद में, फिर से पहुँच जाय—शायद वहाँ उसे कुछ शान्ति मिले। पर काश्मीर बहुत दूर था और राजविप्लव के दिन थे। कात्यायनी देवी ने उसे किसी तरह न जाने दिया।

भीतर ही भीतर उसका हृदय पागल हो उठा। एक रात वह निकल

भागी। उसने सुना था कि गंगा जी हिमालय से आती हैं। उसका घर भी तो हिमालय में ही है। गंगा जी की राह से वह ज़रूर अपने घर पहुँच जायगी।

पर वह जन्म-भूमि की गोद तक न पहुँच पाई। होनहार की कठपुतली बनकर वह ऐसी जगह पहुँची जहाँ उसे नहीं पहुँचना चाहिए था। वह रीवाँ पहुँच गई—जलाल ख़ाँ की रखेली के रूप में।

जलाल ख़ाँ शेरशाह का पुत्र। उसके पति के हत्यारे का पुत्र! वह ख़ून का घूँट पीकर रह गई। विवशता के सम्मुख उसे सिर झुकाना पड़ा।

रीवाँ में उस पर क्या बीती, उसकी कल्पना करने का उसे साहस न हुआ। फिर कुछ दिन बाद वह आगरे पहुँच गई। जलाल ख़ाँ अब इस्लामशाह बन गया था। उसके नाम पर ख़ुतबा पढ़ा जाता था, सिक्के ढाले जाते थे। राजरानी अब बेगम मुअज़्ज़िमा बन गई थी।

राजरानी—बेगम मुअज़िजमा—राजरानी—बेगम मुअज़िजमा! उसने कई बार मन ही मन कहा। उसे लगा राजरानी सोना थी, बेगम मुअज़िजमा पीतल है। सोना अब पीतल बन गया है।

उसने अपनी बाँहों को खोलकर देखा। ये बाँहें राजरानी की नहीं हैं। राजरानी की बाँहें तो रतनसिंह की ग्रीवा के साथ ही कटकर गिर गईं थीं।

नन्दा का विक्षोभ उसके आँसुओं ने हलका कर दिया। आँसुओं का वेग धीरे-धीरे हिचकियों में बदला और कुछ देर बाद ठण्डी साँसों में लुप्त हो गया। स्थिर चित्त होने पर वह मन ही मन पूरी परिस्थिति पर एक बार फिर से विचार कर गई। उसे लगा, जैसे माता जी ठीक रास्ते पर हैं और वह भूल कर रही है। एक सयानी लड़की से, जिसकी ज़िम्मेदारी उनके ऊपर डाल दी गई हो, किसी बाहरी आदमी की मेल-मुलाक़ात वे पसन्द न करेंगी। पर वह अपने मन को क्या करती। उसने विजय को विचार-तुला पर तौला, मन की कसौटी पर कसा। उसे उसमें कहीं परायापन न दिखाई दिया। पर माता जी को इसका कैसे विश्वास दिलाया जाय। वह कैसे उन्हें समझाये कि अनुकूल जल-वायु में प्रणय का वृक्ष अपनी जड़ें कितनी गहरी पहुँचा चुका है—नहीं तो फिर वह विजय से मिलने का विचार अभी त्याग दे और शान्ति के साथ अनुकूल अवसर की प्रतीक्षा करे। पर यदि इसी बीच विजय को कुछ हो गया तो...!

उसकी आँखों में आँसू आ गये। वह मन ही मन अपने आपको कोसने और विजय का कुशल मनाने लगी। इसी समय उसे अपने चाचा का ध्यान आ गया। पता नहीं, चाचा जी इस विचार को कैसा समझेंगे।

योग्य पात्र को कन्या देना सभी चाहते हैं। वह योग्य पात्र यदि अनायास भाग्य से मिल जाय तो इससे उन्हें आनन्द ही होगा। पर योग्य पात्र की कसौटी सबकी अपनी-अपनी होती है। चाचा जी और मेरी माता जी—यदि वे कहीं हुईं—तो मेरे विवाह के लिए चिन्तित अवश्य होंगी। मैं सबसे पहला काम यही करूँगी कि उनसे भेंट होने पर उन्हें इस चिन्ता से मुक्त कर दूँगी। मैं कह दूँगी कि मैं स्वयंवरा हूँ। सीता और सावित्री की भाँति मैंने अपना वर आप चुन लिया है। हिन्दुओं में कन्या एक बार ही दी जाती है। मुझे मेरे निश्चय से कोई नहीं डिगा सकता। यदि मेरा विवाह किसी के साथ होगा तो विजय के साथ—नहीं तो नहीं।

वह इन्हीं विचारों में तल्लीन थी कि गली की ओर की खिड़की पर हलकी-सी थाप पड़ी। उसने उठकर खिड़की खोल दी। विजय सामने था। नन्दा का रोम-रोम सिहर उठा। बिना एक क्षण का विलम्ब किये उसने हाथ पकड़कर विजय को भीतर खींच लिया और फिर खिड़की बन्द कर दी। विजय की उपस्थिति ने मानो उसकी सारी चिन्ताओं और सारे मिथ्या भय को दूर कर दिया। वह एकटक विजय के मुख की ओर देखने लगी।

उसका हाथ अपने हाथ में लेते हुए विजय ने कहा—"तुम्हारा महल तो बड़ा भव्य है, नन्दा। इसका साज-सामान भी बड़ा क़ीमती है।"

"माता जी कहती थीं कि यह सामान पुराना हो गया है। अगले वर्ष नया सामान मँगाया जायगा।" आँसू पोंछते-पोंछते नन्दा ने कहा।

"तुम्हारे ये बहुमूल्य वस्त्र और आभूषण बतला रहे हैं कि तुम्हारे माता-पिता बहुत धनवान हैं।"

एक फीकी मुस्कान नन्दा के ओंठों पर खेल गई।

"फिर भी तुम प्रसन्न नहीं दिखाई देतीं ?" विजय ने कहा।

"और तुम भी तो दुबले हो रहे हो ?"

"तो क्या हमारी और तुम्हारी परेशानी का एक ही कारण है ?" कहकर विजय मुस्करा दिया। नन्दा ने भी हलकी मुस्कराहट से उसका उत्तर दिया।

"देखता हूँ, तुम कुछ ही समय बाद रानी बनने जा रही हो। तब तो तुमसे भेंट करना भी दुष्कर हो जायगा। आज ही घण्टों से इस गली के चक्कर लगा रहा हूँ। समझ में ही न आता था कि किधर से तुम्हारे दर्शन होंगे।"

नन्दा ने मुस्करा कर कहा—"यह तो पुराना अभ्यास है। वहाँ भी यही सब करना होता था तुम्हें।"

"पर वहाँ बात दूसरी थी। वहाँ समझता था कि माता जी से छुटकारा पाने में तुम्हें विशेष कठिनाई न होगी। यहाँ तो...!"

"इसकी चिन्ता न करो विजय, कन्या और गऊ के भाग्य में बन्धन तो विधाता ने लिखा ही है।"

"स्नेह का बन्धन मीठा होता है, नन्दा ?"

"साथ ही कठोर भी !"

दोनों के मुख पर एक साथ मुस्कराहट खेल गई।

"जानते हो, यहाँ मुझे क्या-क्या मिला है ?" नन्दा ने बाल-सुलभ भोलेपन से कहा।

"कुछ देख रहा हूँ और कुछ के विषय में अनुमान कर सकता हूँ। शेष तुम्हें बतलाना होगा।"

"अच्छा, क्या जानते हो, पहले तुम बताओ!"

"बढ़िया महल, दासियाँ, हीरे-जवाहरात के आभूषण, ढेरों बढ़िया-बढ़िया वस्त्र!"

"ऊँह इतना ही?"

"रुपया-पैसा, बढ़िया भोजन!"

"तब तुम बहुत कम जानते हो।"

"आगरे का सिंहासन!"

"धत्, नहीं नहीं, इससे भी बढ़कर...!"

"स्वर्ग-पाताल का राज्य!"

"तुम तो मेरी हँसी कर रहे हो।"

"तुम्हीं बताओ न फिर?"

"चाचा जी!"

"चाचा जी...?"

"हाँ, कल रात उनसे भेंट हुई थी।"

"बधाई है। ईश्वर बड़ा दयालु है। मेरी चिन्ता बहुत कुछ हलकी हो गई। वे अब तुम्हारी ख़बर लेते रहेंगे।"

"पर दूर से ही।"

"क्या वे कहीं अन्यत्र रहते हैं?"

"नहीं, पर शायद संसार हम दोनों को अलग ही रखना चाहता है।"

"कोई असाधारण बाधा होगी। संभव है, ख़ानदानवालों का भय हो।"

"मैं उस भेद को नहीं जानती हूँ।"

"भेद कुछ न कुछ ज़रूर है। मैं चाहता हूँ कि यदि तुम्हारे चाचा जी ने किसी को बताने से मना कर दिया है तो तुम मुझे भी न बताओ। पर मैं कुछ पूछना चाहता हूँ।"

"पूछिए न।"

"कैसे हैं तुम्हारे चाचा जी ?"

"बहुत बड़े आदमी। जहाँपनाह, हुज़ूर, आलीजाह। उनकी वाणी ऐसी मधुर और गंभीर है कि जी चाहता है, उसे सुनती ही रहूँ।"

"वाणी मधुर है...पर मैं पूछता हूँ कि उनकी शक्ल-सूरत कैसी है ?"

"तुमसे मिलती-जुलती ?"

"कह नहीं सकती, मैंने उन्हें देखा नहीं।"

"देखा नहीं ?"

"नहीं, अँधेरे में उन्हें देख कैसे सकती थी ?"

"ओ हो, चाचा जी ने अपनी भतीजी का मुँह देखना भी पसन्द न किया ! यह उदासीनता क्यों ?"

"नहीं, उदासीनता की बात नहीं है। वे मुझे अच्छी तरह जानते हैं।"

"मेरी समझ में तुम्हारी बातें नहीं आतीं।"

"कहती तो हूँ, कमरे में अँधेरा था।"

"अँधेरा था तो उजाला क्यों नहीं किया गया ?"

"उजाला तो तब किया जाता जब उनकी वैसी आज्ञा होती। उनकी आज्ञा अँधेरे में ही मिलने की थी।"

"अँधेरे में—भला कोई चाचा अपनी भतीजी से अँधेरे में क्यों मिलना चाहेगा ?"

"कारण कुछ न कुछ अवश्य होगा। मैं बता नहीं सकती।"

"तुम मुझे परेशान करना चाहती हो, नन्दा।"

"मैं सच कह रही हूँ।"

"अच्छा तो तुम्हारे चाचा जी ने तुमसे क्या-क्या कहा ?"

"वह मुझ पर अपना स्नेह प्रकट करते रहे।"

"स्नेह प्रकट करते रहे ?" विजयपाल ने सहसा चौंक कर पूछा।

"जी हाँ, पर इसमें परेशान होने की कुछ बात नहीं है। उन्होंने कहा कि अनेक कारणों से वे अब तक मुझे घर पर न बुला सके, यद्यपि वे मेरी खोज-ख़बर बराबर रखते थे। उन्होंने यह भी विश्वास दिलाया कि भविष्य में मेरी सुख-सुविधाओं का वे पूरा-पूरा प्रबन्ध कर देंगे और मुझे अपने पास ही रक्खेंगे। वे मुझे पुत्री से भी अधिक प्यार करते हैं।"

"माफ़ करना नन्दा, मैं तुम्हारा शुभाकांक्षी हूँ। इसी लिए मुझे पूछना पड़ता है कि इसका क्या प्रमाण है कि वे तुम्हारे चाचा जी या कम से कम निकट के सम्बन्धी हैं।"

"यदि ऐसा न होता तो वे मुझे यहाँ क्यों बुला भेजते !"

"तुम बहुत भोली हो। तुम्हें यहाँ बुलाने के लिए और भी कारण हो सकता है। मैं नहीं चाहता कि तुम किसी ऐसे फन्दे में फँस जाओ जो तुम्हारे जीवन को ही नष्ट कर दे।"

नन्दा चौंक पड़ी। उसके हृदय में भी कम भय नहीं था। फिर भी वह अपनी कमज़ोरी विजय पर प्रकट होने देना नहीं चाहती थी।

उसने तत्परता से कहा—"मैं समझी नहीं।"

"क्या उन्होंने तुम्हारे प्रति बहुत स्नेह दिखलाया था?" अधर को दाँतों तले दबाते हुए विजय ने प्रश्न किया।

"हाँ।"

"अच्छा, अँधेरे में उन्होंने तुमसे बातचीत प्रारम्भ किस तरह की?"

"उन्होंने कहा—'बेटी, अपना हाथ बढ़ा दे। मैंने अपना हाथ आगे बढ़ाया तो उन्होंने उसे अपने हाथ में ले लिया। मैंने देखा, उनका भी हाथ काँप रहा था। उन्होंने कहा—बेटी, डरने की ज़रूरत नहीं है।"

"उनका हाथ काँप रहा था? अच्छा, फिर क्या हुआ? उन्होंने तुम्हें अपनी गोद में बिठाया तथा तुम्हारे सिर पर स्नेहपूर्वक हाथ भी फेरा जिस तरह कोई पिता अपनी पुत्री पर फेरता है?'

"हाँ!"

विजयपाल का मुँह कठोर हो उठा। उसने कुछ सँभलकर कहा—"नन्दा, तुम नहीं समझतीं। मुझे मामला दूसरा ही दिखाई देता है। तुम अभी ये बातें नहीं जानतीं। तुम्हें बहकाया गया है। तुम किसी शैतान के चंगुल में फँस गई हो। वह व्यक्ति जो प्रकाश से डरता है—और अँधेरे में छिपना चाहता है, जो अपने को तुम्हारा चाचा बतलाता है, तुम्हारा चाचा नहीं है।"

"तुम यह क्या कहते हो, विजय?"

"बड़ी भोली हो, नन्दा, तुम नहीं जानती कि दुनिया में ऐसे विषधर सर्प भी रहते हैं जिनकी फुंकार से चन्दन भी ज़हरीला बन जाता है। तुमने संसार नहीं देखा। मैं पता लगाऊँगा कि तुम्हारा वह चाचा वास्तवमें

कौन है। हमें उसके चरणों पर गिरकर प्रणाम करना होगा या पृथ्वी पर पटककर उसकी छाती में तलवार भोंकना!"

नन्दा सहम गई। भय-चकित दृष्टि से वह विजय की ओर देखने लगी। उसने कहा—"मैं नहीं जानती कि तुम्हारे इस प्रकार के सन्देह का कारण क्या है। तुम्हारी बातों ने मुझे भयभीत कर दिया है। तुम नहीं जानते कि मेरे हृदय में कैसा द्वन्द्व उठ खड़ा हुआ है। जितना मैं सोचती हूँ, उतना ही उलझती हूँ। माता जी के आदेशानुसार थान से शचीदेवी मुझे यहाँ पहुँचा गई हैं। यहाँ भी मैं वैसी ही बन्धन में हूँ जैसी वहाँ थी। मैं चाचा जी के हाथ में हूँ। यहाँ के सब निवासी उनके आज्ञावर्त्ती हैं। ऐसी दशा में मैं कर ही क्या सकती हूँ?"

"फिर भी तुम्हें कुछ सँभलकर चलना होगा—मेरा या कम से कम अपना तो ध्यान रखना ही होगा।"

"माता-पिता के स्नेह से मैं वञ्चित रही हूँ। क्या इस बार भी वह मृगतृष्णा ही प्रमाणित होगा!" माथे पर झलक आनेवाले स्वेद कण पोंछते हुए नन्दा ने निराश स्वर में कहा।

"दुःखी होने की बात नहीं, नन्दा। सम्भव है मैं ही ग़लती पर होऊँ। इसमें अगर मेरी ग़लती साबित हुई तो मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी। मेरे अनुभव से, प्रेम और सन्देह से, तुम्हें लाभ उठाना चाहिए। मुझे मालूम है कि चालाक शिकारी सदा ओट से प्रहार करते हैं। वे शिकार पर सामने से आक्रमण कभी नहीं करते। पहले टट्टी की ओट में छिप जाते हैं। फिर कुछ हरा चारा डालकर ललचाते हैं। जब शिकार लालच में फँस जाता है, तब वे अपना अचूक निशाना लगाते हैं। तुम सहज ही समझ सकती हो

कि तुम्हारे चाचा जी या माता जी के प्रति मेरे हृदय में कितनी श्रद्धा होनी चाहिए। पर मैं यह नहीं चाहता कि लालच में फँसाकर कोई तुम्हें अपमानित करे।"

नन्दा चुपचाप सुनती रही। विजय ने फिर कहा—"मेरे कहने का मतलब यह नहीं है कि तुम अभी कुछ कर गुज़रो। धैर्य और शान्ति के साथ परिस्थिति का अध्ययन करती रहो। अपने खाने-पीने की वस्तुओं—सौन्दर्य-शृङ्गार के उपकरणों और यहाँ की प्रत्येक बातचीत को सतर्कता के साथ जाँचती रहो। साथ ही यह भी न भूलो कि मेरी सम्पूर्ण आशा, प्रसन्नता और प्रतिष्ठा तुम्हीं पर अवलम्बित है।"

"आपके आदेशों का अक्षरशः पालन करूँगी। फिर भी मैं चाचा जी पर अविश्वास नहीं कर सकती।"

"अविश्वास करने को कहता कौन है?"

"ओह कितने अच्छे हो तुम, मेरे प्यारे विजय।"

"मैं कल सीकरी जा रहा हूँ। मैं चाहता हूँ कि मुझे तुम्हारी ख़बर बराबर मिलती रहे।"

"वहाँ मैं कैसे ख़बर भेज सकूँगी?"

"जिस तरह यहाँ भेजती रही हो। यह खिड़की तुम्हारा पत्र मेरे पास पहुँचा दिया करेगी।"

"वहाँ कहाँ ठहरेंगे आप?"

"शायद फ़िरोज़ी सराय में, पर मेरे वहाँ जाने और ठहरने के विषय में किसी से कुछ कहना मत।"

"इतनी सतर्कता की क्या आवश्यकता है?"

विजय ने तुरन्त बहाना बना दिया—"बात यह है कि मैं तुम्हारे घरवालों का ठीक-ठीक पता लगाना चाहता हूँ। यदि वास्तव में वे तुम्हारे घरवाले ही हुए तब तो कोई बात नहीं। पर यदि छल हुआ तो जो लोग इस षड्यंत्र में शामिल हैं, सन्देह हो जाने पर वे मेरे प्रयत्नों को निष्फल कर देंगे। या फिर तुम्हें ही ऐसी जगह पहुँचा देंगे जहाँ से निकाल सकना मेरे लिए असम्भव हो जायगा।"

इसी समय सहन में किसी के चलने-फिरने का शब्द सुनाई दिया। नन्दा ने कहा—"शायद माता जी इधर आ रही हैं।"

यह कह वह उठ खड़ी हुई। आतुरता के साथ उसके कपोलों पर प्रेम-मुद्रा अंकित करते हुए विजय भी दृष्टि से ओझल हो गया।

अभी मुर्ग़ ने पहली बाँग भी नहीं दी थी कि मुल्ला पीर मोहम्मद ने ख़ानख़ानाँ के शयनागार में प्रवेश किया। ख़ानख़ानाँ अभी तक लम्बी ताने हुए पड़े थे, यद्यपि उनकी नींद कुछ पहले ही खुल चुकी थी। मुल्ला को इस तरह आया देखकर उन्हें आश्चर्य नहीं हुआ। वक़्त बे वक़्त पहुँचकर ख़ानख़ानाँ को छेड़ना मुल्ला का स्वभाव-सा हो गया था। यह इस बात का परिचायक था कि मुग़ल राज्य के सर्वेसर्वा के साथ उसकी कैसी घनिष्ठता थी। फिर राज्य के पेचीदा मामलों के सम्बन्ध में भी ख़ानख़ानाँ इसी समय विचार किया करते थे। उनका ख़याल था कि इस समय बुद्धि स्थिर रहती है और पेचीदा मामलों को सरलता से सुलझाया जा सकता है। इस-लिए इस समय मीर अदल मुल्ला पीर मोहम्मद की उपस्थिति अनिवार्य होती थी। महत्त्वपूर्ण घटनाओं की सूचना बैरम ख़ाँ को मुल्ला साहब-द्वारा इसी समय मिला करती थी।

उस दिन बुधवार था। बैरम ख़ाँ अपने नये नियम के अनुसार बुधवार के दिन राज्य-सम्बन्धी मामलों पर केवल इसी समय विचार करते थे। शेष दिन वे हजामत बनवाने, स्नान करने और दुआ इबादत में व्यतीत करते थे। उनकी हार्दिक अभिलाषा धर्म के मार्ग पर क़ुरबान होने की थी। बुधवार का दिन उन्होंने पवित्र कामों की तैयारी के लिए चुन रखा था!

मुल्ला के आगमन का आभास पाकर बैरम ख़ाँ ने और भी लम्बी तान ली। ऐसा प्रतीत होता था कि मानो वे गहरी नींद में सो रहे हों।

एक क्षण प्रतीक्षा करने के बाद यह निश्चय करके कि सोनेवाला केवल बहाना किये पड़ा है, मुल्ला शय्या के पास पहुँच गया। बैरम ख़ाँ इस समय भी ज़ोर-ज़ोर से खर्राटे ले रहे थे, मानो उन्हें मुल्ला की उपस्थिति का कुछ भी भान नहीं है। एक झटके के साथ उसने ऊपर की चादर उतारकर अलग फेंक दी। बैरम ख़ाँ हड़बड़ाकर उठ बैठे। साथ ही उनके मुँह से निकला—"लाहौलबिलाक़ूवत, आज सबेरे-सबेरे क्या मनहूस सूरत देखने को मिली। सग नशीनद बजाय पीरो हुमा*। क्या दोज़ख़ में तुम्हारे लिए कोई जगह ख़ाली नहीं थी?"

"सीधा वहीं से तो आ रहा हूँ जनाब—फ़ातिहा पढ़ने के इरादे से। मगर ख़ुदा की शान है कि यहाँ आपको ज़िन्दा पा रहा हूँ। अजी हज़रत, आज बुधवार है बुधवार—आपके शहीद होने का दिन।" मुल्ला ने परिहास के स्वर में कहा।

"पर उसके लिए इतनी जल्दी क्या है?"

"यही कि अल्ला-ताला को आपके लिए अधिक इन्तज़ार न करना पड़े। उठो और एक बार दोहराओ अपना पुराना तराना—'अताये शमा वा लक़ाये शमा†।'

---

* एक फ़ारसी कहावत, जिसके अर्थ हैं—गुरु और हुमा पक्षी (प्रातःकाल इनका दर्शन होना शुभ समझा जाता है) के स्थान पर कुत्ते के दर्शन हुए। (सबेरे-सबेरे कुत्ते का दर्शन मुसलमान अशुभ समझते हैं।)

† बैरम ख़ाँ का एक प्रिय वाक्य, जिसके अर्थ हैं—(हे ईश्वर,) तेरी दी हुई वस्तु तुझी को समर्पित कर रहा हूँ।

"मालूम होता है, आप बीबी-बच्चों को 'ख़ैर आबाद' कहकर आ रहे हैं ?" बैरम ख़ाँ ने कृत्रिम झुँझलाहट के साथ कहा।

"मज़ाक नहीं, अब अपना परवाना आया ही समझिए।"

"सोने दो मुझे, अगर ऐसी ही ज़रूरत हो तो तुम आगे चल सकते हो।"

"दुश्मन सिर पर सवार है और..."

"और दोस्त बगल में खड़ा है। तराज़ू के दोनों पलड़े बराबर हैं—दोस्त गर दोस्त शवद हर दो जहाँ दुश्मन गीर*।"

यह कह बैरम ख़ाँ पलँग से नीचे उतरे। फिर बोले—"तमाम बदन टूट रहा है। कुछ देर और आराम कर लेता तो अच्छा होता।"

"शायद रात बहुत देर से लौटे थे ?"

"नहीं, शिकारगाह से तो सूरज डूबने से पहले ही लौट आया था।"

"और उसके बाद ?"

"उसके बाद क्या ?"

"उसके बाद घोड़े की पीठ पर बारह कोस का सफ़र !"

"आपके कहने का मतलब यह कि कराई का शिकारगाह यहाँ से बारह कोस के फ़ासले पर है !"

"नहीं, लेकिन कभी-कभी ऐसा भी होता है कि चार कोस का मार्ग भी सोलह कोस का बन जाता है।"

---

* मित्र यदि सच्चा मित्र हो तो सारा संसार भी शत्रु बनकर कुछ बिगाड़ नहीं सकता।

"यानी ?"

"यानी यह कि आगरा होते हुए...।"

"ख़्वाब तो नहीं देख रहे हैं आप !"

"शायद ! लेकिन आपको यह जानकर ख़ुशी ही होगी कि मैं ख़्वाब में भी बराबर आपको ही देखा करता हूँ।"

"जानता हूँ, ख़्वाब देखने का तो आपको पुराना मर्ज़ है। यह कोई नई बात नहीं।"

"अगर मैं अपना ख़्वाब आपको सुनाने लगूँ तो आप भी समझ जायँगे कि जो दिल का सच्चा होता है, उसे ख़्वाब भी सच्चे ही आते हैं।"

"कोई नई शरारत सूझी है क्या ?"

"नहीं नहीं, आप सुनिए न। मैंने देखा कि शिकारगाह में आपने एक जंगली हिरन के बच्चे के पीछे अपना घोड़ा छोड़ दिया। मासूम बच्चा अपनी जान बचाकर आगरा की ओर भागा।"

"दुरुस्त है। फिर क्या हुआ ?"

"भागता-भागता वह बच्चा सलीम शाह के महल में घुस गया और बेगम मुअज़्ज़िमा की गोद में जाकर गिर पड़ा।"

बैरम ख़ाँ ने आश्चर्य के साथ मुल्ला के मुख की ओर देखा।

"अभी और भी सुनिए। जनाब ने कुछ देर तक बाहर इन्तज़ार किया, इसके बाद......।"

"इसके बाद क्या ?"

"इसके बाद बेगम मुअज़्ज़िमा से इजाज़त लेकर महल में दाख़िल हुए और अँधेरे में बच्चे को ढूँढने लगे।"

"महल में झाड़-फानूसों और शमादानों की कमी नहीं है!"

"पर ख़्वाब आख़िर ख़्वाब है। न जाने क्यों मुझे ख़्वाब में रोशनी धुँधली दिखाई देती है।"

"यह तुम्हारे दिल की तारीकी की वजह से हो सकता है। ख़ैर, आगे कहो।"

"बेगम मुअज़्ज़िमा की मदद से आप बच्चे को पकड़ पाने में कामयाब हुए।"

"अरे यह सब कहाँ से देख रहा था, नालायक़?"

"मैं अपने बिस्तर पर पड़ा-पड़ा ही यह सब देख रहा था।"

"क्या देख रहा था?"

"सब्र से सुनते जाइए। ख़्वाब का बाक़ी हिस्सा और भी मज़ेदार है। मगर डर लगता है कि हुज़ूर कहीं नाराज़ न हो जायँ।"

"अच्छा, सुना तो शैतान!"

"ख़ुदा की क़ुदरत, वह हिरन का बच्चा एक ख़ूबसूरत भोली-भाली लड़की की शक्ल में बदल गया, गोरा-गोरा रंग, बड़ी-बड़ी काली आँखें, पन्द्रह-सोलह का सिन, मुलायम मक्खन-से हाथ और गावदुम उँगलियाँ। जनाब ने उसे देखकर अपनी सफ़ेद दाढ़ी पर एक बार ऊपर से नीचे तक हाथ फेरा।"

"मैं समझता हूँ कि ख़ुदा ने शैतान को ही तेरी शक्ल में पैदा किया है।"

"और आपकी शक्ल में आदम को—फिर यह तो आप जानते ही हैं कि आदम को भलाई-बुराई का बोध कराने के लिए शैतान की ज़रूरत होती है।"

"पर मेरे लिए तुम्हारी क़तई ज़रूरत नहीं है।"

"अच्छा, अब यह तो बतलाओ कि क्या वह बहुत ख़ूबसूरत है?"

बैरम ख़ाँ की भवों पर बल पड़ गये। पर यह सोचकर कि शायद मुल्ला को अधिक मालूम न हो, वे मुस्कराने लगे। फिर बोले—"बड़े घाघ हो तुम!"

"और आप भी तो ग़ज़ब करते हैं जो अपनी मोहब्बत की बातें मुझसे छिपाना चाहते हैं!"

"ख़ैर, जाने दो, जो कुछ हुआ वह हो गया!"

"मगर आपने मुझे पहले नहीं बताया कि काशमीर की कलियाँ आपको इतनी पसन्द हैं। मुझसे अगर कहते तो डलियों लाकर क़दमों पर लुटा देता।"

"बेशक!"

"मैं सच कहता हूँ।"

"ऐसी चुनीदा?"

"इससे भी बढ़कर।"

"ओह...!"

"लेकिन जब असलियत ज़ाहिर होगी तब आँखें खुलेंगी।"

"मज़ाक़ न करो...?"

"मज़ाक़ नहीं, मैं सच बात कह रहा हूँ।"

"क्या मतलब है तुम्हारा?"

"मतलब साफ़ है। आप उसकी एक झलक से ही बेक़ाबू हो गये। पहली मुलाक़ात में ही अपना दिल खो बैठे। एक ही रात में उसने वकीले मुतलक़ को दीवाना बना दिया। इसी का यह नतीजा है कि आप कह रहे हैं—उससे ज़्यादा हसीन दुनिया के पर्दे पर दूसरी नहीं है।"

"मेरी तो यही राय है।"

"आपकी राय ग़लत है। आपको धोखा हुआ है।"

"मुमकिन है।"

"वह लड़की '...' है।"

"चुप!"

"क्यों?"

"इस बारे में कुछ भी कहा तो...!"

"आप तो अभी से नाराज़ हो गये। इसके मानी यह हैं कि आप मेरे ख़्वाब का बाक़ी हिस्सा नहीं सुनेंगे!"

"नहीं, एक भी बात अगर तुमने ऐसी-वैसी कही तो मेरी तलवार तुम्हारी गर्दन पर होगी।"

"जैसी आपकी मर्ज़ी। पर यह कहे देता हूँ कि वह लड़की...!"

"चुप बदतमीज़।"

"वह लड़की......!"

"वह मेरी लड़की है।"

"आपकी लड़की...?"

"हाँ, मेरी लड़की—मेरी बेटी।"

मुल्ला का मुँह उतर गया। वह कुछ देर खोया-सा बैठा रहा। फिर कानों पर हाथ रखकर दो बार तोबा की और अभिवादन करके बाहर चला गया।

---

(१५)

जासूस से यह सूचना पाकर कि इस समय विजयपाल गली की खिड़की की राह सलीमशाह के महल में गया है, क़ादिरबख़्श ख़ुशी से उछल पड़ा। वह ऐसे ही अवसर की प्रतीक्षा में था। एक सिपाही को मामूली कपड़ों में गली के मुहारे पर तैनात कर, चाबियों का गुच्छा लिये, वह विजयपाल की कोठरी की ओर बढ़ा। पहले उसने ध्यान से देखा कि कोठरी के द्वार पर कोई विशेष प्रकार का चिह्न तो नहीं किया गया है। जब उस तरह की कोई चीज़ दिखाई न दी तब उसने ताले की चाबी मिलाई और सावधानी से भीतर पहुँच गया।

विजयपाल के पास अधिक सामान नहीं था। चमड़े का एक छोटा-सा थैला था जिसमें कुछ कपड़े रक्खे हुए थे। इनमें कुछ कपड़े ऐसे थे जिन्हें वह घोड़े की सवारी के समय पहना करता था। कुछ टोपियाँ और साफ़े, अपनी-अपनी जगह, खूँटियों पर टँगे थे। एक ईरानी पेशक़ब्ज़ म्यान में बन्द एक कोने से लगी थी। एक जोड़ी जूते की एक कोने में रखी थी, जो सम्भवतः सवारी के काम की थी। फटे काग़ज़ के कुछ टुकड़े इधर-उधर बिखरे थे। कुछ काग़ज़ एक ओर के ताक़ में रक्खे थे और उनके पास ही क़लम-दावात रक्खी थी। काग़ज़ों पर

कुछ लिखा न था। केवल एक दफ़्ती पर, जो काग़ज़ों के पीछे थी और जिससे लगाकर काग़ज़ बाँधे गये थे, एक कोने में 'सरदार कुशलपाल, सराय फ़िरोज़ी' लिखा हुआ था। घोड़े का साज एक तरफ़ को रक्खा था और उसका तसला-तोबड़ा दूसरी ओर। इन सबके सिवा एक थाली, कुछ कटोरियाँ, एक आबख़ोरा और एक लोटा एक ताक़ में ढंग से रक्खे हुए थे। चारपाई पर मामूली-सा बिस्तर बिछा था। उस पर पड़ी सलवटें बतला रही थीं कि सोनेवाला अभी-अभी उठकर गया है। उसके नीचे एक कुरता और एक धोती पड़ी थी जो अपने पहननेवाले की लापरवाही की सूचना दे रही थी और साथ ही यह भी बतला रही थी कि बाहर जाने से पहले विजयपाल उन्हें ही पहने था और जाने की हड़बड़ी में उनकी ओर ध्यान देने का उसे अवसर न मिला था।

कुछ देर की देख-भाल के बाद क़ादिरबख़्श बाहर निकल आया और ताले को यथापूर्व बन्द करके मुल्ला साहब के महल में जा पहुँचा।

क़ादिरबख़्श की सूचना में मुल्ला को कोई महत्वपूर्ण बात प्रतीत नहीं हुई; फिर भी उसका ध्यान दफ़्ती के पृष्ठ पर लिखे परिचय की ओर आकृष्ट हुआ। उसने मोहतसिब को बुलाकर सराय फ़िरोज़ी में ठहरे किसी सरदार कुशलपाल के विषय में अनुसन्धान करने का आदेश दिया।

थोड़ी दौड़-धूप और परेशानी के बाद मोहतसिब ने पता लगाकर बताया कि सीकरी की ख़ास सराय 'सराये जामिया' का ही पुराना नाम 'सराय फ़िरोज़ी' है और सरदार कुशलपाल नाम का एक पछाँही जवान पिछले कुछ महीनों से उसमें ठहरा हुआ है। यह पता पाते ही क़ादिरबख़्श

दूसरे दिन पंजाबी सौदागर के भेष में सूरज निकलते-निकलते वहाँ जा पहुँचा। सराय का इमाम नमाज़ ख़त्म कर चुका था और इस वक्त पलँग पर बैठा-बैठा क़ुरान मजीद का स्वाध्याय कर रहा था।

बड़े अदब से इमाम को सलाम करके क़ादिरबख़्श एक ओर खड़ा हो गया और उसने पूछा—"सराय फ़िरोज़ी क्या यही है?"

"जी, इसे ही सराय फ़िरोज़ी कहते हैं। वैसे आम लोग इसे सराय जामिया के नाम से जानते हैं। कहाँ से तशरीफ़ आ रही है?" इमाम ने लापरवाही से पूछा।

"लुधियाने से।"

"क्या ठहरिएगा?" इमाम ने उसी लापरवाही के ढंग से पूछा।

"जी, ठहरना तो चाहता हूँ, पर एक शर्त है। मैं घोड़ों का सौदागर हूँ। मेरे पास कई अच्छे-अच्छे तुर्की ताज़ी हैं। अगर उनका प्रबन्ध हो सके तो ठहर जाऊँगा।"

"क्या दलाली मिलेगी?" सतर्क होते हुए इमाम ने पूछा।

"जो कुछ शरह होगी। बहरहाल कम से कम क्या दलाली फ़ी रास आपको मंज़ूर होगी?"

"घोड़े कहाँ हैं आपके—कितने हैं?"

"पच्चीस रास हैं। सब असल खेत के, चार-चार साल। पीछे आ रहे हैं।"

मन में कुछ देर तक हिसाब जोड़ने के बाद इमाम ने कहा—"आप ठहर जाइए। दाने-चारे और आराम का मैं पूरा इन्तज़ाम कर दूँगा और सरदारों को ख़बर कर दूँगा। इन्शा-अल्ला दो-तीन

दिन में सब रासें निकल जायँगी। जो मज़दूरी मुनासिब समझें, मुझे दिला दें।"

"फिर भी मैं मामले को साफ़ कर लेना चाहता हूँ। पहले से तय कर लेना ठीक रहता है।"

"पच्चीस रुपये फ़ी रास दिला दीजिए।"

"पच्चीस रुपये!"

क़ादिरबख़्श ऐसे चौंका मानो यह अप्रत्याशित बात हो। फिर उसने कहा—"आप फ़रिश्ते हैं, फ़रिश्ते, इमाम साहब! जैसी तारीफ़ सुनी थी, ठीक वैसे ही आप हैं। सराय हाफ़िज़ का इमाम सचमुच पक्का घाघ है। अव्वल दर्जे का लालची!"

"क्यों-क्यों, क्या हुआ?" इमाम ने सतर्क होकर पूछा।

"हुआ क्या, कुछ ठीक-ठिकाना है। क़ीमत पर पाँच रुपया सैकड़ा दलाली माँग रहा था। तिस पर इन्तज़ाम का यह हाल कि पीने को पानी भी ठीक से मुहय्या नहीं कर सकता।"

इमाम ने क़ुरान मजीद की पोथी बन्द कर दी और घुटनों के बल बैठ गया। पास पड़े मोढ़े पर क़ादिरबख़्श को बैठने का संकेत करते हुए उसने पूछा—"आपकी रासें किस क़ीमत पर बिकती हैं?"

"जैसे दाम उठ जायँ, इमाम साहब। यह गाहक के पसन्द की बात है। दो हज़ार-तीन हज़ार—अगर कोई रास ज़्यादा जँच गई और लेनेवाले की गाँठ में बाप-दादे की कमाई का पैसा हुआ तो पाँच-छः हज़ार तक मिल जाते हैं।"

इमाम ने मन ही मन हिसाब लगाया। दो हज़ार फ़ी रास यदि दाम

लगे तो पाँच रुपये सैकड़ा के हिसाब से सौ रुपये दलाली हुई। उसने पच्चीस रुपये फ़ी रास माँग कर सचमुच बड़ी ग़लती की। पर अब उपाय ही क्या था। ज़बान से जो निकल चुका, उसे बदलना वाजिब न होगा। फिर भी बिगड़ी को सँभालने की नीयत से उसने कहा—"आप ठहर जाइए मिर्ज़ा साहब, यह आपका घर है। यहाँ मोल-तोल की कोई बात नहीं। मैं आपकी हर तरह की ख़िदमत के लिए तैयार हूँ।"

फिर उसने अपने नौकर को आवाज़ देते हुए कहा—"अन्तू, अरे देख, मिर्ज़ा साहब तशरीफ़ लाये हैं। २५ रास घोड़ों के लिए दाना-घास का जल्दी इन्तज़ाम कर। फ़ी रास १०-१० सेर दिउली! समझा न! ठीक है, मीर साहब?"

यह कहते हुए उसने मीर साहब को अपने पलँग पर बैठने का संकेत किया और ख़ुद खिसककर पायताने को हो गया।

"आप बड़े शरीफ़ हैं, इमाम साहब, और ईमानदार भी! वल्लाह, आपसे मिलकर बहुत ख़ुशी हुई।" क़ादिरबख़्श ने सौदागरों के ढंग से कहा—"मैं ख़ुशी से आपकी सराय में ठहरूँगा। क्या-क्या इन्तज़ाम है आपके यहाँ?"

"जी, सभी कुछ; यानी आप जो भी फ़र्मायश करें। ज़र्दा-पुलाव, कलाँख़ुर्द, शीराज़ी-इस्तम्बोली सभी चीज़ें मौजूद रहती हैं।"

"बहुत ख़ूब, बहुत ख़ूब!" कहते हुए गद्‌गद भाव से क़ादिरबख़्श ने अपनी दाढ़ी पर हाथ फेरा। फिर कुछ झुककर इमाम के कान से मुँह छुआते हुए संजीदगी के साथ फुसफुसाया—"कुछ और भी, वल्लाह?"

"जी, वह भी। मैंने अर्ज़ किया कि सीकरी में किसी चीज़ की कमी

नहीं है। ख़्वाह काश्मीरी तलब कीजिए, ख़्वाह नैपाली। बस, आपके इशारे की देर है।" इमाम ने विश्वास दिलाते हुए कहा।

मूँछों पर ताव देते हुए क़ादिरबख़्श ने कहा—"बस, अब रासें पहुँचने ही वाली हैं, इमाम साहब। क्या बतलाऊँ, इस साल यहाँ तक आना पड़ा, वर्ना हर साल लाहौर से अजमेर तक ही सब माल ख़त्म हो जाता था। मेरे एक दोस्त थे, उनकी पहुँच सरकार-दरबार में सभी जगह थी। लाहौर, अजमेर, कड़ा और बंगाले तक के रजवाड़े जानते-मानते थे। जब किसी राजा-बादशाह को घोड़ों की ज़रूरत हुई कि उन्होंने मुझे लिख भेजा। मैं हमेशा रजवाड़ों में माल बेचता रहा हूँ। हाँ, एक बात यह भी है कि मैं मामूली माल नहीं लाता। ख़ुद जाकर खेत से आठों गाँठ दुरुस्त और बे-ऐब का माल लाता हूँ। बादशाह शेरशाह हर साल दस पन्द्रह रासें मुझसे लिया करते थे। सब उन्हीं दोस्त की मारफ़त। क्या बताऊँ, उनका पिछले साल इन्तक़ाल हो गया। जब सुना तो मानो सिर पर ग़म का पहाड़ टूट पड़ा। बेचारे मुझे बहुत मानते थे। हिन्दू थे और बड़े शाहख़र्च। राजा थे, पूरे राजा। जब जाता, बिना पूड़ी-मिठाइयाँ खिलाये न आने देते। ऐसे-ऐसे नफ़ीस अर्क़ पिलाते कि बादशाहों को भी नसीब न होंगे। सब चीज़ें घर पर मौजूद रखते थे। सुना है, उनके साहबज़ादे इधर ही कहीं तशरीफ़ रखते हैं। भला-सा नाम है उनका। मैंने उन्हें बचपन में गोद खिलाया है।"

"कैसी शक्ल-सूरत है उनकी—गोरे-गोरे, लम्बा क़द, बड़ी-बड़ी आँखें!"

"हाँ, कुछ ऐसी ही। नौजवान होंगे। बहुत दिनों से उन्हें नहीं देखा।"

"आपका मतलब सरदार कुशलपाल से तो नहीं है।"

"हाँ-हाँ, कुशलपाल—कु-श-ल-पा-ल। ठीक-ठीक, यही नाम था। कहाँ रहते हैं। मैं उनसे ज़रूर मुलाक़ात करूँगा।"

"जी, कई महीनों से यहीं ठहरे हैं। अमीरज़ादे हैं।"

"जी, सो तो हैं ही।"

"देखिए, मुलाक़ात कराये देता हूँ।" कहकर इमाम उठा और सराय के सामनेवाले हिस्से में गया। फिर कुछ देर बाद लौटकर कहने लगा—"अभी सो रहे हैं। रात पचीसी में देर तक जागते रहे हैं। कुछ हर्ज नहीं, थोड़ी देर बाद मुलाक़ात हो जायगी।"

"ठीक है। तब तक मैं भी फ़ारिग़ हो जाऊँगा। इजाज़त हो तो रासों का पता ले आऊँ। पास ही कहीं होंगी।"

कहकर क़ादिरबख़्श उठ खड़ा हुआ।

"जैसी मर्ज़ी," कहकर इमाम ने भी उसके प्रस्ताव का अनुमोदन कर दिया।

क़ादिरबख़्श को सराय से बाहर निकले एक घण्टा भी न हुआ होगा कि दो साईसों ने सराय में प्रवेश किया। वे अपने साथ तसली-तोबड़े, खुरपियाँ व पिछाड़ियाँ बाँधे थे। इमाम ने उन्हें क़ादिरबख़्श का साथी समझ कर पूछा—

"रासें कहाँ हैं?"

"जी, पीछे आ रही हैं। मालिक ने अस्तबल साफ़ करने के लिए हमें पहले भेज दिया है।"

"तुम आराम करो। मैं अपने आदमियों से सफ़ाई कराये देता हूँ।"

कहकर इमाम ने आदर की निगाह से दोनों साईसों को देखा। फिर पूछा—"कैसी रासें हैं?"

"नायाब रासें हैं, ग़रीब परवर! दूर दिसावर का माल है। ज़ीन सवारी में आपके दरवाज़े को फाँद कर निकल जायँ। बादशाहों की सवारी लायक़ हैं।"

इसी समय चुस्त पाजामा, लम्बा अँगरखा, राजपूती पगड़ी और कमरबन्द में तलवार बाँधे एक पँचहथा जवान सराय के सहन में दिखाई दिया। आकृति-प्रकृति से वह राजकुमार-सा लगता था। दोनों साईसों की बातचीत की कुछ भनक शायद उसके कानों में पड़ गई थी। इमाम की ओर आते-आते उसने पूछा—"किस दिसावर के घोड़े आ रहे हैं, इमाम साहब?"

"जी," कहते हुए इमाम दाँत निपोरकर खड़ा हो गया और बड़े अदब से जुहार करता हुआ बोला—"ख़ास ईरानी-तूरानी माल है, कुँवर साहब! आपकी सवारी के लायक़ है। मैं सरकार को ख़बर देने गया था, पर उस वक़्त हुज़ूर सो रहे थे। एक रास ज़रूर लीजिए। सौदागर तो आपके वालिद साहब मरहूम का मुलाक़ाती है। कह रहा था कि मैंने कुँवर साहब को गोद में खिलाया है।"

"मुझे गोद में खिलाया है!" कह कर युवक मुस्कराया। फिर पूछा—"कहाँ है सौदागर?"

"रासें पीछे आ रही हैं। उन्हीं को लेने चला गया है। यह दोनों साईस भी वहीं से आ रहे हैं। कह रहे हैं कि बड़े अच्छे-अच्छे जानवर हैं।"

"आने दो। हम दोनों एक-एक ज़रूर लेंगे।" कहकर युवक ने इमाम की ओर मुस्कराकर देखा।

"मैं तो हुज़ूर का दिया खाता हूँ। मैं भला क्या तुर्की रास बाँधूँगा।" कहकर इमाम ने हाथ जोड़ दिये।

"मैं एक ख़ास काम से शहर जा रहा हूँ। दोपहर तक लौटूँगा। मेरा एक मेहमान आनेवाला है। अगर आये तो मेरे कमरे में ठहरा देना। चाबी यह रही।" कहकर कुशलपाल ने अपने कमरे की चाबी इमाम की ओर फेंक दी।

"कहाँ से तशरीफ़ ला रहे हैं, मेहमान साहब?" चाबी हाथ में लेते-लेते इमाम ने पूछा।

"पूर्व से।"

"मेहमान साहब का क्या नाम होगा, ग़रीब परवर?"

"विजयपाल। याद रहेगा न?"

"क्यों नहीं सरकार; राजा अजयपाल की कहानियाँ बचपन में बहुत कही-सुनी हैं। उन्हीं के नाम से याद रखूँगा—अजयपाल-विजयपाल।"

"हाँ ठीक है। अगर आ जाय तो उसे आराम से मेरे कमरे में ठहरा देना। समझ गये न!"

"बहुत अच्छा, सरकार।"

इमाम घोड़ों के सौदागर की प्रतीक्षा कर रहा था कि उसे एक और व्यक्ति, जो पश्चिमी सौदागर प्रतीत होता था, सराय में आता दिखाई दिया। लापरवाही से सिर से पाँव तक देखते हुए इमाम ने प्रश्न किया—"क्या चाहते हो?"

"मैं सरदार कुशलपाल से मिलने आया हूँ।" सौदागर ने उत्तर दिया—"वे इसी सराय में रहते हैं न!"

"हाँ, रहते तो यहीं हैं, पर तुम उनसे क्यों मिलना चाहते हो?"

सन्देह की दृष्टि से उसकी ओर देखते हुए इमाम ने पूछा। उस व्यक्ति के वस्त्र ऐसे न थे कि इमाम उसे सरदार कुशलपाल का मेहमान समझ सकता।

"एक ज़रूरी काम है। उन्हीं से कह सकता हूँ।"

"नाम ठीक से याद है?"

"यही नाम तो है—सरदार कुशलपाल!"

"अच्छा, उनका हुलिया बताओ।"

"अमीरज़ादे हैं। नौजवान। गोरा लम्बा क़द। बड़ी-बड़ी आँखें।

राजपूती लिबास ।" आनेवाले ने क़ादिरबख़्श के मुँह से सुना हुलिया दोहरा दिया।

"खाने-पीने के शौक़ीन ?" इमाम ने फिर प्रश्न किया।

"कह चुका हूँ—अमीरज़ादे ही ठहरे।"

"तुनुक मिज़ाज़, बात-बात पर बिगड़ उठनेवाले!"

"और नहीं तो क्या ?"

"अपने सामने किसी को नहीं गिनते!"

"ऐसे ही होंगे।"

"क्या तुम उन्हें पहचानते हो ?"

"शक्ल से नहीं पहचानता।"

"ठीक कहते हो। अगर पहचानते होते तो वे तुम्हें सराय के दरवाज़े पर ही मिल जाते। अभी-अभी वे बाहर गये हैं।"

"बाहर गये हैं। कब तक लौटेंगे ?" साईसों की ओर भेद-भरी दृष्टि से देखते हुए आगन्तुक ने प्रश्न किया।

"दोपहर के क़रीब।"

"इजाज़त हो तो यहाँ बैठ कर उनका इन्तज़ार करूँ। दूर से आया हूँ। थक गया हूँ।"

"ठहरना चाहो तो ठहर जाओ।"

"ठहरना तो है नहीं, सरदार साहब से मिलकर आज ही आगरे लौट जाना है।"

"तब तो मुश्किल है। बिना कुछ लिये-दिये सराय में ठहरने का दस्तूर नहीं है।"

"क्या-क्या मिलता है आपके यहाँ ?"

"कुछ पीने-पिलाने का शौक़ है ?"

"राम-राम, हम बनिये लोग हैं। ऐसी बातें करते हो ?"

"माफ़ कीजिए। पीने की ऐसी चीज़ें भी होती हैं जिन्हें हिन्दू-मुसलमान, ठाकुर-ब्राह्मण, सब पी सकते हैं।"

"यानी...?"

"यानी शर्बत, अर्क़, गुलाब !"

"शर्बत कौन कौन से हैं ?"

"अंगूर, अनार, फ़ालसा, केला, ख़ूबानी, आड़ू, अनोशदारू, शीर ख़िश्त।"

"एक प्याले का क्या दाम होगा ?"

"चार दिरम !"

"चार दिरम ! लाहौर में तो अनार का एक प्याला दो दिरम में मिला था।"

"यह सीकरी है। यहाँ सीधा काश्मीर से बना माल आता है। यह चीज़ लाहौर में नसीब नहीं हो सकती।" आँखें घुमाते हुए इमाम ने कहा।

"बेशक-बेशक, अच्छा तो एक प्याला मँगा दीजिए।" इमाम को ख़ुश करने की नीयत से आगन्तुक ने कहा।

"बस एक ही ?"

"पसन्द आने पर और मँगा लूँगा !"

"बनिये-महाजन मालूम पड़ते हो ?"

"बेशक-बेशक, अपनी जात क्यों छिपायें !"

इमाम ने कहार को बुलाकर शर्बत लाने का आदेश दिया।

"सीकरी में शर्बत का इस्तेमाल बहुत होता है क्या?" शर्बत के स्वाद से सन्तुष्ट-सा होते हुए आगन्तुक ने कहा।

"और नहीं तो क्या, पर यहाँ तुम्हारी तरह से आँखें बन्द कर निरा शर्बत गले के नीचे नहीं उतार जाते !"

"यहाँ के लोग कैसे पीते हैं?"

"इस्तम्बूली या शीराज़ी मिलाकर।"

"राम-राम !" कानों पर हाथ रखकर आगन्तुक ने कहा।

इमाम खिलखिलाकर हँस पड़ा।

"क्या सरदार कुशलपाल भी ये चीज़ें पीते हैं?"

"ख़ूब पीते हैं। दिन में तीन-चार बार। तभी तो उनके गाल सेब जैसे लाल-लाल हैं !" इमाम ने कहा।

"बड़े लोगों की बड़ी बातें हैं। हम ग़रीबों के भाग्य में यह चीज़ें कहाँ।"

"सुनते हो मियाँ, बड़े-बड़े आदमी ही सराय फ़िरोज़ी में ठहरने का दिल भी रखते हैं।"

"बेशक-बेशक, बहुत दाम पड़ता होगा यहाँ ठहरने का।"

"अजी पचास दिरम रोज़ तो किराया ही लगता है।"

"पचास दिरम !" आश्चर्य से आँखें फाड़ते हुए आगन्तुक ने कहा।

"हाँ, पचास दिरम। खाने-पीने का अलग, ख़िदमतगारों का अलग !"

"और सरदार साहब इतना ख़र्च रोज़ करते हैं?" आश्चर्य का भाव प्रकट करते हुए आगन्तुक ने कहा।

"उनके बड़े-बड़े ख़र्च हैं। तीन कमरे किराये पर ले रक्खे हैं।"

"तीन कमरे!"

"हाँ तीन—एक नीचे, दो ऊपर। सराय की नाक यही तीन कमरे हैं।"

"तब तो उनका किराया भी बहुत होगा!"

"पर उनके लिए बहुत नहीं है। उनका ख़र्च बहुत ज़्यादा है।"

"बेशक-बेशक, बाप-दादों की कमाई होगी!"

इसी समय पास बैठे दोनों साईसों ने कहा—"इमाम साहब, हमें भी शर्बत चखाइए न। ज़िन्दगी में एक बार हम भी देखें।"

इमाम उठकर भीतर चला गया।

इमाम के जाने पर आगन्तुक ने दोनों साईसों से कहा—"यह लो चाबी और गली की ओर से उस कमरे में पहुँच कर छिप जाओ। तख़्त के नीचे, आलमारियों के पीछे, चटाई में; जहाँ कहीं जगह पाओ। मैं भी वहाँ आऊँगा। मगर याद रखना, दोनों में से किसी का एक कान भी दिखलाई पड़ गया तो छः महीने की तलब जुर्माना!"

दोनों साईस उठकर निर्दिष्ट स्थल की ओर चल दिये। इसके बाद आगन्तुक ने सराय के दरवाज़े पर खड़े तीसरे आदमी को पास बुलाकर कहा—"क़ादिरबख़्श से कह दो कि सराय की गली के सामने तैयार रहे। खिड़की पर ज्यों ही थाप पड़े, वह अपना काम कर दे।"

इसी समय दोनों हाथों में प्याले, शर्बत और अर्क की बोतलें लिये इमाम आ गया।

"कहाँ गये दोनों?" उसने आश्चर्य में आकर पूछा।

"एक आदमी बुलाने आया था, उसी के साथ चले गये।"

"बड़े नवाबज़ादे थे। शर्बत मँगाया और अब चले भी गये।"

"लाइए, मैं पी डालूँ। बड़ी लज़ीज़ चीज़ है। कमाता हूँ तो कुछ ख़र्च भी करना चाहिए। ऐसी नायाब चीज़ें तक़दीरवाले को ही मुयस्सिर होती हैं।"

मुल्ला ने हाथ बढ़ाकर प्याला ले लिया और बारह दिरम निकाल कर इमाम के हाथ पर रख दिये।

"कहीं जायँगे नहीं। शायद अभी लौटकर आ जायेंगे। रासों की तरफ़ गये होंगे।" इमाम ने अपने मन को समझाने के लिए कहा।

"बेशक-बेशक; पराये चाकर जो ठहरे! क्या कह रहे थे आप, हमारे सरदार दिन में ऐसे-ऐसे कई प्याले पिया करते हैं?" आगन्तुक ने प्रसंग को बदलने के अभिप्राय से कहा।

"और नहीं तो क्या?"

"और हर प्याले के दाम चार दिरम नक़द देते हैं?"

"सब सरदार ऐसा ही करते हैं।"

"स्वर्ग के जीव हैं, स्वर्ग के। बेशक, सीकरी स्वर्ग से कम नहीं। ऐसी-ऐसी नायाब चीज़ें और मिल भी कहाँ सकती हैं!"

"सरदार कुशलपाल का क्या कहना। शाही तबीअत पाई है—एकदम शाही!"

"आपकी बातें सुनकर बड़ी प्रसन्नता हो रही है।"

"क्यों, क्या सरदार साहब से कुछ माँगने आये हैं?"

"नहीं नहीं; उलटा उनका पावना मुझ पर है।"

"उनका पावना है—कितना?"

"सौ रुपये!"

"क्या तुम्हारा नाम अजयपाल-विजयपाल है?"

"विजयपाल!" आगन्तुक मन ही मन मुस्कराया—"नहीं-नहीं, मैं सरदार साहब की जाति का नहीं हूँ। मैं तो ग़रीब दूकानदार हूँ। मेरा नाम भिखारीदास है।"

"सरदार साहब सवेरे कह गये हैं कि उनके यहाँ आज कोई मेहमान आनेवाले हैं—विजयपाल!"

"वे भी कोई सरदार ही होंगे। तब तो तुम्हारी चाँदी है, दोस्त। अच्छे-अच्छे सामान जुटा रखना।"

"यहाँ सब चीज़ें तैयार रहती हैं। रात-दिन सरदार, सूबेदार, अहलकार यहाँ आते-जाते रहते हैं।"

"बेशक-बेशक, दारुल्सल्तनत जो ठहरी। यहाँ तो बड़े-बड़े लोग आयँगे ही। सरदार साहब कैसे आदमी हैं। मेरा मतलब यह कि मिलने-जुलने में कैसे हैं।"

"ज़्यादा मिलना-जुलना पसन्द नहीं करते। शायद ही कभी किसी से मुलाक़ात करते हों।"

"तब तो शायद मुझसे भी मिलना पसन्द न करेंगे?"

चेहरे पर निराशा का भाव लाते हुए आगन्तुक ने कहा—"नहीं-

नहीं, मैं आपकी मुलाक़ात का इन्तज़ाम ज़रूर कराऊँगा। क्या काम है उनसे ? आप कह रहे थे, आप पर उनका कुछ पावना है ?"

"बेशक-बेशक; बात यह है कि मेरी दूकान में उनके नाम खाता है। मैंने हिसाब लगाकर देखा तो मालूम हुआ कि उनके सौ रुपये दूकान पर बक़ाया हैं। इधर बहुत दिनों से उनके साथ लेन-देन नहीं हुआ। सोचा, पिछला हिसाब साफ़ हो जाय तो ठीक है।"

"आप जैसे ईमानदार कम होते हैं।"

"बेशक-बेशक, यह साख का सवाल है—साख का। साख न रहे तो हमारी पुश्तों की दूकानदारी चौपट हो जाय। साख पर ही हज़ारों का कारबार चलता है। कभी एक दाम का फ़र्क़ नहीं पडता। देने-पावने में चौकस रहना हमारा धर्म है। हम अपना दाम नहीं छोड़ते, और दूसरे का भी नहीं रखते। अब तो ख़ैर कुछ ज़्यादा सख़्ती नहीं है। पर सुल्तानी वक़्त में तो बेईमान दूकानदारों और नादहिन्दा गाहकों को काठ में भरवा दिया जाता था। हमारे बाप-दादों के पास मूँछ का बाल गिरवीं रखकर लोग रुपया उधार लेते थे। देखिए, कोई नये सरदार सराय में तशरीफ़ लाये हैं।"

यह कह आगन्तुक ने इमाम का ध्यान एक नवागन्तुक की ओर आकृष्ट किया जो अभी-अभी सराय में घुसा था।

"यही हैं आपके सरदार कुशलपाल। सरदार साहब, यह बजाज़ बड़ी देर से आपका इन्तज़ार कर रहा है।"

"बज़ाज़ मेरा इन्तज़ार कर रहा है !" सन्देहपूर्ण स्वर में कुशलपाल ने कहा। आज सवेरे से ही दो नये आदमियों के मुँह से उसे अपना

नाम सुनने को मिला था। इससे उसके मन में सन्देह उत्पन्न हो रहा था। आगन्तुक ने पास पहुँच कर ठीक बनियों के ढङ्ग से उसे जोहार किया।

"मेरा मेहमान नहीं आया क्या?" इमाम की ओर देखते हुए कुशलपाल ने प्रश्न किया।

"वे तो तशरीफ़ नहीं लाये, पर इसके आने से भी आप घाटे में नहीं रहेंगे। यह आपको कुछ देने आया है।"

आश्चर्यपूर्ण मुद्रा से कुशलपाल ने आगन्तुक की ओर देखा। आगन्तुक ने भी ऐसी सफ़ाई से सारी कहानी दोहरा दी कि कुशलपाल को उसमें सन्देह करने की अधिक गुंजायश न दिखाई दी। उसे साथ आने का आदेश देता हुआ वह अपने कमरे में चला गया। आगन्तुक भी उसके पीछे-पीछे कमरे में पहुँच गया। इसके बाद कमरे का दरवाज़ा भीतर से बन्द करके कुशलपाल ने उसे पीढ़े पर बैठने का संकेत किया और स्वयं तख़्त पर मसनद के सहारे लेट गया।

तख़्त पर हाथ से थपकी देते हुए आगन्तुक ने एक लम्बी बही कुशलपाल के सामने खोलकर रख दी जो महाजनी लिपि में लिखी थी और जिसमें अंकों को छोड़कर और कुछ जान सकना कुशलपाल के लिए असंभव था।

इसी समय सराय के सहन में एक दूसरा काण्ड आरम्भ हो गया। चार व्यक्तियों के साथ पहुँच कर क़ादिरबख़्श ने इमाम और उसके दो नौकरों की मुश्कें बाँध लीं और उन्हें ले जाकर गाड़ी में डाल दिया। गाड़ी उन्हें लेकर चुपचाप एक ओर को चल दी।

बाहर के शोरगुल और गाड़ी की खड़खड़ाहट ने कुशलपाल को चौकन्ना कर दिया। अपनी तलवार को प्राप्त करने के लिए उसने सामने की खूँटी की ओर हाथ बढ़ाया ही था कि हें-हें करते हुए आगन्तुक ने उसे पकड़ लिया। कमरे में छिपे दोनों सिपाही भी बाहर निकल आये।

दोनों अभियुक्तों को लेकर जब गाड़ियाँ सराय से कुछ दूर पहुँच गईं तब मुल्ला ने निश्चिन्तता की साँस ली। फिर कुशलपाल के कमरे में पहुँचकर उसने अपने कपड़े बदले और सामने की सन्दूक़ची का ताला तोड़कर उसमें रक्खी प्रत्येक वस्तु की जाँच की। इससे निवृत्त होकर उसने क़ादिरबख़्श को बुलाया जो आज्ञा की प्रतीक्षा में सराय के सहन में चक्कर लगा रहा था। मुस्कराते हुए कहा—"अब शीराज़ी का दूसरा दौर शुरू होता है। मतला है—आईनये मारूये· तिरा अक्स पज़ीरास्त, गर तू न नुमाई गुनह अज़जानिबे मानेस्त।"*

उत्तर में अभिवादन करते हुए क़ादिरबख़्श ने मुस्कराकर सिर झुका लिया। इसी समय सहन में किसी आगन्तुक की पद-चाप सुनाई दी। दोनों ने यह समझकर कि शायद विजयपाल आया है, उत्सुकता से झाँका। एक कुँजड़िन आई थी।

"सब्ज़ी काफ़ी होगी या और चाहिए!" पास पहुँचते-पहुँचते उसने प्रश्न किया।

"हाँ, काफ़ी हो सकती है। मगर थोड़ी और आ जाय तो शायद ठीक रहेगा। आज कुछ ख़ास मेहमान आनेवाले हैं।" क़ादिरबख़्श ने उत्तर दिया।

---

* मेरा दिलरूपी दर्पण तेरा प्रतिबिम्ब ग्रहण करने की सामर्थ्य रखता है। पर यदि तू न आये तो मेरा क्या दोष!

"और दिनों से आज ड्योढ़ी तो आई है । कोई ख़ास चीज़ की ज़रूरत हो तो और भेजवा दूँ ?" बात को और अधिक बढ़ाते हुए कुँजड़िन ने कहा।

सिर खुजलाते हुए क़ादिरबख़्श ने उत्तर दिया—"अभी ठीक से कहना कठिन है। दोपहर को ठीक ठीक बता सकूँगा।"

"बूढ़े इमाम को वे लोग कहाँ ले गये हैं ?" मुख्य प्रसंग पर पहुँचते हुए कुँजड़िन ने प्रश्न किया।

"मामू साहब को अचानक मिरगी का दौरा आ गया था। जब हम लोगों की तदबीर कारगर न हुई तब सरदार कुशलपाल साहब की सलाह से उन्हें चिश्ती साहब के पास भेजवा दिया है।"

"शरीर का क्या ठिकाना, जाने कब क्या हो जाय !" संवेदना प्रकट करते हुए कुँजड़िन ने कहा।

"फिर बुढ़ापा और कमज़ोरी भी है। ताक़ पर रक्खी बोतल उतारते-उतारते गिर पड़े और बेहोश हो गये। कल उनसे मुलाक़ात करने मेरठ से आया था। देखिए, कब तक ठीक होते हैं। तब तक उनका काम मुझे ही देखना-भालना पड़ेगा। मेरा कुछ भी समझा-बूझा नहीं है।"

"काम चल जायगा। मैं पड़ोस में रहती हूँ। ज़रूरत पड़े तो बुला भेजिएगा। फ़ौरन हाज़िर हो जाऊँगी। पड़ोसी लोग तरह-तरह की बातें फैला रहे थे। मैंने कहा, ख़ुद चलकर देखना चाहिए कि क्या मामला है। अब आपसे मिलकर दिलजमई हुई।"

"मामला कुछ नहीं है। मुश्किल यही है कि मैं यहाँ के काम से नावाक़िफ़ हूँ। आज कुछ मेहमान भी आनेवाले हैं।"

"शायद यह हज़रत भी ठहरने आ रहे हैं।" कुँजड़िन ने एक नवयुवक की ओर संकेत करते हुए कहा जो अभी-अभी घोड़े से उतरकर सराय में आ रहा था। वेश-भूषा से वह राजपूत प्रतीत होता था। कुँजड़िन ने जिस आगन्तुक की ओर संकेत किया था, वह विजयपाल ही है, यह पहचानने में क़ादिरबख्श को देर न लगी। एक विशेष प्रकार का संकेत कर यह कहते हुए कि कोई सरदार है, स्वागतार्थ वह आगे बढ़ गया। अवसर की संकीर्णता के विचार से कुँजड़िन भी चुपचाप वहाँ से खिसक गई।

"सराय फ़िरोज़ी क्या इसी का नाम है?" बरामदे की सिड्ढी पर पैर रखते-रखते विजयपाल ने प्रश्न किया।

"जी सरकार, इस सराय का पुराना नाम यही है।" क़ादिरबख़्श ने अदब के साथ उत्तर दिया।

"इमाम कौन है?"

"बन्दा ख़िदमत में हाज़िर है।"

"मैं यहाँ ठहरना चाहता हूँ।"

"जैसा हुक्म हो। अभी मुनासिब इन्तज़ाम किये देता हूँ।"

"मेरे एक दोस्त यहाँ रहते हैं—सरदार कुशलपाल!"

"जी हुज़ूर!"

"क्या इस समय यहीं पर हैं?"

"जी सरकार, अभी-अभी बाहर से लौटे हैं।"

"तो कृपा करके उनसे कह दीजिए कि विजयपाल आपसे मिलने आया है।"

क़ादिरबख़्श ने विजयपाल के सामने एक पीढ़ा रख दिया और फिर स्वयं मुल्ला के कमरे में चला गया।

विजय ने अँगौछे से अपनी पोशाक और जूतों की गर्द झाड़ी और इसके बाद बरामदे में चहलक़दमी करने लगा।

लौटकर क़ादिरबख़्श ने कहा—"सरदार साहब आपको याद कर रहे हैं।"

इमाम के संकेत पर विजयपाल ने कमरे में प्रवेश किया। वहाँ एक व्यक्ति राजपूती लिबास में उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। सामने पहुँचते ही विजयपाल ने दोनों हाथ जोड़कर उसे नमस्कार किया। उस व्यक्ति ने भी उठकर नमस्कार का उत्तर दिया।

"क्या मैं माछीवाड़े के सरदार के दर्शन कर रहा हूँ?" विजय ने शिष्टाचार के साथ निवेदन किया।

"हाँ, इस अभागे ने एक बार वे दिन भी देखे हैं। अब आप अपना परिचय दीजिए।" हाथ पकड़कर विजयपाल को अपने बराबर बिठाते हुए उस व्यक्ति ने कहा।

"मैं क़न्नौज से आया हूँ।" कहकर विजयपाल ने एक सिक्के का आधा टुकडा निकालकर सामने रख दिया।

सन्दूक़ची में से दूसरा आधा टुकड़ा निकालकर मुल्ला ने भी सामने रख दिया। दोनों को मिलाकर देखा तो पूरा सिक्का बन गया। सन्-संवत् भी ठीक ठीक मिल गये। मुल्ला के मुँह पर हलकी मुस्कराहट खेल गई। विजयपाल भी मुस्कराने लगा।

"यह ख़त!" कहकर विजयपाल ने एक पत्र जेब से निकाला। उस पर विचित्र स्याही से 'सरदार कुशलपाल' लिखा था। मुल्ला ने भी ठीक वैसा ही दूसरा काग़ज़ निकालकर दिखाया। उस पर 'विजयपाल' लिखा था। दोनों ने अपने-अपने हस्ताक्षरों को पहचान लिया।

"यह चित्र भी," कहते हुए विजयपाल ने एक चित्र निकालकर सामने रख दिया। उसमें बैरमख़ाँ-द्वारा हेमू-विक्रमादित्य के क़त्ल किये जाने का दृश्य अंकित था। मुल्ला ने भी ठीक वैसा ही दूसरा चित्र सन्दूक़ची से निकालकर सामने रख दिया।

"सब ठीक है। अब हमें......!" कहते-कहते विजयपाल बीच में ही रुक गया।

"मामले की बातचीत करनी चाहिए। यही मतलब है न आपका?" वाक्य को पूरा करते हुए मुल्ला ने कहा।

"हाँ, यही। पर यहाँ कोई अन्देशा तो नहीं है?" विजयपाल ने इधर-उधर देखते हुए अपनी शंका प्रकट की।

"रत्ती भर भी नहीं!"

दोनों एक दूसरे की ओर मुँह किये हुए मसनद का सहारा लेकर उठङ्ग गये।

कुछ देर तक सोचते रहने के पश्चात् विजयपाल ने कहना प्रारम्भ किया—"सरदार साहब, हम लोग जिस महत्त्वपूर्ण कार्य को हाथ में ले रहे हैं, उसके लिए यह आवश्यक है कि हम एक दूसरे के गुण-कर्म और स्वभाव से परिचित हो जायँ। नहीं तो हमारा उद्योग ठीक न बन पड़ेगा। हमारे मित्र और दल के नेता मुराद भाई ने मेरा परिचय आपको दिया

होगा। फिर भी मैं बतलाना चाहता हूँ कि चाचा जी की निर्मम और निरंकुश हत्या के पश्चात् मैं भागकर चाची जी के पास पहुँचा। मेरा विचार उन्हें पूर्व के किसी सुरक्षित स्थान पर पहुँचा देने का था। आपको ज्ञात ही होगा कि चाचा जी की समस्त सम्पत्ति उन्हीं के पास थी। मैंने विचार कर रक्खा था कि यदि किसी प्रकार जौनपुर तक पहुँच सकूँ तो उस धन से फिर सेना एकत्र करूँ और एक बार अभागे बैरम को उसके पाप का फल चखाऊँ। हमारी पराजय की सूचना मुझसे पहले चाची जी के पास पहुँच गई थी और उन्होंने माल ख़ज़ाने के हाथियों के साथ पूर्व की ओर भाग निकलने की पूरी तैयारी कर ली थी। हम लोग भागे तो राह में बड़ी-बड़ी विपत्तियाँ पड़ीं। पास-पड़ोस के सरदार मार्ग में ही हमें लूटने दौड़ आते। उन्हें रिश्वत देते-देते ख़ज़ाने का बहुत-सा द्रव्य व्यय हो गया। फिर भी हमारे काम योग्य बहुत कुछ बच रहा। एक दिन सवेरे ही ख़बर मिली कि मुग़लों के फ़ौजदार हुसेन ख़ाँ और मुल्ला पीर मोहम्मद ख़ाँ हमारा पीछा करते हुए सिर पर आ पहुँचे हैं। (अपना नाम सुनकर मुल्ला ने एक बार दाँत भींच लिये।) चाची को ईश्वर पर छोड़कर और जो कुछ सम्भव हो सका अपने साथ लेकर जौनपुर की राह ली। पीछे सूचना मिली कि मुग़ल फ़ौजदारों ने बजवाड़े के जंगल-पहाड़ों में कवादा गाँव के पास हमारे हाथियों को जा घेरा और जो कुछ माल-ख़ज़ाना पाया सब लूट ले गये। दुर्दशा से पीड़ित मैं जौनपुर पहुँचा और एक जौहरी के पास धन-सम्पत्ति जमा कर, अपना नाम बदल, एक गाँव में दिन काटने लगा। वहीं मैंने सुना कि पूर्व के कुछ सरदार ख़्वाजा कलाँबेग के पौत्र और ख़्वाजा मुसाहिब बेग के पुत्र मुराद बेग के नेतृत्व में

संगठित हो रहे हैं और उनका विचार मुग़लों से एक बार फिर लोहा लेने का है। मैं भी धीरे-धीरे इस दल में शामिल हो गया। पिछले दिनों सूचना मिली कि शेख़ कमाल बियावानी—जो मुग़ल सल्तनत के पक्के विरोधी हैं—लाहौर से आकर शेख़ सलीम चिश्ती की ख़ानकाह में ठहरे हैं और बैरम ख़ाँ तथा अन्य कई मुग़ल सरदारों को अपना मुरीद बनाने में उन्हें पूरी सफलता प्राप्त हुई है। साथ ही यह भी ज्ञात हुआ कि आप भी पिछले कुछ दिनों से इस सराय में ठहरे हुए हैं और शेख़ साहब के मुरीदों में से हैं। आप दोनों महानुभावों की योजना का पता लगाने और अपने दल के पथ-प्रदर्शन के लिए आपको निमंत्रण देने के इरादे से मुझे यहाँ भेजा गया है।"

मुल्ला शान्तिपूर्वक बैठा सुनता रहा। जब विजयपाल की कहानी पूरी हो गई तब उसने कहा—

"आपकी कहानी मैंने पहले से ही सुन रक्खी थी। अब आपकी ज़बानी सुनकर मेरा विश्वास और भी दृढ़ हो गया। आज्ञा हो तो अपनी कहानी भी सुनाऊँ। पर वह बहुत लम्बी और बदमज़ा है।"

"नहीं नहीं, अवश्य सुनाइए। हमारे लिए एक दूसरे के इतिवृत्त का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है।"

"यह तो आप जानते ही हैं कि मेरा नाम इस समय सरदार कुशलपाल है। आस-पास के लोग इसी नाम से मुझे जानते भी हैं। पर आपकी तरह मेरा एक नाम और भी है। पहले मैं उसी नाम से प्रसिद्ध था।"

"नाम बदले बिना हम लोगों का काम चल भी तो नहीं सकता।"

"हाँ तो मेरे पिता माछीवाड़ा के सरदार थे। हुमायूँ की सेना काबुल से कूच-दर-कूच करती हुई सतलज के किनारे तक आ पहुँची तब मेरे पिता ने उन्हें युद्ध के लिए ललकारा। उनके पास तीस हज़ार सेना थी। मेरी उम्र तब सिर्फ़ अठारह साल की थी। फिर भी मैं हरावल का सरदार था और काबुलियों से लड़ने के लिए मेरी भुजायें फड़का करती थीं।

"माछीवाड़े की सेना का सेनापति एक बदमिजाज़ पठान था। उससे मेरी पटती न थी। वह भी मुझे बुरी नज़र से देखता था। लड़ाई से ठीक एक रात पहले मोर्चे के मामले पर मेरी उससे गर्मागर्म बहस हो गई। मेरी सलाह ठीक सतलज के किनारे पर मोर्चा जमाने की थी। पर उस कमबख़्त ने एक गाँव के पास ख़ेमे लगाये। जाड़े के दिन थे। रात आई तो उसके सैनिक ख़ेमे के आगे लकड़ियाँ और घास जलाकर तापने लगे। उनका यह रंग देखकर मैं अपनी हरावल के साथ अलग हो गया और रातों-रात माछीवाड़े से पन्द्रह कोस दूर चला आया।

"दूसरे दिन ख़बर मिली कि सिर्फ़ एक हज़ार मुग़लों ने रातों रात नदी पार करके हमारी सेना को काट डाला है और सब ख़ज़ाने लूट लिये हैं। मैं अपने हरावल के साथ पूर्व की ओर बढ़ा और सिकन्दर शाह से जा मिला। सरहिन्द की लड़ाई मेरे सामने हुई थी। सिकन्दर की सेना में अस्सी हज़ार सिपाही थे और चार सौ अच्छे-अच्छे अफ़ग़ान सरदार। पर मैं पहले से ही समझ गया था कि यह सेना भी मुग़लों के मुक़ाबिले में ठहर न सकेगी।"

"आप यह कैसे जान गये थे?" विजय ने बीच में ही प्रश्न किया।

"मैं प्रतिदिन देखता था कि अफ़ग़ान सरदार लड़ाई के दाँव-घात की बातें कम करते हैं और औरतों की अधिक। वे आपस में यही चर्चा करते कि ज़्यादा मज़ेदार औरत किस नस्ल की होती है। मुझे याद है, एक बार उनमें आपस में बहस पड़ गई। यहाँ तक कि स्वयं सुलतान को बीच में पड़कर समझौता कराना पड़ा। उस समय लश्कर सरहिन्द में पड़ा था।"

"सुलतान ने क्या फ़ैसला किया?" उत्सुकता से विजय ने पूछा।

"उसने कहा कि तुममें से हर अमीर को कम से कम चार औरतें रखनी चाहिएँ। पास बिठाने और बातचीत करने के लिए ईरानी, घर-गृहस्थी का काम करने के लिए ख़ुरासानी, सेज के लिए हिन्दुस्तानी और एक चौथी तुरकानी जिसे हरदम केवल इसलिए मारते-पीटते रहें जिससे कि अन्य स्त्रियाँ डरती रहें।"

विजयपाल ठहाका लगाकर हँस पड़ा। मुल्ला ने भी उसका साथ दिया। "हाँ भाई जान," मुल्ला ने फिर कहना आरम्भ किया—"ऐसे ऐसे सरदार मुग़लों का मुक़ाबिला क्या खाकर करते। उस लड़ाई में मेरे सारे सिपाही काम आ गये। मैं किसी तरह भाग निकला और लाहौर पहुँचा। वहाँ जाकर मैंने अपना नाम-धाम यहाँ तक कि ख़ुद अपने को भी बदल डाला और शेख़ साहब का चेला हो गया। उन्हीं की आज्ञा से यहाँ आकर डेरा डाला है।"

"अब मुझे अधिक जानने की आवश्यकता नहीं है," विजय ने गम्भीरता से कहा—"अब प्रार्थना यही है कि आप मुझे शेख़ साहब से

मिलाने का प्रबन्ध कर दीजिए, क्योंकि दल के आज्ञानुसार योजना की शेष बातें मैं केवल उन्हीं को बतला सकता हूँ।"

"आज ही मैं आपको उनसे मिला सकता हूँ। शाम का समय ठीक रहेगा। उस समय वे अकेले रहते हैं। पर यदि आप आवश्यक समझें तो......।"

"जब भी आप उचित समझें। पर जहाँ तक हो, शीघ्र ही।"

"लेकिन," मुल्ला ने अपने को सँभालते हुए कहा—"मैं आपसे वादा करते समय एक बात भूल ही गया। आज शायद उनसे भेंट न हो सकेगी।"

"ऐसा क्यों?"

"आज जुमेरात है। इस रात को चिश्ती साहब की हवेली में उर्स होता है। शेख़ साहब भी उसमें शामिल होते हैं। मुझे भी वहाँ जाना पड़ेगा। आज शायद मैं लौट भी न सकूँगा।"

"लौटने में क्या बाधा है?"

"आप आगरे पहली बार आये हैं। आपको यहाँ के रंग-ढंग का पता नहीं। हमारे आप जैसे लोगों का सर यहाँ हर समय तलवार की धार पर रखा रहता है। क़दम-क़दम पर सावधानी बरतनी पड़ती है। घर से बाहर निकले कि ख़ुफ़िया आदमी पीछे पड़ गये। घर से बाहर खुली हवा में साँस तक लेना हराम हो जाता है। यहाँ बड़ी होशियारी से काम करना पड़ता है।"

"निस्सन्देह, मुझे इन बातों का अधिक पता नहीं है। अच्छा हो, आप मुझे कुछ ज़रूरी हिदायतें दे दें।

"पहली बात तो यही है कि हम दोनों का एक ही सराय में साथ-साथ ठहरना ठीक नहीं है।"

"तो क्या मैं आगरे ही लौट जाऊँ? पर दल के मुखिया ने मुझे इसी सराय में ठहरने की आज्ञा दी थी!"

"तो आप यहीं ठहरिए। मैं दूसरी जगह चला जाऊँगा।"

"जैसा आप उचित समझें। इसके अलावा और क्या सावधानी रखनी होगी?"

"किसी अजनबी का विश्वास करके उसके साथ नहीं चल देना चाहिए।"

"यदि आपने किसी को मुझे बुलाने भेजा तो?"

"ऐसी दशा में मैं उसे एक चिट्ठी दे दूँगा।"

"मैं आपके अक्षर नहीं पहचानता!"

"मेरे अक्षर ऐसे होते हैं।"

यह कहकर मुल्ला ने क़लम उठाया और एक काग़ज़ पर लिखा—आँ ख़ुशख़बर कुजास्त कज़ी फ़तह मज़्दह दारिद। ता जान फ़शानम्स चु ज़रोसीम दर क़दम।*

कुछ देर रुककर फिर कहा—

"इसे आप अपने पास रखिए। जो आपको ऐसी लिखावट का दूसरा पत्र दे, आप उसका विश्वास करें।"

---

* हाफ़िज़ का एक प्रसिद्ध शेर; अर्थ हैं:—"विजय का शुभ संवाद लानेवाला वह दूत कहाँ है? मैं सोने और चाँदी की भाँति अपने प्राण भी उसके चरणों पर निछावर करना चाहता हूँ।"

"इतना संकेत पर्याप्त होगा?"

"इतना ही काफ़ी नहीं होगा। वह आपको सिक्के का आधा भाग भी दिखलायेगा।"

"ठीक है।"

"फिर भी सावधानी की ज़रूरत है। जिस मकान में मैं आपकी प्रतीक्षा करूँगा, उसके द्वार पर वही चित्र आपको देखने को मिलेगा।"

"तीन संकेत मिल जाने पर धोखा नहीं हो सकता।"

"बेशक। लेकिन यह तो बताइए, आज आप कहीं जायँगे तो नहीं?"

"जी नहीं।"

"तो आराम से यहीं रहिए! मैं इमाम से आपका परिचय कराये देता हूँ। आपको यहाँ हर तरह का आराम मिलेगा।"

इसके बाद मुल्ला ने किवाड़ खोलकर इमाम को पुकारा और उसके आने पर कहा—"देखो, यह मेरे मित्र हैं। यहीं रहेंगे। इन्हें किसी तरह की तकलीफ़ न हो। यह सोने से तौलने योग्य हैं। इनके नुक्सान का मुआवज़ा तुम्हें अपने सिर से देना पड़ेगा।"

दिन ढल रहा था। सूर्य की तिरछी किरणें समन बुर्ज़ के दक्षिणी झरोखे से आकर ईरानी कामदार क़ालीन पर गाव तकिये के सहारे बैठे किशोर बादशाह जलालुद्दीन मोहम्मद अकबर की जूतियाँ चूमा रही थीं। जूतियों के अग्रभाग में लगे रुम्मानी लाल किरणों के स्पर्श से उत्तेजित होकर, दस गुना प्रकाश विकीर्ण कर, सरपेंच में जड़े कोहनूर से मानो होड़ लगाने की तैयारी कर रहे थे। रत्न-रश्मियों के आवर्त्तन-प्रत्यावर्त्तन ने बादशाह के सामने प्रकाश का एक पर्दा-सा तान दिया था जिसकी ओट से उनका शुभ्र मुखमंडल सूर्य-बिम्ब-सा देदीप्यमान लगता था। सामने खुला रक्खा था एक पुराना दीवान जिसके मोती जैसे सुन्दर अक्षरों से बादशाह के दाहिनी ओर दूसरे गाव तकिये के सहारे बैठे ख़ानख़ानाँ की आँखें खेल रही थीं।

एक शेर की ओर नवयुवक बादशाह का ध्यान आकृष्ट करते हुए ख़ानख़ानाँ ने पढ़ा—

"तू कारे ज़मीं रा नकू साख़्ती
कि बा आसमाँ नीज़ परदाख़्ती।"*

एक क्षण के लिए बादशाह की आँखें दीवान के पृष्ठ पर झुकीं; भवों में बल पड़े, मानो वे शेर के अर्थ पर विचार कर रहे हों। दूसरे ही

* तू पृथ्वी के कार्यों का ही नियंत्रण नहीं करता, आसमान पर भी तेरा अधिकार है।

क्षण उनकी दृष्टि दीवान के पृष्ठ पर से उठकर झरोखे को पार करती आसमान पर जा टिकी। सहसा उनके मुँह से निकला—

"ख़ानबाबा, वह देखो, उज़बक के गिरहबाज़ कबूतर किस शान से आसमान में चक्कर काट रहे हैं! तूरानी कबूतर गिरह देने में अपना सानी नहीं रखते।"

विवशतासूचक मुस्कान के साथ ख़ानख़ानाँ ने दीवान बन्द कर दिया और आसमान की ओर देखने लगे। इसी समय एक दरबान पर्दा हटाकर भीतर आया और बड़े अदब से सलाम कर, एक पुर्ज़ा ख़ानख़ानाँ के हाथ पर रख, एक ओर खड़ा हो गया। ख़ानख़ानाँ ने एक उचटती निगाह पुर्ज़े पर डाली।

सरदार कुशलपाल ने ज़रूरी काम से मुलाक़ात के लिए प्रार्थना की थी। एक अज्ञात व्यक्ति के इस प्रकार एकान्त में बाधा देने पर वकीले मुतलक़ को बड़ी झुँझलाहट हुई। उन्होंने बादशाह की ओर देखा जो अब भी कबूतरों की गिरहबाज़ी में उलझे हुए थे। फिर कहा—"कह दो, यह मौक़ा मुलाक़ात का नहीं है।"

"मैंने कई बार कहा, पर वह मानता ही नहीं। कह रहा है कि अगर मुलाक़ात इसी वक़्त न हुई तो सल्तनत का बहुत बड़ा नुक़सान हो जायगा।" दरबान ने हाथ जोड़ कर अर्ज़ किया।

"वह है कौन? क्या तुम उसे जानते हो?"

दरबान इस प्रश्न का कुछ उत्तर न दे सका और चुपचाप ख़ानख़ानाँ के मुँह की ओर देखने लगा। इसी समय द्वार का पर्दा फिर हिला और दो चमकती आँखें भीतर की ओर झाँकती दिखाई दीं।

तलवार के कब्ज़े पर हाथ रखते हुए ख़ानख़ानाँ ने अपने स्थान पर से ही ललकारा—"कौन है—क्या चाहता है?"

झाँकनेवाले ने इस ललकार की कोई परवाह नहीं की। पर्दे को एक ओर हटाकर वह सीधा भीतर चला आया।

एक क्षण के लिए ख़ानख़ानाँ सन्नाटे में आकर उसकी ओर देखने लगे। जयपुरिया ऐंठदार पगड़ी, लम्बा अँगरखा, गुजराती पटका और उससे लटकती हुई जड़ाऊ म्यानवाली तलवार, बनारसी ढाठे से बँधी डाढ़ी, लम्बी नोकवाले गुजराती गुरगाबी उसके राजपूत होने की सूचना दे रहे थे। बिना शिष्टाचार के उसे इस प्रकार अपने सामने आकर खड़ा होते देख ख़ानख़ानाँ आपे से बाहर होने ही वाले थे कि उनकी आँखें आगन्तुक की हँसती हुई चमकीली आँखों से जा मिलीं। क्रोध हँसी में बदल गया और उनके मुँह से सहसा निकल पड़ा—

"वल्लाह, क्या बन्दरों जैसी सूरत बना रक्खी है, मुल्ला साहब!"

"अब बुतपरस्ती करने का इरादा है, आलीजाह!"

"तो क़श्क़ा,* चोटी, ज़िन्नार† ही क्यों बाक़ी रह गये?"

"रफ़्ता रफ़्ता वह भी सब करना पड़ेगा। इतमीनान रखिए।"

"आख़िर इस कुफ़्र की क्या ज़रूरत पड़ गई?" ख़ानख़ानाँ ने व्यंग्य किया।

"यह हिन्दोस्तान है, आलीजाह। यहाँ बुतों की बहुतायत है। दीन-ईमान ख़तरे में हैं। बुत बिना पुजापा लिये मानेंगे नहीं। जब पुजारी बनना है तो पूरी तरह बना जाय।" मुल्ला ने व्यंग्य का उत्तर व्यंग्य में देते हुए कहा।

---

* तिलक। † जनेऊ।

"यह पुजापा किस तीरथ में चढ़ेगा—काशी में या क़न्नौज में ?" झेंप मिटाने के लिए ख़ानख़ानाँ ने प्रसंग को बदलने के अभिप्राय से कहा।

"यही तय करने के लिए ख़िदमत में हाज़िर हुआ हूँ। काशी भी आपकी सल्तनत में है और क़न्नौज भी। आप जहाँ हुक्म देंगे, जा बसूँगा।"

"मैं तो तुम्हारा सीकरी में बसना ही पसन्द करूँगा।"

"ऐसी हालत में सीकरी को ही काशी या क़न्नौज बनना पड़ेगा।"

मुल्ला के इस कटाक्ष से ख़ानख़ानाँ कट गये। फिर भी अपने को सँभालते हुए उन्होंने कहा—"दिलचस्पी और दिल्लगी में तुम उस्ताद हो। पर सच-सच बताओ, आज यह लिबास किसी ख़ास मतलब से पहना है या यों ही मुझे छकाने के लिए।"

"ज़रूरी काम से पहनना पड़ा है। दूसरा लिबास आपके लिए भी तैयार है।"

"मेरे लिए भी तैयार है—आख़िर मामला क्या है ?"

"आपकी शादी का पैग़ाम आया है!"

"मेरी शादी का पैग़ाम!" अपनी सफ़ेद डाढ़ी पर हाथ फेरते हुए ख़ानख़ानाँ हो-हो कर हँस पड़े। फिर बोले—"तेरे मुँह में घी-शक्कर। मेरी शादी का पैग़ाम किस रजवाड़े से आया है ?"

"यमराज के रजवाड़े से!"

"पर उसके लिए मेरी उम्र अभी बहुत कम है। साल दो साल बाद पैग़ाम आता तो ज़्यादा अच्छा होता।"

"पण्डितों का कहना है कि शादी के लिए यही महूरत सबसे अच्छा है।"

"अगर निकाह पढ़ने तुम चलो तो मंज़ूर है। पर वह पयम्बर है कहाँ—उसकी कुछ ख़ातिर-तवाजा भी हुई या नहीं?"

"पयम्बर बहुत दूर नहीं है। आपसे मुलाक़ात करना चाहता है।"

"कैसा आदमी है?"

"निहायत दिलचस्प जवान है।"

"नाम क्या है?"

"असली नाम नाहरपाल है, पर मशहूर विजयपाल नाम से है।"

"यह नाम तो पहले भी कहीं सुना है!"

"ज़रूर सुना होगा।"

"क्यों आया है?"

"कह तो दिया, शादी का पैग़ाम लेकर आया है।"

"कहाँ से?"

"क़न्नौज से।"

"कब मुलाक़ात करना चाहता है?"

"कल, आज, अभी, जितनी जल्दी मुमकिन हो।"

"तुमने क्या इन्तज़ाम किया है?"

"आपसे मशविरा करके इन्तज़ाम करूँगा।"

"मुझे क्या करना होगा?"

"मेरी तरह लिबास बदलना होगा। शेख़ की कफ़नी पहनकर पीर बनना पड़ेगा।"

"यह काम तुम ज़्यादा ठीक कर सकते थे !"

"एक ही आदमी के सामने एक साथ मैं दो स्वाँग कैसे भर सकता हूँ !"

"तो कोई दूसरा आदमी चुन लो।"

"सल्तनत का राज़ है। दूसरे पर उसका खुलना ठीक नहीं।"

"मेरे किये यह सब न होगा। बेहतर है, उसकी गर्दन उड़ा दो। मैं परवाने पर सही किये देता हूँ।"

"शादी का पैग़ाम लानेवाले की गर्दन पर आँच नहीं आने दी जाती।"

"तो इस तरह स्वाँग भरने से क्या फ़ायदा होगा ?"

"कई फ़ायदे होंगे। अभी उसकी गर्दन पर हाथ साफ़ करने से उसके दूसरे साथी साफ़ बच जायँगे और फिर वक़्त आने पर बदला लिये बिना न छोड़ेंगे। उससे बातें करने पर उन साथियों का और उनकी साज़िशों का पूरा भेद मिल जायगा। इसके बाद आपके इस हुक्म की तामील की जायगी।"

"तुम्हारी बातों पर यक़ीन नहीं होता। मुझे लगता है कि तुम या तो मुझे डराना चाहते हो, या बेवक़ूफ़ बनाना।"

"इस तरह का मेरा कोई इरादा नहीं है, ईमान से कहता हूँ।"

"अच्छी बात है, मगर यह याद रखना कि अगर कोई ऐसी-वैसी बात हुई तो तुम्हारे सर की ख़ैरियत न होगी।" शाही रोब के साथ ख़ानख़ानाँ ने धमकाया।

"मुझे मंज़ूर है।" सिर झुकाकर मुल्ला ने उत्तर दिया।

"ख़ूब सोच-समझ लो।"

"मेरा सब सोचा-समझा हुआ है।"

यह कहकर मुल्ला आदाब बजाकर खानखानाँ को कुछ कहने का अवसर दिये बिना ही बुर्ज़ से नीचे उतर गया।

उसके चले जाने पर खानखानाँ छत पर टहलने और उसकी बातों पर विचार करने लगे। वे अपनी स्मृति पर ज़ोर देकर सोचने लगे कि नाहरपाल या विजयपाल नाम उन्होंने पहले कहाँ सुना है। पर स्मृति ने उनका साथ न दिया। एक बार उन्हें यह भी सन्देह हुआ कि पिछली सुबह को नन्दा के मामले को लेकर उसने मुल्ला का जो तिरस्कार किया था, कहीं मुल्ला उसका बदला चुकाने की घात में तो नहीं है और इसी लिए सारे जोड़-तोड़ कर रहा है। अगर ऐसा हुआ तो पता जरूर लग जायगा। इसमें शक नहीं कि मुल्ला सल्तनत का शुभचिन्तक और वफ़ादार नौकर है। उसकी नीयत बुरी नहीं है। ज़्यादा से ज़्यादा वह मुझे बेवक़ूफ़ बना सकता है। पर उसे इसका बदला भी दिया जा सकता है।

इसी बीच दरबान ने आकर सलाम किया। उसके हाथ में एक लिफ़ाफ़ा था। लिफ़ाफ़ा हाथ में लेते हुए ख़ानख़ानाँ ने पूछा—"कहाँ से आया है?"

"एक क़ासिद आगरे से लाया है।"

"बेगम मुअज्ज़िमा का है।" ख़ानख़ानाँ ने लिफ़ाफ़े के ऊपर की मुद्रा और हस्तलिपि को पहचानते हुए मन ही मन कहा। फिर दरबान को जाने का संकेत करते हुए लिफ़ाफ़े को खोलकर पढ़ने लगे। बेगम मुअज्ज़िमा ने लिखा था—

"अनेक प्रणाम के पश्चात् आलीजाह की सेवा में निवेदन करना

चाहती हूँ कि नन्दा जिस दिन से यहाँ आई है, बराबर उदास रहती है। किसी चीज़ से उसका मन नहीं बहलता। वह रात दिन न जाने क्या-क्या सोचा करती है। उसका यह रवैया देखकर मुझे बड़ा डर लगता है। वह मुझसे अनेक बार कह चुकी है कि मुझे मेरी मा से मिला दो। वह अब काफ़ी समझदार हो गई है। मुझे यह कहने की हिम्मत नहीं पड़ती कि मैं ही तेरी मा हूँ। डर है कि कहीं वह मुझसे नफ़रत न करने लगे। पाप छिपाये नहीं छिपता। कभी न कभी प्रकट हो ही जाता है। यह सम्भव नहीं, कि मेरे पाप की कहानी सुनकर राजपूत की कन्या मुझे माफ़ कर दे। समझ में नहीं आता कि उसे किस तरह शान्त किया जाय। कभी-कभी विचार आता है कि मैं उसे लेकर किसी ऐसी जगह चली जाऊँ जहाँ मुझे कोई न जानता हो। वहाँ जाकर उससे कह दूँ कि मैं ही तेरी मा हूँ। क्या ऐसा करना ठीक रहेगा? आज ही एक आदमी के मामले को लेकर—जो क़न्नौज से उसकी गाड़ी के साथ आगरे तक आया है—वह मुझसे लड़ने को तैयार हो गई। वह उससे मुलाक़ात करने की आज्ञा चाहती थी। मैंने आज्ञा नहीं दी तो वह अपने शयनागार में जाकर बहुत देर तक फूट-फूटकर रोती रही। मैं नहीं जानती कि वह आदमी कौन है। उसके बारे में पता लगाना ज़रूरी है। आपकी आज्ञा की प्रतीक्षा है।"

इस पत्र से ख़ानख़ानाँ चिन्ता में पड़ गये। यदि केवल नन्दा का सवाल होता तो उसे फिर थान लौटाया जा सकता था। पर बेगम मुअज्ज़िमा का उसके साथ कहीं चला जाना उन्हें स्वीकार न था। वैसे वे दोनों को प्रसन्न देखना चाहते थे—पर अपनी मरज़ी के मुताबिक़। उनके

विचारों की पटरी बेगम मुअज़्ज़िमा और नन्दा के साथ कैसे ठीक बैठे, यही उनकी चिन्ता का विषय था। क़न्नौज से नन्दा के साथ आनेवाले व्यक्ति का उल्लेख भी कम चिन्ताजनक नहीं था। वह कौन है और क्यों नन्दा से मिलना चाहता है! स्वयं नन्दा भी उससे मिलने को इतनी उत्सुक क्यों है कि बेगम मुअज़्ज़िमा की अवज्ञा तक करने को तैयार हो गई। उस व्यक्ति का सम्बन्ध मुल्ला के बतलाये हुए विजयपाल से तो नहीं है! यदि ऐसा हुआ तो यह मानना पड़ेगा कि नन्दा भी प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से षड्यन्त्र में भाग ले रही है! इस दशा में उसे यहाँ से जाने देना और भी ख़तरनाक हो सकता है। इन सब बातों की पूरी जानकारी केवल मुल्ला को हो सकती है। पर उससे कुछ मालूम करना ठीक न होगा। प्रत्येक बात पर कल्पना का चमकीला आवरण चढ़ा देना उसका स्वभाव है। संभव है, इस प्रश्न को लेकर भी वह मुझे बेवक़ूफ़ बनाने का भी प्रयत्न करे! ऐसी दशा में क़न्नौज से आये हुए व्यक्ति से भेंट करके उसके मन का रहस्य जान लेना अधिक ठीक होगा। नन्दा से भी शीघ्र ही भेंट करनी होगी। उस दिन की भेंट में नन्दा कुछ कहना चाहती थी, पर मैंने उसे अवसर न दिया। अच्छा हो, बेगम मुअज़्ज़िमा के साथ उसे सीकरी में रक्खा जाय और प्रत्येक वस्तु को समीप से देखकर समझा जाय।

इस तरह के विचारों में तल्लीन ख़ानख़ानाँ समन बुर्ज़ के सामनेवाले सहन में चहलक़दमी कर रहे थे कि सहसा किसी की आवाज़ सुनकर चौंक पड़े। युवक सम्राट् 'ख़बरदार ख़बरदार' कहते उनकी ओर चले आ रहे थे। निगाह आकाश की ओर थी। ख़ानख़ानाँ ने गर्दन मोड़कर देखा—एक बहरी एक कबूतर का पीछा करती हुई उसी ओर आ रही है।

अकबर ने एक बार फिर ललकारा—"ख़बरदार!" बहरी वहीं से लौट पड़ी और सहमा हुआ कबूतर छत की मुँडेर पर आ गिरा। अकबर ने उसे अपने हाथ में उठा लिया और थपथपाने लगे।

बैरम ख़ाँ ने कहा—"इक़बाल बुलन्द हो। ख़ुदावन्द की हुक्म उदूली करने की हिम्मत दरिन्दों-परिन्दों में भी नहीं है।"

कबूतर की पीठ पर हाथ फेरते हुए अकबर ने मुस्कराकर उत्तर दिया—

"तू कारे ज़मीं रा नकू साख़्ती
कि बा आसमाँ नीज़ परदाख़्ती!"

सरदार कुशलपाल की ओर से सूचना पाने की प्रतीक्षा में विजयपाल का दिन कठिनाई से कटा। चिन्ता के कारण रात को उसे नींद भी अच्छी नहीं आई थी। दूसरा दिन भी यों ही कटा। आज नन्दा का पत्र लेकर रामपाल भी नहीं आया था। भोजनोपरान्त वह तख़्त पर लेटकर परिस्थिति पर विचार करने लगा।

कुशलपाल का व्यक्तित्व उसे आकर्षक नहीं लगा था। उसकी दृढ़ता, सच्चरित्रता और बुद्धिमत्ता के सम्बन्ध में उसे बहुत कुछ बताया गया था, पर आज कुशलपाल ने अपनी जो कहानी सुनाई थी, उससे यही प्रतीत हुआ कि वह भगोड़ा सरदार है। ऐसा व्यक्ति उत्तरदायित्व को अन्त तक नहीं निभा सकता। फिर वह बातूनी भी आवश्यकता से अधिक है। राजनीतिक षड्यंत्रों के लिए ऐसा व्यक्ति वाञ्छनीय नहीं होता।

इन विचारों से विजयपाल की आस्था कुशलपाल पर से बहुत कुछ कम होने लगी। उसने सोचा, एक बार आलमारी में रक्खी पुस्तकों को देखा जाय। शायद इससे कुशलपाल की रुचि और प्रकृति का कुछ पता लगाया जा सके। वह उठा और सामने रक्खी आलमारी के आगे जा खड़ा हुआ। सबसे पहले उसकी दृष्टि एक रेशमी पुट्ठे की सुन्दर जिल्द पर पड़ी। वह भगवद्गीता थी। हाशिये पर श्लोकों से भावसाम्य रखनेवाले सादी शीराज़ी के शेर उद्धृत थे। सादी उन दिनों रईसज़ादों के प्रिय कवि थे। विजयपाल के सामने भी कुशलपाल ने फ़ारसी के कुछ शेर कहे थे।

सांकेतिक पत्र में भी उसने शेर ही लिखा था, श्लोक नहीं। पर भगवद्-गीता से यह प्रमाणित हो रहा था कि कुशलपाल संस्कृत और फ़ारसी दोनों का ज्ञाता है।

उसके बाद जायसी का पद्मावत रक्खा था। पद्मावत की कहानियाँ उन दिनों लोक-रुचि को अपना रही थीं। गली-गली में फ़क़ीर और लडके पद्मावती और रतनसेन की चौपाइयाँ गाते फिरते थे। इस दशा में कुशलपाल की आलमारी में पद्मावत का होना भी असाधारण बात नहीं थी। उसने उसे भी उलट-पलटकर यथास्थान रख दिया।

तीसरी पुस्तक एक उपनिषद् थी। उसमें भी कोई विशेषता नहीं थी। केवल एक स्थान पर महाराजाधिराज माछीवाडा की मुद्रा थी जिससे सिद्ध होता था कि वह पुस्तक कुशलपाल को पैतृक सम्पत्ति के रूप में मिली है। इसके पास ही दूसरी पुस्तक सिकन्दरनामा थी। उसके अक्षर इतने सुन्दर थे कि विजयपाल बहुत देर तक उसे उलटता पलटता रहा। जिल्द भी बहुत सुन्दर बनी थी। जगह-जगह ईरानी क़लम के रंगीन चित्र थे। राजाओं के संग्रह में ही ऐसी बहुमूल्य पुस्तकें रह सकती हैं। विजयपाल की गई हुई आस्था मानो फिर कुशलपाल में लौटने लगी। सिकन्दरनामे के बाद एक और पुस्तक साधारण जिल्द की रक्खी थी। विजयपाल ने उसे उठाकर देखा। आरम्भ में किसी फ़ारसी पुस्तक के कुछ पृष्ठ थे जिनका क्रम ठीक न था। जैसे किसी कबाड़ी की दूकान से किसी ने पत्र-संग्रह करके उन्हें एक जिल्द में बाँध दिया हो। वे पत्र किस पुस्तक के हैं, यह भी नहीं जाना जा सकता था। पन्द्रह-बीस पृष्ठ उलटने के बाद विजयपाल ने देखा कि आगे के पृष्ठ एक-दूसरे से किसी लसदार

वस्तु से चिपके हुए हैं। पहले उसने चाहा कि पुस्तक को यों ही यथास्थान रखकर और पुस्तकें देखे। फिर उसकी इच्छा एक बार चिपके पन्नों को खोलकर देखने की हुई। पहले ही पन्ने पर सीकरी के राजमहलों का एक सर्वांगपूर्ण मानचित्र बना हुआ था। इसमें राजमहलों का पृथक्-पृथक् निर्देश तो था ही, राजमार्गों और महलों के मार्गों का भी स्पष्ट विवरण दिया था। फ़िरोज़ी सराय को भी उसमें ढूँढ़ते देर न लगी। फ़िरोज़ी सराय के ख़ाके के भीतर उसी कमरे में, जिसमें इस समय विजयपाल खड़ा था, एक लाल बिन्दु रक्खा था जो शायद कुशलपाल की अपनी स्थिति का परिचायक था। उसे यह भी ज्ञात हुआ कि जिस ख़ानकाह में शेख़ के ठहरने की बात बताई गई है, वह इस सराय से बहुत दूर नहीं है। उससे मिला हुआ ही शाही हरमसरा है। शेख़ कमाल के दल के लोग कितनी सतर्कता से कार्य कर रहे हैं, उन्हें वस्तु-स्थिति का ज्ञान कितना पूर्ण और यथार्थ होता है, यह देखकर विजयपाल को आश्चर्य होने लगा और अपने मित्रों की योजनायें उसे सारहीन और अपूर्ण-सी प्रतीत होने लगीं। कुशलपाल के व्यक्तित्व में उसकी आस्था अब बहुत कुछ दृढ़ हो गई।

विजयपाल की आँखें अभी सीकरी के मानचित्र से उलझी ही थीं कि कमरे के द्वार पर हलकी-सी थाप पड़ी। पुस्तक को यथास्थान रख उसने उठकर द्वार खोला। सराय का इमाम एक नवागंतुक के साथ खड़ा था। नवागंतुक को सम्बोधन करते हुए इमाम ने कहा—"सरदार विजयपाल आपही हैं!" यह कह किसी आवश्यक कार्य से वह चला गया। नवागंतुक आगे बढ़ा और उसने अभिवादन करके विजयपाल के

हाथ में एक पत्र रख दिया। विजयपाल तख़्त पर जा बैठा और उसने उस पत्र को खोलकर देखा। पत्र पूर्वपरिचित हस्ताक्षरों में लिखा था। विजयपाल ने पत्र से आँख उठाकर पत्रवाहक की ओर देखा। उसने बड़े अदब से सिक्के का आधा भाग सामने रख दिया।

"ठीक है।" कहकर विजयपाल उठ खड़ा हुआ।

आगन्तुक ने कहा—"हुज़ूर के लिए गाड़ी लाया हूँ।"

विजयपाल अविलंब तैयार होकर गाड़ी पर जा बैठा। उसके सामने पत्रवाहक भी बैठ गया। गाड़ी उन्हें लेकर एक ओर को चल दी। दो-एक सडकों और चौड़ी गलियों में कुछ देर तक दौड़कर गाड़ी खड़ी हो गई। दरवाज़ा खोलकर पत्रवाहक बाहर निकला। विजयपाल ने भी उसका अनुकरण किया। अब वे एक विशाल प्रासाद के सिंहद्वार पर खड़े थे।

"शेख़ साहब के दर्शन यहीं होंगे क्या?" उसने धड़कते हृदय से प्रश्न किया।

चुप रहने का संकेत करते हुए पत्रवाहक ने एक चित्र निकालकर दिखाते हुए अनुसरण करने का संकेत किया।

उसके पीछे-पीछे चलकर विजयपाल सिंहद्वार के अभ्यन्तरवर्त्ती सहन में जा पहुँचा जिसमें हरी दूब का मख़मली फ़र्श बिछा हुआ था और जिसके ठीक बीच से होकर एक पक्का मार्ग सामने की ओर चला गया था। इसी मार्ग पर होकर दोनों सहन को पार करके सामने के चबूतरे पर पहुँचे। महल का मुख्य भाग यही था। चबूतरे की सीढ़ियों पर चढ़कर एक और द्वार मिला जो लाल पत्थर का महराबदार बना

था। महराब के दोनों ओर सफ़ेद पत्थरों की एक पंक्ति थी जिस पर क़ुरान की आयतें लिखी थीं। इस द्वार में प्रवेश करके पत्रवाहक ने विजयपाल को आगे कर लिया और स्वयं उसके पीछे-पीछे मार्ग बताता हुआ चलने लगा। महल की भीतरी रचना पेंचदार थी। ड्योढ़ी पार करने के बाद एक बरामदा था जिससे दो गलियारे विपरीत दिशाओं में चले गये थे। पत्रवाहक ने विजयपाल को दाहिनी ओर के गलियारे में मुड़ने का संकेत किया। गलिआरे का फ़र्श सफ़ेद बिल्लौरी पत्थर से बना था। उसकी चमक से मोटी दीवालों से घिरे गलियारे के अंधकार में आंशिक कमी हो जाती थी।

लगभग पचास क़दम आगे जाकर गलियारा एक छोटी-सी बारहदरी में समाप्त हो गया। वहाँ पहुँचकर विजयपाल ने मार्ग-प्रदर्शन के लिए मुड़कर पत्रवाहक की ओर देखा। वहाँ कोई नहीं था।

विजयपाल के समस्त शरीर से एक साथ पसीना निकल पड़ा। उसकी समझ में न आया कि उसे अब किधर जाना चाहिए। जाल में फँसे मृगराज की भाँति विवशतापूर्ण दृष्टि से एक बार उसने चारों ओर देखा। कहीं कोई नहीं था। अन्य उपाय न देख उसने होनहार के बलवान् हाथों में अपने को सौंप दिया और जहाँ खड़ा था, वहीं खड़े रहकर भावी की प्रतीक्षा करने लगा।

उसे इस प्रकार खड़े कुछ ही देर हुई थी कि दाहिनी ओर के एक कमरे से घंटो की कर्कश ध्वनि आई। फिर किवाड़ों के खुलने का शब्द हुआ। कुछ ही देर बाद सरदार कुशलपाल उसे अपनी ओर आते दिखाई दिये।

"शेख़ साहब आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।" कहते हुए कुशलपाल ने विजयपाल के कंधे को स्पर्श किया और फिर पर्दे को हटाकर उसे उसी कमरे में ले गया।

भीतर पहुँचकर विजय ने आँखें फाडकर चारों ओर देखा। प्रकाश बहुत कम था। पच्छिम की ओर केवल एक रोशनदान था जिससे छनकर दिवान्त की कुछ फीकी किरणें कमरे के फ़र्श के लगभग एक वर्ग हाथ में बिछल रही थीं।

"कहाँ हैं शेख़ साहब!" आतंकित मुद्रा में उसने कुशलपाल से प्रश्न किया।

कुशलपाल ने सामने की ओर संकेत कर दिया।

आँखें गड़ाकर विजयपाल ने देखा। पिछली दीवाल से सटी एक श्वेत मूर्त्ति, जिसके वस्त्र दूध-से उजले हैं, स्थिर मुद्रा में बैठी है। भारी-भारी दीवालों की दुर्भेद्य दृढता, वातावरण की गम्भीरता और प्रकाश और अन्धकार की समानता ने एक साथ अपना सम्मिलित प्रभाव विजयपाल के मस्तिष्क पर डाला। सहमते-सहमते वह उस श्वेत मूर्त्ति की ओर बढ़ा। कुछ पास जाने पर उसने देखा--कम्बल के ऊँचे आसन पर एक शुभ्र-मूर्त्ति घुटनों के बल बैठी है। हाथ में एक माला है जिसके दाने अन्धकार में भी चमक रहे हैं। श्रद्धा-भाव से विजयपाल का मस्तक आपसे आप मूर्त्ति के चरणों में झुक गया।

"बड़ी उम्र हो!" मूर्त्ति ने स्नेहसिक्त स्वर से मधुवर्षण किया। तत्पश्चात् उसके संकेत पर विजयपाल दाहिनी ओर के आसन पर बैठ गया। कुशलपाल भी उसके पास ही बैठ गया।

अब विजयपाल की आँखें कमरे के अल्प प्रकाश में भी देख सकती थीं। उसने देखा, मुख को छोड़कर शेख़ का समस्त शरीर एक श्वेत वस्त्र से ढका है। डाढ़ी के बाल चितकबरे हैं। रंग स्फटिक की भाँति श्वेत है, और ललाट प्रशस्त। नासिका ऊँची और लम्बी है। विशाल नेत्रों से शान्ति और वात्सल्य की धारा प्रवाहित हो रही है। उसकी उपस्थिति में विजय का भय आपसे आप दूर हो गया और हृदय में श्रद्धा-भक्ति की पवित्र भावनायें उमड़ने लगीं।

"निःसन्देह यह महान् पुरुष है", उसने मन ही मन निश्चय किया। "यह दिव्य विभूति है", उसकी अन्तरात्मा ने साक्षी दी।

वह सिर झुकाये चुपचाप शेख़ के चरणों की ओर देखने लगा।

"ख़ैर आफ़ियत?" शेख़ ने साधु-सुलभ ढंग से पूछा।

"आपके चरणों की कृपा है।" विजयपाल ने नम्रता से उत्तर दिया।

"इधर पहली बार आना हुआ है?" शेख़ ने प्रसंग को आगे बढ़ाते हुए पूछा।

"जी, पहली बार ही आया हूँ।"

"शहर कैसा पसन्द आया?"

"शहर तो बहुत सुन्दर है। पूरा स्वर्ग है। पर मुझे घूमने-फिरने का अधिक अवसर नहीं मिला है।"

"किस जगह क़याम किया है?"

"कुछ दिन चौरंगी सराय मे रहा, लेकिन अब यहीं पास........!" कहते-कहते विजय ने कुशलपाल की ओर देखा।

"जी, ये मेरे पास फ़िरोज़ी सराय में ठहर गये हैं। क़न्नौज के सरदार

विजयपाल जी यही हैं, जिनका ज़िक्र मैंने आपसे किया था।" कुशलपाल ने चपलता से विजयपाल के कथन को पूरा कर दिया।

"मेरे लायक़ ख़िदमत?" शेख़ ने साधुता में व्यावहारिकता का पुट देते हुए प्रश्न किया।

इस सीधे प्रश्न से विजयपाल असमंजस में पड़ गया। उसके भावों को ताड़ते हुए कुशलपाल ने उसकी ओर से उत्तर दिया—

"ये पूर्व के अमीरों के अजीज़ हैं। इधर आगरा आये थे। आपका नाम सुनकर दर्शन करने चले आये हैं। आपके शिष्य होना चाहते हैं।"

"सारी दुनिया फ़क़ीरों की शागिर्द है। फ़क़ीरों की शागिर्दी तालाब के पानी जैसी आसान है और आबे ज़मज़म जैसी मुश्किल!" शेख़ ने मुस्कराते हुए मधुर वाणी से कहा।

"श्री चरणों का परिचय अभी मुझे पूरा-पूरा नहीं मिला।" विजयपाल ने प्रसंग को अनुकूल बनाने के उद्देश्य से कहा।

"फ़क़ीरों का क्या परिचय! तस्बीह और किताब, रीश और दीन," शेख़ ने मुस्कराते हुए कहा और सामने रक्खी क़ुरानमजीद की पुस्तक विजयपाल की ओर बढ़ाई। आदर के साथ विजयपाल ने पुस्तक को हाथ में लिया। उसकी जिल्द को उठाकर देखा—लिपिकार के स्थान पर मोती जैसे अक्षरों में 'शेख़ कमाल बयाबानी' लिखा था। मुखपृष्ठ पर लाहौर के वर्त्तमान हाकिम, अजमेर के पीर और आगरा के वकीले मुतलक़ व सदर-उस्सदूर की सहियाँ थीं।

"जी," पुस्तक पर से दृष्टि हटाते हुए विजयपाल ने कहा। आसन के नीचे से एक पत्र निकालकर शेख़ ने विजयपाल के सामने खिसका

दिया जो लाहौर के हाकिम की तरफ़ से आया था और जिस पर 'शेख़ कमाल बयाबानी हाल मुक़ाम फ़तहपुर सीकरी' पता लिखा था।

"जी, समझ गया।" कहकर विजयपाल ने वह पत्र फिर शेख़ के चरणों के पास रख दिया।

"एक ख़त यह भी," कहते हुए शेख़ ने तीसरा एक और ख़त विजयपाल के आगे बढा दिया। यह ख़त मुराद बेग की ओर से आया था और इसमें दल के सिद्धान्तों के साथ-साथ विजयपाल की यात्रा का अभिप्राय और उसका विस्तृत परिचय दिया गया था। विजयपाल को मुराद बेग के अक्षर पहचानने में देर न लगी। उसने कुछ खुलते हुए कहा—"साधु-संन्यासियों से कुछ छिपा नहीं रहता।"

"वह फ़क़ीर ही क्या जिसे दोनों आलमों की ख़बर न रहे।" शेख़ ने फ़क़ीरी भाषा में विजयपाल के कथन का समर्थन करते हुए कहा। विजयपाल ने उत्तर में केवल सिर झुका दिया।

"मजलिस का वक्त अब बहुत दूर नहीं है, इसलिए हम लोगों को सीधी मतलब की बातचीत करनी चाहिए।" शेख़ ने वार्त्तालाप को संक्षिप्त करने के अभिप्राय से कहा।

"सेवक उपस्थित है, आज्ञा कीजिए।" विजयपाल ने धैर्य के साथ उत्तर दिया।

"सिर्फ़ आज्ञा से काम न चलेगा। बातचीत दोनों तरफ़ से होती है।" शेख़ ने फिर प्रस्ताव किया।

"पर शिष्यों को बोलना कम चाहिए, सुनना अधिक, ऐसा वृद्धों ने कहा है।" विजयपाल ने आरम्भ को बचाने के उद्देश्य से कहा।

"ठीक है। पर असलियत को और ज़्यादा ठीक से समझना ज़रूरी हो जाता है। क्या पूर्व के लोग बैरम ख़ाँ की तलवार का लोहा मान चुके हैं?"

"कुछ लोग ज़रूर मान चुके हैं, पर सब नहीं।" विजय ने भी बचते हुए उत्तर दिया।

"सब नहीं! पर ज़्यादा तादाद किन लोगों की है?"

"जो लोहा मानने को तैयार नहीं है, उनकी!"

शेख़ की त्योरियों पर बल पड़ गये। उसने भेद-भरी दृष्टि से कुशलपाल की ओर देखा।

कुशलपाल तुरन्त बोल उठा—"सरदार विजयपाल ठीक कहते हैं। पूर्व के पठानों में अभी दम बाक़ी है। सिकन्दर को शेरशाह के तख़्त पर बैठाने का ख़्वाब देखना अभी उन्होंने नहीं छोड़ा है।"

"मगर सिकन्दर को उधर से इम्दाद तो कोई नहीं मिल रही है?" शेख़ ने विजयपाल की ओर देखते हुए प्रश्न किया।

"इसका कारण यह कि जौनपुर और मेवात के बीच में एक चौड़ी खाई बन गई है जिस पर बैरम खाँ के बलवान हाथों का अधिकार है।"

"फिर पठान अपने इरादे में किस तरह कामयाब हो सकते हैं?"

"वे इसके लिए मेवात और लाहौर की ओर देख रहे हैं। पंजाब से सिकन्दर शाह को सहायता मिल सकती है और मिल भी रही है। यदि मेवात की ओर से आक्रमण करने का प्रबन्ध हो सके तो पूर्वी इलाक़े को मुग़लों से छीन लेने को वहाँ के पठान काफ़ी होंगे!"

"पर तुम तो पठान नहीं हो?"

"मैं पठान ज़रूर नहीं हूँ पर उनकी ओर से बोलने का मुझे उतना ही अधिकार प्राप्त है जितना हिन्दुओं की ओर से बोलने का।"

"वहाँ के हिन्दू तो बेज़बान हैं। कम से कम मैंने ऐसा ही सुना है।"

"हिन्दू बेज़बान हो सकते हैं, पर बेदिल नहीं हैं। और जहाँ तक मुग़लों का सवाल है, वे पठानों के साथ हैं। वे मुग़ल-सल्तनत को नहीं चाहते। ख़ास कर जब से मुग़लों के चकलेदारों ने जौनपुर और क़न्नौज के जौहरियों को लूटा-मारा है।"

शेख़ ने बनावटी कुशलपाल की ओर देखा। उनकी दृष्टि में इस बार क्रोध का आभास था।

"जी, सरदार विजयपाल ठीक कहते हैं। ख़ानजमाँ ने जौहरियों और महाजनों को बहुत सता रक्खा है।" विजयपाल के कथन की पुष्टि करते हुए बनावटी कुशलपाल ने कहा।

"पूर्व के जौहरी पैसेवाले हैं। वे रुपये-पैसे से पठानों की मदद कर सकते हैं। पैसा होने पर सेना भी खड़ी हो सकती है, यही न?"

"हाँ यह बात भी है। पर पूर्व के हज़ारों राजपूत-पठान जवान अपनी ख़ुशी से बैरम ख़ाँ से लोहा लेने को तैयार हैं। हम सब देखते हैं कि पूर्व में मुग़लों के पास कोई सेना ऐसी नहीं है जो उनके वहाँ टिकने में मदद दे सके। अगर आगरे की सेना पश्चिम की सेना से फँस जाय तो पूर्व के मुग़ल अमीर और चकलेदार चुटकी बजाते भाग खड़े होंगे।"

"आप थोड़ी-सी ग़लती कर रहे हैं।" शेख़ ने बीच ही में टोकते हुए कहा—"आप रुकन ख़ाँ रूहानी के छक्के छुड़ानेवाले ख़ानजमाँ को शायद भूल रहे हैं। यहाँ लोगों का विश्वास है कि जब तक सम्भल

और जौनपुर ख़ानजमाँ के हाथ में हैं, पूर्व से मुग़ल सल्तनत पर हमला नहीं हो सकता।"

"मैं ख़ानजमाँ को बहुत समीप से जानता हूँ। रुकन ख़ाँ रूहानी का मामला दूसरा था। उस समय आगरे की सेना साथ थी और तुर्कों में नया बलबला था। ख़ानजमाँ भी अपनी जवानी के जौहर दिखाने का शौक़ रखते थे। पर आज का मामला दूसरा है। आजकल ख़ानजमाँ साहब शाहमबेग को लिए लखनऊ में पड़े हैं और मैदाने मुहब्बत में करिश्मे दिखा रहे हैं।"

"अव्वल तो शिया और दूसरे उजबक! करेला नीम पर चढ़ रहा है। ख़ैर! तो पूर्व में ऐसे दिलेर अफ़ग़ान सरदार कितने हैं जिनसे हम ज़रूरत के वक़्त इम्दाद की उम्मीद रख सकते हैं?" बनावटी शेख़ ने फ़ुसफ़ुसाने के ढंग से कहा।

"सरदारों की गिनती नहीं है। संभल के इलाक़े के लिए हसन ख़ाँ पचकोटी तैयार बैठा है। बंगाले में सुल्तानबहादुर का बोलबाला है ही, उसकी सेना जौनपुर तक चक्कर लगा रही है। चुनार में शेरख़ाँ अपने को बहुत मज़बूत बना चुका है और आगरे पर सीधा हमला करने को तैयार है। क़न्नौज में मुरादबेग की ताक़त इन लोगों से कम नहीं है। फिर ये सब सरदार एक ही उद्देश्य और एक ही मत के हैं। ख़ानजमाँ तो हवा में उड़ जायगा।"

"ख़ानजमाँ के पास, सुनते हैं, सेना बहुत ज़बर्दस्त है?" बनावटी शेख़ ने योजना को अधिक स्पष्ट रूप में समझने के लिए प्रश्न किया।

"यह ख़याल ग़लत है। रुकन ख़ाँ की पराजय के बाद से यदि सच पूछा जाय तो ख़ानजमाँ निश्चिन्त हो गया है। उसने अपने सिपाहियों को छुट्टी दे दी है और उनके वेतन आप डकारने लगा है। तहवील का रुपया शाहमबेग की ज़रूरियात पूरी करने में जाता है। हाँ, बैरम ख़ाँ ज़रूर समझते होंगे कि उसके पास बड़ी सेना है क्योंकि जब आगरे से मनसब की जाँच होने जाती है तब टुकड़खोरे, भटियारे, भिश्ती, धुनिए, जुलाहे और कुछ बाज़ारों में घूमनेवाले जङ्गली मुग़ल, पठान और तुर्क पकड़ लिए जाते हैं। उन्हीं को मँगनी के लिफ़ाफ़े पहनाकर और घसियारों के घोड़ों व भटियारों के टट्टुओं पर चढ़ाकर हाज़िर कर दिया जाता है। मनसबदारी की रस्म अदा हो जाती है। शाही ख़ज़ाने से तनख़्वाह पूरी चली आती है। तोप और तलवार के मुँह पर ऐसे सिपाही क्या कर सकते हैं?"

शेख़ की आँखें क्रोध से लाल हो गईं। वे बार बार बनावटी कुशलपाल की ओर देखने लगे। कुशलपाल गरदन झुकाये चुपचाप सुन रहा था। कुछ देर बाद शेख़ ने कहा—

"अगर तुम्हारा बयान सच है तो मुग़ल सल्तनत को मिट्टी में मिलते देर न लगेगी।"

"हमारा विश्वास यही है; पर हमारी योजना मूल से आरम्भ होती है। जो भूलें पहले हो चुकी हैं, हम उनसे लाभ उठाना चाहते हैं। इसी लिए मुझे सेवा में भेजा गया है।"

"सचमुच तुम्हारी जानकारी बहुत काम की है। पूर्व और पश्चिम की योजनायें यदि एक साथ काम करें तो कामयाबी में शक न रह जायगा।

तुम लोग कहाँ से शुरू करना चाहते हो?" प्रश्नसूचक भाव से शेख़ ने विजयपाल की ओर देखा।

"केवल आपके सामने निवेदन कर सकता हूँ।" विजयपाल ने हाथ जोड़कर निवेदन किया।

"सरदार कुशलपाल अपने ही आदमी हैं। वे तुम्हारे भी मित्र हैं। इनके सुनने में कोई हानि नहीं है।" शेख़ ने प्रस्ताव किया।

"दल के मुखिया की आज्ञा का पालन मुझे अक्षर-प्रत्यक्षर करना है। आप पुर्वियों के स्वभाव से शायद परिचित नहीं हैं। हमें सिर से अधिक अपनी बात का ख़याल रहता है।"

"कोई हर्ज नहीं," कहकर शेख़ ने बनावटी कुशलपाल की ओर देखा।

"जी, यही मुनासिब है। मैं जा रहा हूँ।" कहकर कुशलपाल उठा और कमरे से बाहर चला गया।

———

कुशलपाल के बाहर चले जाने पर शेख़ ने कहा—"अब तुम अपनी बात बेखटके कह सकते हो।"

"हमारा मामला अधिक पेचीदा नहीं है। पर एकान्त की आवश्यकता इसलिए थी कि मैं एक पत्र आपको दिखाना चाहता था जो सिकन्दर शाह सूरी ने पूर्व के सरदारों के पास भेजा है। आपके पास शायद वह न आया होगा। हमारे दल का विचार इस पर आपकी सम्मति जानने का है।"

यह कहकर विजयपाल ने एक पत्र जेब से निकाला और उसे शेख़ के चरणों के पास रख दिया।

एक उचटती नज़र पत्र पर डालते हुए शेख़ ने कहा—"रोशनी कम है, इसलिए यहाँ पढ़ सकना मुमकिन न होगा। ज़बानी सुना दो कि इसमें लिखा क्या है?"

"सिकन्दर शाह ने कुछ सुझाव पेश किये हैं। उसका विश्वास है कि यदि उन पर अमल किया जाय तो सफलता अवश्य मिलेगी।"

"क्या सुझाव हैं?"

"पहला सुझाव यह है कि सबसे पहले ख़ानजमाँ और ख़ानख़ानाँ के व्यक्तियों से निबट लिया जाय। ये दो खम्भे टूट गये तो मुग़ल सल्तनत

की इमारत आप से आप ढह जायगी। ख़ानजमाँ से निबटना तो कुछ मुश्किल नहीं है, क्योंकि वह ऐयाश आदमी है और किसी हूर या ग़िलमा की परछाहीं में उसके समीप पहुँचा जा सकता है। पेचीदा मामला ख़ानख़ानाँ का है। उनके पास पहुँचने के लिए किसी बड़े ज़रिये की ज़रूरत होगी।"

"इसके बाद क्या होगा?"

"इसके बाद मालवा और मेवाती पठानों के साथ वह दिल्ली की ओर बढ़ेगा। इधर चुनार से शेर ख़ाँ और क़न्नौज से मुराद बेग कालपी और सम्भल लेते हुए आगरे पर हमला कर देंगे। मुग़ल चारों ओर से घिर जायँगे और ईश्वर ने चाहा तो उन्हें इस बार ईरान और क़ाबुल जाने का भी रास्ता न मिलेगा।"

"ख़ानाख़ानाँ और ख़ानजमाँ से किस तरह निबटना होगा? उन्हें गिरफ़्तार करने से ही काम चल जायगा या जान से मार देना होगा?"

"गिरफ़्तारी के पक्ष में हम लोग नहीं हैं। जो भूल एक बार हो चुकी है, उसे दोहराना ठीक न होगा।"

"तुम्हारा इशारा किस भूल की तरफ़ है।"

"मेरा मतलब उस भूल से है जो सम्भल के हाकिम नसीर ख़ाँ ने ख़ानख़ानाँ को गिरफ़्तार करके की थी। बैरम ख़ाँ को बच निकलने का मौक़ा मिल गया, जिसका नतीजा हमें आज दिन भुगतना पड़ रहा है।"

"पर उसमें नसीर ख़ाँ की ग़लती नहीं थी। नसीर ख़ाँ तो बैरम ख़ाँ को क़त्ल करना चाहता था और इसी लिए उसने लखनऊ के राजा मित्रसेन पर दबाव डालकर उसको सम्भल बुलवा लिया था। पर

तक़दीर ख़ानख़ानाँ के साथ थी। शेरशाह की समझ में यह आया कि बैरम ख़ाँ-सा वफ़ादार और सच्चा सिपहसालार अगर उसकी तरफ़ हो जाय तो पठानों की सल्तनत सूरज और चाँद की तरह क़यामत तक रोशन रहेगी।"

"ग़लती ग़लती ही होती है, वह किसी की ओर से हो। दुश्मन पर विश्वास करना भारी ग़लती है। अगर नसीर ख़ाँ की बात मान ली जाती तो हुमायूँ को फिर हिन्दुस्तान की ओर रुख़ करने की हिम्मत न पड़ती।"

"हर काम के लिए ख़ुदा ने एक वक्त़ मुक़र्रर कर दिया है। ख़ैर, इस बहस से कुछ फ़ायदा नहीं। अब तुम शायद नसीर ख़ाँ या शेरशाह की ग़लती को दुरुस्त कर लेना चाहते हो जिससे बैरम ख़ाँ फिर लौटकर इस मुल्क में न आ सके?"

सहज-स्निग्ध मुस्कान के साथ बनावटी शेख़ ने प्रश्न किया।

"हाँ।" कुछ काँपती आवाज़ में विजय ने स्वीकृति दी।

"तुम्हारे दोस्तों की राय ज़रूर क़ाबिले ग़ौर है। फिर भी अमल करने से पहले उसे अच्छी तरह समझ लेना चाहता हूँ। तुम्हें इसी लिए आगरे भेजा गया है कि ख़ानख़ाना के जिस्म पर से गर्दन का बोझ हलका कर दिया जाय?"

"हाँ!" इस बार विजय के स्वर में दृढ़ता थी।

"किस तरह?"

"आरम्भ से सुनाना ठीक रहेगा। क़न्नौज में हम चार दोस्तों की एक छोटी-सी गोष्ठी है जिसके नेता मुराद भाई हैं। हम सब एक जैसे

विचार रखनेवाले हैं। बहुमत से हमारी गोष्ठी जो निर्णय कर देती है, उस पर अमल करना हममें से प्रत्येक का धर्म है।"

"ठीक; साज़िश के मामलों में बिना ऐसी गोष्ठियों के कामयाबी नहीं हासिल होती। तुम्हारी इस गोष्ठी ने एक राय के बहुमत से ख़ानख़ानाँ को छुट्टी देने का निश्चय किया। इसके बाद?"

"एक राय से नहीं, बल्कि राय कसरत से समझिए। क्योंकि हममें से तीन क़त्ल करने के पक्ष में थे, पर एक की सम्मति विपक्ष में थी।"

"विपक्ष में कौन था?"

"उसका नाम सुनकर आपको आश्चर्य होगा और शायद आप मुझे कायर भी समझने लगें।"

"मतलब यह कि तुम्हीं क़त्ल करने के पक्ष में नहीं थे! यह अपने-अपने ख़याल की बात है। इसमें दिलेरी और बुज़दिली की बात नहीं है। मगर ताज्जुब यह है कि जिस काम के लिए तुम्हारा दिल गवाही नहीं देता, उसे तुमने अपने सर पर क्यों लिया?"

"अपनी इच्छा से नहीं लिया। पाँसा मेरे ही रुख़ पर पड़ गया।"

"मैं समझा नहीं। तुम्हारे रुख़ पर पाँसा कैसे पड़ गया?"

"यह काम कौन करे, इसका निर्णय हम लोगों ने पाँसा फेंककर किया था। 'दस' मेरा दाँव था।"

"पाँसा फेंका गया और वह 'दस' के रुख़ पर गिरा—यही न! मगर तुम्हें अफ़सोस तो ज़रूर हुआ होगा।"

"अफ़सोस तो हुआ था, पर ज़्यादा उस वक़्त नहीं हुआ। पीछे से

कुछ ऐसी बातें हो गईं कि मुझे इस काम को अपने ऊपर आने का भारी रंज है।"

"तो तुम इनकार कर सकते थे!"

"यह हमारी गोष्ठी के नियमों के विरुद्ध था। वे लोग मुझे कायर समझते।"

"तो तुम्हें मजबूरन आगरे आना पड़ा, हालाँकि तुम्हारा दिल नहीं चाहता था?"

"दिल तो अब भी नहीं चाहता, पर हाथ अपना कर्त्तव्य अवश्य पूरा करेंगे।"

"मुझसे तुम क्या मदद चाहते हो?"

"यही कि मुझे ठीक मौक़े पर आप बैरम ख़ाँ के पास तक पहुँचा दें। वह आपसे बहुधा मिलता-जुलता रहता है।"

"मगर इसमें जो ख़तरा है, तुमसे छिपा न होगा!"

"मुझे आपकी योजनाओं का पूरा पता है और मैं यह भी जानता हूँ कि आप ख़तरों से डरनेवाले नहीं हैं।"

"ठीक है। मगर मैं हर एक काम को इतमीनान के साथ करना चाहता हूँ। मुझे जल्दबाज़ी पसन्द नहीं है।"

विजयपाल ने उत्तर नहीं दिया। वह सिर झुकाये चुपचाप बैठा रहा।

"मुल्ला पीरमोहम्मद के बारे में सुना ही होगा। आजकल मोहतिसब वही है। ख़ुदा जानता है; ऐसा ज़ालिम और मक्कार दुनिया की पीठ पर

दूसरा न होगा। पूरा घाघ है। उसकी नज़रों से बच निकलना आसान नहीं है।"

"शायद आप मुझे डराने की कोशिश कर रहे हैं।"

"नहीं, मेरा मतलब यही है कि ऐसे नाज़ुक काम में हाथ डालने से पहले ख़ूब सोच-समझ लेना चाहिए। मान लो, तुम्हें कामयाबी न हुई?"

"उसके लिए हम सब तैयार हैं। राज्य न सही, स्वर्ग तो मिलेगा। गीता में कहा ही है—'हतोवा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।" ओंठों पर मुस्कराहट लाने का प्रयत्न करते हुए विजयपाल ने कहा।

"तुम बहादुर हो। पर मुझे भी तो मौक़ा दो कि मैं अपने दिल को तैयार कर लूँ। तुम्हें ख़ानख़ानाँ के पास ठीक मौक़े पर पहुँचाना मेरा काम होगा, यही न। इस तरह इस साज़िश में मेरी भी शिरक़त हो जायगी!"

"और उसके फल में भी।"

"फल मीठा और कड़ुआ दोनों तरह का हो सकता है। पर हमें कड़ुए फल की बाबत पहले सोचना होगा। मान लो, अगर कुछ करने-धरने के पहले ही तुम गिरफ़्तार हो गये!"

"तो...?"

"तुम्हें तरह-तरह की तकलीफ़ें दी जायँगी—ऐसी तकलीफ़ें जिनका तुम्हें गुमान भी न होगा, जिन पर इन्सान मौत को तरजीह देता है। उस हालत में, मुमकिन है, तुम अपने साथियों का नाम बता दो!"

उत्तर में विजयपाल ने घृणासूचक भाव से मुस्करा दिया। फिर कहा—"मैं राजपूत हूँ। राजपूत के प्राण सदैव शरीर से बाहर ही रहते हैं।"

"फिर भी मुझे सोचना-समझना है। बहुत-सी बातें हैं। अच्छा, मान लो, मैं इस वक़्त तुम्हारी इम्दाद न कर सका?"

"तो दूसरे उपाय से काम लिया जायगा।"

"यानी उस सूरत के लिए भी तुम लोगों ने कोई रास्ता सोच रक्खा है। यह मुनासिब भी है। होशियार वही है जो अपने साथ एक से ज़्यादा हथियार रखता है। एक धोखा दे जाय तो दूसरे से काम लिया जाय।"

"हम निश्चय कर चुके हैं।"

"तब कुछ कहना-सुनना बेकार है।"

"आप शायद साफ़ बच जाना चाहते हैं?"

"कम से कम इस वक़्त तो ऐसा ही है। आगे सोचने-समझने पर जो कुछ भी तय करूँ!"

"तो मैं फिर कब भेंट करूँ?"

"तकलीफ़ करने की क्या ज़रूरत है। मैं सरदार कुशलपाल के ज़रिये ख़बर भिजवा दूँगा।"

"गुस्ताख़ी माफ़ हो। मैं इस मामले में मुँह-दर-मुँह बात करना चाहता हूँ, किसी दूसरे आदमी को बीच में डालकर नहीं। अगर आप मुझे मुलाक़ात का फिर मौक़ा दे सकें तो ठीक हो।"

"मुनासिब तो यही होगा। मगर बड़ी मुश्किलें हैं। मेरे पास हर तरह के आदमी आते-जाते रहते हैं। तख़लिया कम होता है। यहाँ, जैसा कि

तुम्हें मालूम होना चाहिए, ख़ुफ़िया लोगों की बहुतायत है। लोग हवा सूँघते रहते हैं। यह मकान मेरा नहीं है। मैं तो चिश्ती साहब की हवेली में रहता हूँ या ख़ानकाह में। पर दोनों जगहें इस तरह की बातचीत के लिए मौज़ूँ नहीं हैं।"

"आप जहाँ सुविधापूर्वक मिल सकें, मैं हाज़िर हो जाऊँगा?"

"यह ठीक है। सीकरी में तुम सब जगहों से वाक़िफ़ तो होगे ही?"

"वाक़फ़ियत तो मेरी इतनी है कि यदि यहाँ पर मुझे अकेला छोड़ दिया जाय तो लौटकर अपने डेरे पर नहीं पहुँच सकता।"

"कोई हर्ज़ नहीं। नई जगह पर ऐसा ही होता है। अच्छा, तुम अपने डेरे पर ही रहना। मैं ही कोई इन्तज़ाम करूँगा। मौक़ा मिलते ही तुम्हें गाड़ी भेजकर बुला लूँगा।"

"बड़ी कृपा होगी।" सिर झुकाते हुए विजयपाल ने कहा।

"शायद कल दोपहर तक ही तुम्हें बुला भेजूँ।"

"मैं तैयार रहूँगा।"

"बस, यह ठीक है।" कहकर शेख़ ने अपनी तस्बीह उठा ली। मनके खिसकने लगे। इसे समाप्ति की सूचना समझकर विजयपाल प्रणाम करके उठ खड़ा हुआ और बाहर निकल आया। बारहदरी के पास पूर्व-परिचित पथप्रदर्शक खड़ा मिला। वह विजयपाल को लेकर बाहर आया। द्वार के पास गाड़ी लगी थी। विजयपाल ने देखा, इस बार उसे पहलेवाला घास-भरा सहन नहीं मिला। फिर भी वह चुपचाप जाकर गाड़ी में बैठ गया।

---

(२१)

गाड़ी पर बैठते-बैठते विजयपाल को नन्दा का ध्यान हो आया। कल से उसे नन्दा का कोई समाचार नहीं मिला था। न जाने वह कैसी होगी। रामपाल के आने में आज असाधारण विलम्ब हो गया था। फिर भी उसे आशा थी कि सराय में अपने डेरे तक पहुँचते-पहुँचते रामपाल नन्दा का पत्र लिये उसे अवश्य मिलेगा। इसी उत्सुक प्रतीक्षा में महलों से अपने डेरे तक का कुछ दूर का अन्तर भी उसे बहुत दिखाई दिया।

गाड़ी को सदर फाटक से ही लौटाकर वह सराय में गया। रामपाल कहीं नहीं था। उसका मन उदास हो गया। अपने कमरे के द्वार पर उसे इमाम खड़ा दिखाई दिया। आशा न रहने पर भी उसने उससे प्रश्न किया—'रामपाल आया था क्या?'

"जी नहीं।" अभिवादन करते हुए इमाम ने उत्तर दिया।

"मेरा कोई पत्र तो नहीं आया?" फिर आशा के कच्चे सूत्र का सहारा लेते हुए विजयपाल ने पूछा।

"नहीं, पत्र भी कोई नहीं आया है।"

विजयपाल जानता था कि नन्दा के सिवाय उसे पत्र भेजनेवाला और कोई नहीं है। नन्दा का पत्र रामपाल के द्वारा ही आता-जाता है।

जब रामपाल ही नहीं आया तब कोई पत्र भी कैसे आ सकता था। फिर भी उसने इमाम से उसके सम्बन्ध में प्रश्न कर दिया। सचमुच उसने भूल की। इस अपने अनावश्यक उतावलेपन पर उसे बड़ी खिजलाहट हुई।

कमरे का द्वार बन्द कर वह अपने वस्त्र बदलने लगा। उसका ध्यान बराबर बाहर की ओर ही रहा। लगता था कि रामपाल अब आया, अब आया। सराय के सामने सड़क पर किसी घोड़े की टाप का शब्द होता तो वह खिड़की से झाँककर उधर देखने लगता। बहुत देर प्रतीक्षा करने पर भी जब रामपाल न आया तब वह निराश होकर पलँग पर जा लेटा और अनेक प्रकार की चिन्ताओं में विलीन हो गया।

नन्दा ने पत्र क्यों नहीं भेजा। कहीं वह बीमार तो नहीं हो गई। उसकी भेंट का पता मकान की मालकिन को तो नहीं लग गया। यदि ऐसा हुआ तो उसने, निस्सन्देह, या तो उस खिड़की को बन्द करा दिया होगा, या नन्दा को ही किसी ऐसे कमरे में रख दिया होगा जहाँ से पत्र भेज सकना उसके लिए सम्भव न हो। पर रामपाल को तो लौट आना चाहिए था। उसके न लौटने से चिन्ता और भी होती है। वह स्वयं तो किसी दुर्घटना में नहीं फँस गया। आदमी वैसे तो सावधान और ठिकाने का है, फिर भी राजधानी में ज़रा से सन्देह पर किसी को गिरफ़्तार करके जेलख़ाने पहुँचा देना मामूली बात है। परदेश में उसकी कहनेवाला या उसकी ज़मानत करनेवाला भी कोई नहीं है। ज़रूर ही वह किसी संकट में पड़ गया है। यदि यह सत्य हुआ हो तो वह उसकी सहायता किस प्रकार कर सकता है। उसका अपना परिचित भी आगरे में कोई नहीं है।

कुशलपाल से इतनी अभिन्नता नहीं है। उससे कोई ऐसी बात कहना, जिसका सम्बन्ध नन्दा से हो, उचित नहीं जँचता। न जाने कुशलपाल इसे सुनकर क्या कहे। अपने जैसा ही वह उसे भी समझने लगेगा। सम्भव है वह नन्दा पर भी कुछ छींटे कसे। उसे यह ज़रा भी अच्छा नहीं लगेगा। रोष में आकर यदि उसने भी कुछ कह-सुन दिया तो मामला बिगड़ जायगा। नहीं, कुशलपाल से कुछ कहना ठीक न होगा।

सहसा उसका ध्यान शेख़ साहब की ओर गया। पहली मुलाक़ात में ही उनके प्रति उसके हृदय में श्रद्धा-भाव उत्पन्न हो गया था। उनके व्यक्तित्व में उसे अपूर्व महत्ता दिखाई दी थी। उनके मुँह से प्रत्येक शब्द नपा-तुला और सुघड़ बनकर निकलता है। उनकी आँखों की अपूर्व ज्योति में महत्ता, उदारता और दृढ़ता के एक साथ दर्शन होते हैं। उनके जैसे व्यक्ति सहसा किसी कार्य का आरम्भ नहीं करते। इसी लिए वे उसके विचारों को सुनकर, सरदार कुशलपाल की भाँति, एकदम उसका समर्थन न करके गम्भीर हो गये थे। आज रात को एकान्त में वे उस योजना पर विचार करेंगे। सम्भव है, जैसा कि उन्होंने कहा था, कल दोपहर से पहले ही वे उसे बुला भेजें। उस समय वे योजना के सम्बन्ध में अपना निश्चित मत अवश्य सूचित कर देंगे और जहाँ तक समझ में आता है, वे उसका समर्थन ही करेंगे। यदि किसी कारणवश, प्रत्यक्ष रूप में, इस समय कोई सहायता न कर सके तो कोई दूसरा सरल मार्ग ही बता देंगे।

उनकी सम्मति, उसके महान् उद्देश्य की सिद्धि के लिए, सहायक ही होगी। जिस लक्ष्य को सामने रखकर वह आगरे आया है, उसकी सिद्धि अब देर नहीं है। उस ओर से अब उसे निश्चिन्त हो जाना

चाहिए। नन्दा और रामपाल का मामला अवश्य अभी तक उलझा हुआ है। इस कार्य में क्या शेख़ साहब से सहायता नहीं मिल सकती। राजधानी में उनका जैसा प्रभाव है, उसके विचार से अपने इस व्यापार में भी उनसे पूरी सहायता मिल सकती है। जब वकीले मुतलक़ तक उनके इशारों पर नाचते हैं, तब वे क्या नहीं कर सकते। रामपाल यदि गिरफ़्तार भी हो गया होगा तो उनकी सहायता से छूट सकता है।

ऐसी स्थिति में कल दोपहर तक शान्ति के साथ प्रतीक्षा करनी चाहिए। यदि उस समय तक नन्दा या रामपाल का कोई समाचार न मिले तो संकोच छोड़कर शेख़ साहब से अपनी कठिनाई कहनी चाहिए और उनसे सहायता लेनी चाहिए। वे महान् हैं। उनके जैसे आकृतिविशिष्ट जन स्वभावविरोधी नहीं होते। कमरे के अन्धकार में ही शेख़ की कल्पनामूर्त्ति के चरणों में विजयपाल का मस्तक श्रद्धा से झुक गया।

इन्हीं विचारों में डूबते-उतराते न जाने कब नींद ने विजयपाल को अपनी गोद में ले लिया। वह स्वप्न देखने लगा—नन्दा की चिट्ठी लिये एक देहाती साँड़िनी सवार, उसे तलाश करता-करता, सराय फ़िरोज़ी में आया है। इमाम उसे विजयपाल के कमरे में नहीं जाने देता। विजयपाल चाहता है कि कमरे का द्वार खोलकर बाहर निकले और चिट्ठी ले ले। पर नींद की जड़ता उसे वहीं लेटे रहने को विवश कर देती है।

इसके बाद स्वप्न की धारा दूसरा पथ ग्रहण करती है। वह काली नदी के तट पर खड़ा है। दूसरे तट पर कात्यायनी माई का थान है। नन्दा अपनी खिड़की में बैठी उसकी राह देख रही है। विजय नदी में

उतरकर उसके निकट पहुँचना चाहता है, पर नदी का पानी बराबर बढ़ता जा रहा है—जैसे बरसाती बाढ़ आ गई हो।

नन्दा की भोली और व्याकुल प्रतीक्षा उसे अपनी ओर आकृष्ट करती है। वह नदी में उतरता है। उसके पैर सहसा दलदल में फँस जाते हैं। वह आगे नहीं बढ़ पाता, न पीछे ही लौट पाता है। वह जितना ज़ोर लगाता है उतना ही दलदल में धँसता जाता है। सहारे के लिए वह रामपाल की ओर देखता है, पर रामपाल भी वहाँ नहीं दिखाई पड़ता!

इसी समय विजयपाल पर नन्दा की दृष्टि पड़ती है। उसकी दुरवस्था में फँसा देखकर नन्दा के मुँह से चीख़ निकल जाती है। नन्दा की आतुरता और निराश दृष्टि विजय में दोगुने साहस का संचार करती है। वह एक बार कीचड़ से बाहर निकलने की भरसक चेष्टा करता है। सहसा उसे एक भीषण हँसी सुनाई पड़ती है। पीछे खड़ा हुआ मुराद बेग मानो हँसकर कह रहा है—"यह कायरता है!"

नदी में पानी बढ़ रहा है। वह बढ़ते-बढ़ते नन्दा की खिड़की के किनारे तक पहुँच जाता है। खिड़की अब जलमग्न होना ही चाहती है। विवशता भरी दृष्टि से नन्दा विजय की ओर देख रही है—मानो आँखों की भाषा में कह रही है—"विजय, दुःख है कि मेरा प्रेम भी तुम्हारी सहायता नहीं कर सकता।"

सहसा विजय की दृष्टि एक डोंगी पर जा टिकती है। नदी का वक्ष चीरती हुई वह डोंगी नन्दा की खिड़की की ओर अग्रसर हो रही है। शेख़ कमाल चिश्तावानी उस पर सवार हैं। उनकी स्निग्ध और शान्त दृष्टि नदी की उद्दाम लहरों को विनीत भाव धारण करने की मानो शिक्षा

दे रही है। चप्पू कुशलपाल के हाथों में है। डोंगी नन्दा की खिड़की के सामने जाकर रुक जाती है। नन्दा निकलकर डोंगी पर सवार हो जाती है और कुशलपाल को विजयपाल की ओर डोंगी ले चलने का संकेत करती है। डोंगी उसकी ओर मुड़ती है। लहरों का वेग सहसा प्रबल हो उठता है। कुशलपाल के हाथों से चप्पू छूट जाते हैं। डोंगी लहरों के थपेड़े खाती हुई अज्ञात दिशा की ओर बह चलती है। नन्दा भय से चीख़ पड़ती है और बेहोश हो जाती है। विजय चुपचाप खड़ा नन्दा की ओर देखता रहता है। धीरे-धीरे डोंगी उसकी दृष्टि से ओझल हो जाती है।

सहसा कोई काली वस्तु धीरे-धीरे नदी की धारा से ऊपर को उभरती दिखाई देती है। क्रमशः वह एक भयानक नक्र के रूप में बदल जाती है। उन्मत्त हो जल के साथ हिलकोरें भरता वह नक्र विजयपाल की ओर बढ़ता है। विजयपाल भागकर भी उससे अपनी रक्षा नहीं कर सकता। उसके पैर दलदल में पूर्ववत् फँसे रहते हैं।

सहसा विजय को अपने साथियों का ध्यान आता है। वह अपने कार्य को पूरा नहीं कर सका। उसके मित्र उसे कायर कहेंगे। उसकी हँसी उड़ायेंगे। पर वह विवश है। वह करना कुछ और चाहता है, होता कुछ और है।

पास पहुँच कर नक्र अपना मुँह खोल देता है। उसकी कराल सफ़ेद डाढ़ें चमक उठती हैं। विजय साहस करके एक बार इस प्रत्यक्ष काल की ओर देखता है। उसके सारे साथी भी जैसे इस नक्र के मुँह में पहुँच गये

हैं। वे विजय को वहाँ से भाग जाने का संकेत करते हैं। पर विजय भागे भी तो कैसे!

विजय चौंक पड़ा। स्वप्न की विभीषिका ने नींद की जड़ता को भङ्ग कर दिया। वह उठ खड़ा हुआ। देखा कि प्रकाश की किरणें खिड़की की सन्धियों से कमरे के भीतर प्रवेश कर रही हैं। द्वार खोलकर वह बाहर आया। बरामदे के बीच में बिछे आबनूस के तख़्त पर बैठा इमाम दूधवाले का हिसाब कर रहा था। विजयपाल को देखकर वह उठ खड़ा हुआ। बड़े अदब से एक लिफ़ाफ़ा सामने रखता हुआ बोला—"यह रात आया था।"

"कौन लाया था?"

"एक साँड़िनी का सवार। कहता था, सलीम शाह के महल में रहनेवाली लडकी ने भेजा है। आपको देने के लिए।"

"उसी समय मुझे क्यों नहीं दिया?" क्रोध-भरी झुँझलाहट के साथ विजय ने कहा।

"आप सो रहे थे। सोते मेहमान को जगाना अनुचित है।" इमाम ने सहज भाव से उत्तर दे दिया।

विजय चुप हो रहा। लिफ़ाफ़ा उठाकर वह अपने कमरे में चला गया। नन्दा ने लिखा था—

"प्यारे विजय,

"किसी प्रकार यह पत्र भेज रही हूँ। नहीं जानती, तुम्हारे पास तक पहुँचेगा भी या नहीं। जब से तुम गये हो, कोई समाचार नहीं मिला।

आज शाम को या कल सबेरे मैं सीकरी चली जाऊँगी। मालूम हुआ है कि चाचा जी ने हमें वहीं रहने को बुलाया है। गाड़ी आ गई है। उसमें दो सफ़ेद घोड़े जुते हैं। अगर किसी प्रकार सम्भव हो सका तो सीकरी पहुँचकर अपना पता तुम्हें लिख भेजूँगी। मैं बहुत डर रही हूँ। भगवान् जाने, क्या होने जा रहा है।"

यह पत्र पढ़कर विजय का हृदय धड़क उठा। अब तक शायद वह सीकरी पहुँच चुकी होगी। रामपाल भी जाने कहाँ मर गया। विजय को उस पर बड़ा क्रोध आया। यदि सामने होता तो उसकी अच्छी तरह ख़बर लेता। उल्लू को यह भी ख़्याल नहीं कि परदेश में उसकी किसी समय ज़रूरत पड़ सकती है।

मन के उद्वेग में विजय कमरे से बाहर निकला और सराय के फाटक पर जाकर खड़ा हो गया। सम्भव है, सफ़ेद घोड़ोंवाली गाड़ी उसे देखने को मिल जाय। एक पहर से अधिक समय तक वह वहीं खड़ा खड़ा आगरे की ओर देखता रहा। सफ़ेद घोड़ोंवाली गाड़ी नहीं आई।

इसी समय रामपाल अस्तव्यस्त रूप में सामने से आता दिखाई दिया। उसके चेहरे पर हवाइयाँ उड़ रही थीं मानो कई दिन का भूखा और जागा हुआ है। उसकी इस विकृत मुद्रा पर विजयपाल को तरस आ गया। प्रश्नसूचक भाव से उसने रामपाल की ओर देखा। उत्तर में रामपाल ने एक लिफ़ाफ़ा उसके हाथ में रख दिया।

रामपाल को कमरे में जाकर स्वस्थ होने का आदेश देते हुए उसने वहीं खड़े-खड़े पत्र को खोला। नन्दा ने लिखा था—

"प्यारे विजय,

बड़ी परेशानी में पत्र भेज रही हूँ। न जाने ये लोग कल रात मुझे क्यों यहाँ लाये हैं। चौड़ी सड़क से दाहिनी ओर को मुड़नेवाली तीसरी गली का बारहवाँ मकान है। पड़ोस में एक ऊँचा मकान है जिसके गुम्बद मुझे आँगन से दिखाई दे रहे हैं। दरवाज़े पर ऊँचा चबूतरा है। फाटक ऊँचे और लोहे के हैं। मेरे कमरे में एक खिड़की है जो बग़ल की गली की ओर खुलती है। शीघ्र दर्शन दीजिए।

—तुम्हारी नन्दा।"

पत्र बड़ी जल्दी में लिखा गया था। स्पष्ट ज्ञात हो रहा था कि नन्दा इस आकस्मिक स्थान-परिवर्तन से बहुत अधिक घबरा गई है और प्रत्येक क्षण विजयपाल की सहायता की प्रतीक्षा कर रही है।

विजयपाल के लिए एक क्षण का विलम्ब भी अब असह्य था। वह सीधा अपने कमरे में पहुचा। वस्त्र बदले। तलवार कमर से लटकाई और रामपाल या इमाम से बिना कुछ कहे सुने सराय से चल दिया।

सराय के फाटक पर ही उसे कुशलपाल मिला। इस समय उससे बात करने का विजयपाल को अवकाश न था। उसने चुपचाप निकल जाना चाहा। पर कुशलपाल सामने आ गया। कन्धे पर हाथ रख मुस्कराकर बोला—"सबेरे-सबेरे कहाँ जाने की तैयारी हो गई?"

"एक ज़रूरी काम से जा रहा हूँ।"

"दोपहर को शेख़ साहब से आपको भेंट भी तो करनी है न?"

"उससे पहले ही लौट आऊँगा।"

"मेरी ज़रूरत तो न होगी ?"

"शायद नहीं।"

"अच्छा तो मैं जा रहा हूँ। ठीक समय पर आपको शेख़ साहब की गाड़ी तैयार मिलेगी। कलवाला कोचवान रहेगा।"

"मैं ठीक समय पर ही उनकी सेवा में पहुँच जाऊँगा।"

---

(२२)

तेज़ी से क़दम बढ़ाता हुआ विजयपाल नन्दा के पत्र में निर्देशित दिशा की ओर चला। पर उसे लगा, जैसे उसके हाथ-पैर ढीले पड़ गए हैं। वह जितना तेज़ चलता है, उतना तेज़ नहीं चल पाता। चौराहे पर पहुँच कर एक बार उसने इधर-उधर देखा। एक घोड़ागाड़ी खड़ी थी। कोचवान के पास पहुँच कर उसने उसे पत्र में लिखा पता समझाया, फिर शीघ्र चलने का आदेश देकर भीतर जा बैठा।

कुछ क्षण सड़क पर चलकर गाड़ी एक गली में मुड़ी और फिर एक मकान के सामने जाकर खड़ी हो गई। विजयपाल उतर पड़ा। उसने देखा, लोहे के फाटकवाला एक मकान सामने था। बग़ल में एक मसजिद थी जिसके गुम्बद सफ़ेद संगमर्मर के बने थे। फाटक बन्द था। कोई दरबान भी नहीं था। गाड़ीवान को वहीं खड़े रहने का आदेश देकर वह मकान की बग़लवाली गली में घूम गया और एक खिड़की के सामने जा खड़ा हुआ। खिड़की बन्द थी। कुछ देर तक इधर-उधर देखने के बाद उसने खिड़की पर हलके हाथ से थाप दी और धीमे स्वर में पुकारा—"नन्दा !"

नन्दा चौंक पड़ी। विजय का कण्ठ-स्वर पहचानने में उसे देर

न लगी। खिड़की खोलकर उसने बाहर की ओर झाँका। विजय सामने खड़ा था। दोनों की निगाहें मिलीं। संकटावस्था में रहने पर भी दोनों के ओंठों पर मुस्कान खेल गई।

दूसरे ही क्षण नन्दा फिर अपने कमरे में भाग गई। उसने पास रक्खी घण्टी को उठाकर इतनी ज़ोर से बजाया कि दो बाँदियाँ और राजरानी स्वयं उसके कमरे में दौड़ आईं।

"सदर फाटक खोल दो। मेरे मेहमान आये हैं।" उसने अधिकारपूर्ण स्वर में कहा।

सुनते ही एक बाँदी सदर फाटक की ओर लपकी।

"ठहर!" जाती हुई बाँदी को सम्बोधित कर राजरानी ने कहा। बाँदी रुक गई।

"मैं स्वयं जा रही हूँ।" राजरानी ने आदेश को स्पष्ट किया।

"आपके जाने की ज़रूरत नहीं।" बीच में बाधा देते हुए नन्दा ने कहा—"आनेवाले व्यक्ति को मैं अच्छी तरह जानती हूँ।"

"फिर भी बिना जाने-पहचाने उसे अन्दर आने की आज्ञा मैं नहीं दे सकती।" राजरानी ने आपत्ति की।

"कह तो रही हूँ कि वे मेरे जाने-पहचाने हैं। आगरे में उन्हीं के सम्बन्ध में मैंने आप से ज़िक्र किया था।" आवेश और उत्सुकता के कारण कुछ हाँफती हुई-सी नन्दा बोली।

"तुम्हारे जानने-पहचानने से काम नहीं चलेगा। मुझे भी तो कुछ देखना-सुनना होगा।" राजरानी के स्वर में अधिकार का गर्व था।

"नहीं, उन्हें तुरन्त भीतर बुला लेना होगा।" उसी स्वर में नन्दा ने कहा।

रोष-रुद्ध नागिन की तरह राजरानी ने नन्दा की ओर देखा। उसने कुछ उत्तर नहीं दिया। बाँदियाँ एक-दूसरी से सटकर खड़ी हो गईं।

"वे कब तक बाहर खड़े रहेंगे?" क्रोधयुक्त मुद्रा में नन्दा ने कहा।

"मुझे जब तक उनका पूरा परिचय न मिले, मैं उन्हें भीतर न आने दूँगी।" राजरानी ने अपनी आपत्ति को दोहरा दिया।

"उनका नाम विजयपाल है। क़न्नौज के रहनेवाले हैं। क्षत्रिय राजकुमार हैं। क़न्नौज से आगरा आ रहे थे। मार्ग में परिचय हो गया। अब वापस क़न्नौज जा रहे हैं। यही उनका परिचय है।" नन्दा ने भी पुराने परिचय को दोहरा दिया।

"नहीं; जापनाह ने किसी बाहरी व्यक्ति से तुम्हारी भेंट को मना किया है।" कहते हुए राजरानी ने एक पत्र नन्दा की ओर बढ़ा दिया। पत्र को ज़मीन पर पटककर जूतियों से कुचलती हुई नन्दा बोली—"मैं आज्ञा देती हूँ कि उन्हें भेंट के लिए तुरन्त भीतर बुलाया जाय।"

नन्दा की आँखें लाल हो रही थीं। नथने फड़क रहे थे। राजरानी उसका यह रूप देखकर कुछ सहमी। फिर ज़रा नर्म पड़ती हुई बोली—"तुम न केवल मेरा, वरन् जापनाह का भी अपमान कर रही हो।"

"मैं किसी की लौंडी-बाँदी नहीं हूँ। न मैं किसी की क़ैद में हूँ। मैं जिससे चाहूँगी, उससे भेंट करूँगी। मुझे रोकनेवाला कोई नहीं है।" ज़ोर से पत्थर के फ़र्श पर पैर पटकते हुए नन्दा ने कहा।

"वे तुम्हारे चाचा हैं, नन्दा !" राजरानी ने कुछ समझाने के स्वर में कहा, "वे तुम्हारे संरक्षक हैं। तुम्हारी रक्षा की ज़िम्मेदारी उन पर है।"

"अपनी संरक्षक मैं स्वयं हूँ। मेरी ज़िम्मेदारी स्वयं मुझ पर है।" कुछ तेज़ स्वर में नन्दा ने कहा।

"मैं क़सम खाकर कहती हूँ कि तुम्हारे चाचा सुनेंगे तो......!" भय प्रदर्शित करते हुए राजरानी ने कहा।

"वे कुछ न कहेंगे, अगर वे सचमुच मेरे चाचा हैं तो !" 'मेरे' पर अधिक ज़ोर देते हुए नन्दा ने कहा।

नन्दा के इस उग्र रूप में राजरानी को रतनसेन की तेजस्वी प्रतिमूर्त्ति दिखाई दी—क्षात्रतेज से उद्दीप्त, असहिष्णु और अधिकारपूर्ण ! वह कुछ न कह सकी।

"मैं आज्ञा दे रही हूँ कि फाटक खोल दो। जा रही हो या नहीं ?"

बाँदियों की ओर घूमकर नन्दा ने आदेश दिया। बाँदियाँ पत्थर की तरह अचल, राजरानी के मुँह की ओर देखतीं, पूर्ववत् खड़ी रहीं।

नन्दा के ओंठों पर व्यंग्यपूर्ण मुस्कान छितरा गई। दूसरे ही क्षण उसके चेहरे पर ऐसा भाव उदित हुआ कि राजरानी उसका मार्ग रोकने का साहस न कर सकी। नन्दा का मार्ग छोड़ वह एक ओर हट गई। गम्भीर चाल से नन्दा फाटक की ओर बढ़ी। पीछे-पीछे राजरानी भी चली। बाँदियों ने भी राजरानी का अनुसरण किया। कुछ दूर जाकर एक बाँदी ने दूसरी के कान में फुसफुसाकर कहा—"बहुत तेज़ पानी है।"

"किसी राजपूत की कन्या दिखाई देती है।" दूसरी ने धीमे स्वर में उत्तर दिया।

राजरानी ने भी बाँदियों की यह बात सुनी। उसने अपना कलेजा थाम लिया। उसकी आँखों में आँसू भर आये।

फाटक पर पहुँचकर क्षण भर के लिए नन्दा रुकी। फिर उसने हाथ बढ़ाकर कुंडी खोल दी। विजयपाल सामने खड़ा था। दोनों हाथ उसके स्वागत में बढ़ाते हुए नन्दा ने कहा—"आइए।"

स्थिर चरणों से विजयपाल भीतर आया। नन्दा ने उसका हाथ अपने हाथों में ले लिया। राजरानी ने सिर झुका लिया। बाँदियाँ एक ओर को हट गईं।

विजयपाल का हाथ पकड़े नन्दा अपने कमरे की ओर बढ़ी। मार्ग में विजयपाल ने कहा—"तुम्हारे पत्र ने बड़ी परेशानी में डाल दिया था, नन्दा।"

"तुम्हारे सिवाय और कहती भी किससे?" यह कह नन्दा ने विजय के कन्धे पर अपने दोनों हाथ रख दिये।

"क्या बात थी?"

"तुम अपनी आँखों से देख लो न!"

दोनों एक कमरे में पहुँचे। विजयपाल ने ऊपर से नीचे तक कमरे पर निगाह डाली। बिल्लौरी पत्थर का फ़र्श शीशे की तरह चमक रहा था। ठीक बीच में एक चौपड़ की बिसात बनी थी, दूसरी शतरञ्ज की। बीच में हरे और लाल पत्थर की पच्चीकारी से गुलाब के चार गुलदस्ते सजाये गये थे। दीवालों पर भी पच्चीकारी का सुन्दर प्रदर्शन था। सामने की दीवाल पर एक विशाल तैल चित्र-लगा था जिसका चौखटा बहुमूल्य हाथीदाँत का बना था। चित्र में सम्राट् हुमायूँ

सम्मनबुर्ज़ पर खड़े अंकित किये गये थे। उनकी बाईं मुट्ठी पर बाज़ बैठा था। दाहिने हाथ की तर्जनी सामने की ओर संकेत कर रही थी। चौखटे पर नीचे क़ीमती और रंग-बिरंगे पत्थरों से यह शेर लिखा हुआ था—

ग़ाफ़िल मनशी न वक़्त बाज़ीस्त
वक़्त हुनरस्तो कारसाज़ीस्त* ।

दीवालों पर भी अनेक सुन्दर चित्र बने हुए थे। इन चित्रों में अनेक प्रकार के पशु-पक्षी जोड़ों में प्रेम-मुद्रा में अंकित थे। उनके रंगों की जगमगाहट सहज ही अपनी ओर ध्यान आकृष्ट कर लेती थी। नन्दा की शय्या के सुनहरी पाये मीना जड़े थे। बिछावन ऐसा नर्म, बहुमूल्य और कामदार था कि विजय बहुत देर तक एकटक उसी की ओर देखता रह गया। इसी बीच उसकी निगाह सिरहाने की ओर कोनों में तरतीब से सजी दो रुपहली तिपाइयों से टकराई जिन पर सुनहली सुराहियाँ व बिल्लौरी प्याले सजे थे। पास ही, एक ऊँची चौकी पर, सोने का पानदान रक्खा हुआ था। उस पर कीमख़ाब का भीना जड़ाऊ आवरण पड़ा हुआ था।

"यहाँ के रंग-ढंग ने मुझे विचित्र स्थिति में डाल दिया है!" एक बहुमूल्य पिटारे को खोलकर दिखाते हुए नन्दा ने कहा। पिटारे में रक्खे सुसज्जित रत्न-जटित आभूषणों से विजय की आँखें चौंधिया गईं।

"और भी देखिए!" कहकर नन्दा विजयपाल को इस कमरे से सटे एक दूसरे कमरे में ले गई। वह स्नानागार था। संगमर्मर के हौज़ों में

*ग़ाफ़िल न बैठ! समय बेकार खोने के लिए नहीं है बल्कि कुछ हुनर सीखने या कार्य करने के लिए है।

भरे ठंडे और गर्म गुलाबजल से सारा स्थान सुवासित था। चारों दीवालों पर एक एक आदमक़द चीनी आईना लगा था। विजय के साथ अपना प्रतिबिम्ब उन दर्पणों में देखकर नन्दा कुछ शरमा-सी गई। उसने अपनी आँखें नीची कर लीं।

यहाँ से निकलकर दोनों खानाबाग़ में पहुँचे और हाथ में हाथ दिये हुए रौंसों पर टहल-टहलकर बातें करने लगे। किनारे किनारे संगमर्मर की चौकियों पर नाचते मोरों की ऐसी सुन्दर प्रस्तर मूर्त्तियाँ बिठाई गई थीं कि विजय को उनके सजीव होने का भ्रम होने लगा। एक मोर को हाथ से छूते हुए विजयपाल ने कहा—"कमाल है!"

नन्दा उत्तर में मुस्कराकर रह गई। इसी समय दोनों की आँखें उठीं तो देखा—उद्यान के दूसरे छोर पर खड़ी राजरानी अग्निमय नेत्रों से उन्हीं को घूर रही है।

"जापनाह सुनेंगे तो दोनों का सिर उडवा देंगे!" राजरानी ने कहा।

"जापनाह... सुनती हो नन्दा!" विजय ने सहसा आवेश में आकर कहा—"यह महल, यह साजो-सामान, किसी जापनाह का है! सचमुच, यह किसी ऐसे व्यक्ति का है जिसका सारे भोग-विलासों पर पूरा अधिकार है। मुझे पहले भी सन्देह हो रहा था। अब तो सभी कुछ प्रत्यक्ष हो गया है। मैं तुम्हें एक क्षण भी ऐसे स्थान पर देखना नहीं चाहता।"

"पर यदि मुझे बलपूर्वक यहाँ रक्खा जाय तो...!" राजरानी की ओर उपेक्षा की दृष्टि से देखते हुए नन्दा ने कहा।

"मेरे जीते जी तुम्हें बलपूर्वक रोककर कौन रख सकता है?" कहते

हुए विजयपाल ने कमर में झूलती अपनी तलवार की ओर देखा। उसकी भुजायें फड़क उठीं।

राजरानी वहाँ से चली गई।

"अपने प्रियजनों से मिलने की मधुर कल्पना अब मुझे छोड़ देनी चाहिए!" कुछ आगे बढ़कर निराशा के स्वर में नन्दा ने कहा।

"मैं सब समझता हूँ नन्दा! तुम्हारा मतलब यही है न कि हमें यह स्थान छोड़कर तुरन्त चलदेना चाहिए?"

यह कहते-कहते विजय का मुँह कुछ उतर गया। वह जैसे कुछ सोच-विचार में पड़ गया। यह नन्दा को अच्छा न लगा। आवेश में आकर उसने कहा—"अब भी कुछ सोचना-विचारना शेष है क्या?"

"नहीं-नहीं, सोचना-विचारना तो कुछ नहीं है। मैं वास्तव में यहाँ की स्थिति देखकर चिन्ता में पड़ गया हूँ।" खानाबाग़ के दूसरे सिरे से महलों की ओर जाती हुई राजरानी को देखते हुए विजय ने कहा।

"किस चिन्ता में?" उत्सुकता से नन्दा ने पूछा।

"तुम जिस व्यक्ति के संरक्षण में यहाँ हो, वह शक्तिशाली दिखाई दे रहा है। इधर मैं अकेला हूँ। ठीक से तुम्हारी रक्षा कर सकूँगा या नहीं, यही सोचने लगा था।"

"ठीक कहते हो। लेकिन यह भी उतना ही ठीक है कि इस शक्तिशाली संरक्षण को आँखों की ओट कर हमें यहाँ से चल देना है—फिर चाहे जो भी हो।" नन्दा ने दृढ़ स्वर में कहा।

विजय के नेत्रों में सहसा आनन्द की चमक आ गई। पर दूसरे ही क्षण वह फिर चिन्ता में पड़ गया। नन्दा यह भाव-परिवर्तन सावधानी से देख

रही थी। विजय को पुनः उत्तेजित करने के उद्देश्य से जैसे उसने कहा—"क्या मैं तुम्हारी पत्नी नहीं हूँ--क्या मेरी इज़्ज़त तुम्हारी इज़्ज़त नहीं है?"

"बेशक; पर तुम्हें रक्खूँगा कहाँ, यह सोच रहा हूँ।"

"मैं कुछ नहीं जानती। मैं कुछ नहीं कह सकती। मैं यहाँ किसी को नहीं जानती। मैं सारे संसार में किसी को नहीं जानती। मैं जानती हूँ केवल तुम्हें और अपने को। तुमने मेरी आँखें खोल दी हैं। तुम्हें छोड़-कर अब मैं किसी का विश्वास नहीं कर सकती।"

विजय और अधिक विचार में पड़ गया। छः महीने पहले यदि नन्दा के मुँह से ये शब्द निकले होते तो वह इनका मूल्य ठीक से चुका सकता। उसके विश्वास और प्रेम का प्रतिदान कर सकता। पर आज...?

"एक बार अच्छी तरह सोच-समझ लेने दो नन्दा। मान लो, अगर हम लोग ग़लती पर हुए और ये लोग वास्तव में तुम्हारे कुटुम्बी ही हुए तो...!"

"यह क्या कह रहे हो, प्यारे विजय! क्या तुम भूल रहे हो कि अविश्वास का बीज मेरे मन में तुम्हीं ने डाला है?"

"ठीक है। अच्छा तो चलो, अब चलें।" साहस संचय करते हुए विजय ने कहा।

"कहाँ चलेंगे?...पर नहीं, मुझे यह सब जानने की ज़रूरत नहीं। तुम जानते हो, यही काफ़ी है।" नन्दा ने दृढ़ता से कहा।

"सुनो नन्दा," अपने को रोकते हुए विजय ने कहा—"एक बार फिर सोच-समझ लो। जो विश्वास तुम आज दिखा रही हो, उसका अनुभव मैं पहले से कर रहा हूँ। तुम्हारा यह विश्वास मेरे लिए अमूल्य

निधि है। तुम जानती ही हो कि मैं एक ऐसा कार्य करने जा रहा हूँ जिसमें यदि सफलता मिली तो राजलक्ष्मी, सुख, वैभव, सभी मेरे चरण चूमेंगे। पर यदि मैं असफल हो गया, जिसकी सम्भावना भी कम नहीं है, तो जेलख़ाना, कालकोठरी, सूली, सभी जैसे मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं। अगले कुछ दिनों में ही सब कुछ स्पष्ट हो जायगा। अब तुम्हीं बताओ, यह सब जानते-समझते हुए भी क्या तुम मेरे साथ चलने को तैयार हो?"

"मैं तैयार हूँ। आप मुझे अपने साथ ले चलिए।"

"अच्छी बात है। मैं तुम्हें एक ऐसे व्यक्ति के संरक्षण में रख दूँगा जो तुम्हारे सम्मान की पूर्ण रूप से रक्षा करेगा और जो सचमुच तुम्हें अपनी पुत्री बनाकर रक्खेगा।"

"कौन है वह?" नन्दा ने मुस्कराते हुए कहा—"यह न समझना कि तुम्हारे इस कथन में मुझको सन्देह है। मैं केवल उत्सुकता के कारण पूछ रही हूँ।"

"एक राजर्षि हैं। उनकी मुझ पर बड़ी कृपा है। मैं उन्हीं का कार्य करने जा रहा हूँ।"

"तुम फिर वैसी ही रहस्य-भरी बातें करने लगे। न जाने क्यों, मुझे ऐसी बातें सुनकर डर लगता है।" नन्दा ने कहा।

"इस बार और माफ़ करो। वह दिन अब दूर नहीं है जब मेरा कोई भी रहस्य तुमसे छिपा न रहेगा।"

"तो क्या निश्चय रहा?"

"यही कि चलो!"

"अच्छा तो चलो।" कहकर नन्दा ने विजयपाल का हाथ पकड़ लिया और दोनों फाटक की ओर चले। सामने बरामदे में बैठी राजरानी द्रुतगति से एक पत्र लिख रही थी। नन्दा को इस तरह फाटक की ओर जाते देख वह पत्र को बीच में ही छोड़ उठ खड़ी हुई और क्रोध से काँपते स्वर में बोली—

"कहाँ जा रही है—बदतमीज़ लड़की !"

"जहाँ मैं निश्चिन्त होकर सुख से रह सकूँ !" विजयपाल के साथ आगे बढ़ते हुए नन्दा ने कहा।

"न जाने किस आवारे के साथ भागी जा रही है ?" क्रोध से उबलते हुए राजरानी ने कहा।

"आप भूल रही हैं," नन्दा ने दृढ़ स्वर में कहा—"मैं अपने पति के साथ जा रही हूँ।"

"नहीं, तू नहीं जा सकती। चाहे इसके लिए मुझे बल-प्रयोग क्यों न करना पड़े।" राजरानी ने धमकाते हुए कहा।

"जो आपके जी में आये !" नन्दा ने लापरवाही से उत्तर दिया और विजय से और भी सटकर खड़ी हो गई।

पास पड़ी घंटी को राजरानी ने उठाकर ज़ोर से बजाया। दो तातारी कलमाकनियाँ नङ्गी तलवारें लिये आ उपस्थित हुईं।

"इन्हें पकड़ लो !" राजरानी ने आज्ञा दी।

"ख़बरदार जो इधर क़दम बढ़ाया तो !" तलवार म्यान से बाहर करते हुए विजय ने कहा। कलमाकनियाँ वहीं रुक गईं। विजय की बाँह

में बाँह डाले नन्दा फाटक की ओर बढ़ी। फाटक पर पहुँच कर नन्दा ने वहाँ खड़ी तातारी उदाबेगनी को डाटकर कहा—"रास्ता छोड़......!"

उदाबेगनी को नन्दा की आज्ञा टालने का साहस न हुआ।

नन्दा को लेकर विजय गाड़ी पर बैठ गया। गाड़ी दोनों को लेकर चल दी।

——

इशराक़ की नमाज़ के बाद बैरम ख़ाँ ने दरबारी वस्त्र उतार दिये और वही कफ़नी पहन ली जो कल विजयपाल से भेंट करते समय पहने थे। इसके बाद वे चुपचाप मजलिस की ओर चले। ड्योढ़ी पर ही मुल्ला से भेंट हो गई। ख़ानख़ानाँ के लिबास की ओर संकेत करते हुए उसने व्यंग्य किया—"उस्ताद आख़िर उस्ताद ही होता है।"

"यह तुम्हारी लियाक़त का नमूना है!" ड्योढ़ी के भीतर पैर बढ़ाते हुए ख़ानख़ानाँ ने उत्तर दिया।

"रिश्ता तो तय हो गया न ?"

"कुछ कसर रह गई है। वह भी आज पूरी हो जायगी।"

"गाड़ी शायद क़रार दाद पर आकर अटकी है।"

"हाँ, लेने-देने को उसके पास ज़्यादा नहीं है।"

"मगर रिश्ता बराबरी का है। तय हो जाय तो अच्छा है।"

"आदमी निहायत शरीफ़ है, साथ ही दिलेर और ईमानदार भी।"

"मालूम होता है, तुर्कमानों की पुरानी बीमारी आपको भी लग रही है।"

"वह क्या ?"

"दोस्तों से मुँह छिपाना और दुश्मनों की तारीफ़ करना।"

"हीरा जहाँ रहता है, चमकता है। इसमें दोस्त-दुश्मन का सवाल नहीं।" अपनी जगह पर बैठते हुए ख़ानख़ानाँ ने कहा।

"मामला तय हो गया है शायद, इसी लिए यह तारीफ़ें हो रही हैं।"

"मामला तय हो जाता तो फिर झगड़ा ही क्या था?"

"अगर तय हो गया तो···?"

"तो न साज़िश रहेगी न साज़िश करनेवाले। फिर हम सब भी चैन से सो सकेंगे।"

"अपने साथियों के लिए वह कैसे ज़िम्मेदार हो सकता है?"

"यह सही है। पर समझौता जैसा एक के साथ हुआ, वैसा दस के साथ हुआ।"

"और अगर तय न हुआ?"

"इसका पूरा-पूरा अन्देशा है, क्योंकि वह इरादे का पक्का मालूम होता है। उस हालत में तुम्हें माझी बनना पड़ेगा।"

"तब मुझे अपने तरीक़े से काम करने की पूरी आज़ादी रहेगी न?"

"बेशक, पर शेख़ की इस सफ़ेद दाढ़ी का ख़याल करते हुए!" बैरम ख़ाँ ने मुस्कराते हुए कहा।

आपका इरादा क्या है! क्या उसे गिरफ़्तार न किया जाय?"

"अगर इसकी ज़रूरत आ पड़े तो करना ही पड़ेगा, पर ज़रा बचाकर।"

"क्या मतलब है?"

"यही, कि मेरी मौजूदगी में उससे इस तरह की छेड़-छाड़ न की जाय। बेहतर तो यह होगा कि तुम्हें जो कुछ करना हो, उसके डेरे पर करो।"

"वहाँ ठीक न रहेगा। इमाम और सरदार कुशलपाल की चर्चा अभी लोगों में ताज़ी है। एक नई वारदात और हो जायगी तो सब चौकन्ने हो जायँगे।"

"तब तुम जैसा मुनासिब समझो।"

"परेशान होने की बात नहीं। मैं जो कुछ करूँगा, ढंग से करूँगा।"

"पूरे घाघ हो तुम! ज़रा सुनूँ तो कि दिमाग़ में क्या शैतानी है?"

"तीसरे दरवाज़े के सामने गाड़ी लगी रहेगी। अगर मामला तय न हो तो उधर से जाने का इशारा कर दीजिए और वह हज़रत बजाय सराय फ़िरोज़ी के बादलगढ़ पहुँच जायँगे। किसी को कानोंकान ख़बर न होगी।"

"फ़रेब और मक्कारी तो तुम्हारे हिस्से में पड़ी है।"

"और उसके मीठे फल आपके हिस्से में।"

"अब दूसरी सूरत पर भी ग़ौर कर लीजिये। मान लीजिये कि वह आपके बहकाने में आ गया और अपना इरादा छोड़ बैठा!"

"तब सिर्फ़ उसके दोस्तों से निबटने का काम रह जायगा।"

"ज़्यादा मुश्किल न होगा, क्योंकि एक मुख़बिर मिल जायगा। सिर्फ़ थोड़ी-सी ज़ाब्ते की ज़रूरत होगी।" यह कह मुल्ला ने एक लिखित आज्ञापत्र हस्ताक्षरों के लिए सामने रख दिया।

"तुम उन सबको एक साथ हिरासत में ले लेना चाहते हो?"

"दूसरा उपाय नहीं है।"

"पूरब का पूरा इलाक़ा भड़क उठेगा। ग़दर हो जायगा। बड़ी ख़ून-ख़राबी होगी!"

"कोशिश यही की जायगी कि वह सब न हो, पर अगर हुआ ही

तो उसके लिए भी तैयारी कर ली है। ऊमस से आँधी अच्छी होती है।"

"उससे क्या होगा?"

"एक बार ही सब साफ़ हो जायगा। जो बचेंगे उन्हें साँस लेने को साफ़ हवा मिलेगी, रहने को साफ़ ज़मीन मिलेगी, साफ़ आसमान मिलेगा।"

"मामला ज़्यादा संगीन और ग़ौरतलब है। बंगाला, कड़ा, चुनार, जौनपुर, संभल सभी जगह तो दुश्मन मौजूद हैं। मौक़ा पाते ही लड़ाई छिड़ जायेगी।"

"इसके लिए दूसरी तरकीब सोच ली जायेगी। मेरा ख़याल है कि अगर क़न्नौज का इलाक़ा सर हो गया तो साज़िश की कमर टूट जायगी। फिर बंगाले और संभल के बीच ऐसी ज़बर्दस्त खाई पड़ जायगी कि उसे पार कर आपस में मिल जाना अफ़ग़ानों के लिए संभव न होगा।"

"हिरासत में लेने के लिए उन्हें किसी जुर्म का मुजरिम क़रार देना होगा।"

"जुर्म साफ़ है। वे सल्तनत के दुश्मन हैं और अल्लाह के जानशीन को गद्दी से महरूम करना चाहते हैं।"

"मामला अगर ख़ाली पठानों का होता तो तुम्हारा कहना सही था। लेकिन उनके दल में मुराद बेग जो शामिल है—जानते हो, मुसाहब बेग का लड़का मुराद बेग?"

"लेकिन अपने लड़के की पैरवी करने के लिए मुसाहब बेग क़यामत से पहले इस दुनिया में नहीं आ सकता।"

"पर दरबार में कुछ ऐसे मुर्दे भी हैं जो क़यामत से पहले जाग उठते हैं। याद है मुसाहब बेग के क़त्ल की दास्तान। तैमूरी सरदारों और अमीरों से लेकर जापनाह तक कुड़कुड़ा उठे थे कि बैरम ख़ाँ शिया है, इसलिए अमीर तैमूर के ख़ानदानवालों को चुन-चुनकर मार रहा है।"

"तरदी बेग भी तो अमीर तैमूर का नाती-पोता कुछ न कुछ लगता होगा?"

"उस वक्त मौक़ा दूसरा था। पानीपत सामने था और हेमूँ बक़्क़ाल सिर पर।"

"इसके माने यही हैं न कि दुश्मन हमारे दरवाज़े पर पहुँचकर जो चाहे—कर गुज़रे और हम टुकुर-टुकुर देखते रहें?"

"नहीं, पर हाथ-पैर बचाकर काम करना होगा। साँप मर जाय और लाठी भी न टूटे।"

मुल्ला सिर झुकाकर कुछ सोचने लगा। ख़ानख़ानाँ का अभिप्राय उसकी समझ में ठीक से न आया था।

कुछ देर तक दोनों चुपचाप एक-दूसरे की ओर देखते रहे। फिर ख़ानख़ानाँ ने कहा—"मान लो, उन्हें अगर गिरफ़्तार भी कर लिया तो रक्खेंगे कहाँ?"

"क़न्नौज में।"

"पठान धावा बोलकर उन्हें छुड़ा ले जायेंगे?"

"तो फिर आगरे में?"

"तैमूरी अमीर कान भरेंगे और जापनाह को ख़ुद जेलख़ाने तक

जाने और उसका दरवाज़ा ख़ुद अपने ही हाथों से खोलने की ज़हमत उठानी पड़ेगी।"

"तो फिर जहन्नुम में?"

"वहाँ अलबत्ता कोई नहीं पहुँचेगा। पर गिरफ़्तार करने के बाद और जहन्नुम के दरवाज़े तक पहुँचाने से पहले उन्हें कहाँ रक्खा जायगा?"

"ग्वालियर में।"

"हाँ, यह ठीक हो सकता है। अब यह फ़ैसला करना बाक़ी है कि उनका मुक़दमा कौन करेगा?"

"मुक़दमा कोई कर सकता है।"

"शेख़ लोग मुराद बेग को बचाने की कोशिश करेंगे, अफ़ग़ान लोग इम्दाद को और राजा लोग चम्पालाल को?"

"और आप शायद विजयपाल को?" मुल्ला ने व्यंग्य किया।

"हाँ, अगर मुमकिन हो सका, पर हर सूरत में नहीं।"

"एक ऐसा मीर अद्ल भी हो सकता है—जो इनमें से किसी पर भी रिआयत न करे। दूध का दूध और पानी का पानी कर दे।"

"कौन?"

"मेरा मतलब हाजी मोहम्मद सीस्तानी से है। मीर अद्ल का पद उसे हाल में ही आपने दिलाया है। आदमी निहायत मुंसिफ़ मिज़ाज और अक़्लमन्द है। अगर इन्साफ़ का तक़ाज़ा हो तो अपने लड़के को भी मौत की सज़ा देने में पीछे न हटेगा।"

"तुम्हारी इस सूझ-बूझ का मैं क़ायल हूँ। वह आज-कल जापनाह का उस्ताद और तूरानी अमीरों का नाक का बाल बना हुआ है। यह

ख़ून उसी के सिर पर डालना ठीक होगा। किसी को कुछ कहने का मौक़ा न मिलेगा।"

बैरम ख़ाँ ने सामने रखे हुए काग़ज़ पर हस्ताक्षर कर दिये। उसे मोड़कर जेब में रखते-रखते मुल्ला ने कहा—"अब आज्ञा दीजिए। तीसरे दरवाज़े का इंतज़ाम सँभालना है।" यह कह, सलाम करने के बाद, वह बाहर हो गया।

× × ×

नन्दा के साथ सराय फ़िरोज़ी के फाटक पर पहुँचते-पहुँचते विजयपाल ने देखा कि पहले दिनवाला मार्गप्रदर्शक गाड़ी लिए उसकी प्रतीक्षा कर रहा है। विजयपाल ने उससे पूछा—"मैं जिस गाड़ी पर आया हूँ, उसी पर चलूँ तो कुछ हानि होगी?"

वह नहीं चाहता था कि गाड़ी बदलने के लिए नन्दा को नीचे उतरना पड़े। पथप्रदर्शक ने स्वीकृति दे दी और वह जाकर कोचवान के बराबर बैठ गया। गाड़ी उसके बतलाये मार्ग से चलने लगी।

राह में नन्दा ने देखा, विजयपाल बहुत अधिक चिन्तित और घबड़ाया हुआ-सा है मानो नन्दा उसके कन्धों पर अनावश्यक भार बन रही हो। उसने विजयपाल का हाथ दबाते हुए कहा—"इतनी उदासी का क्या कारण है? तुम्हारी इस चुप्पी से मुझे बड़ा डर लगता है।"

"तुम्हारे ही हित की बात सोच रहा हूँ, नन्दा।" विजयपाल ने नन्दा के हृदय को निश्चिन्त करने के उद्देश्य से उत्तर दिया।

गाड़ी गली में मुड़ी और एक चौड़े फाटक के सामने जाकर रुक गई।

"वे राजर्षि यहीं रहते हैं।" महल की ओर संकेत करते हुए विजय-पाल ने कहा।

"कौन राजर्षि ?" नन्दा ने अज्ञात आशंका से सिहरते हुए पूछा।

"जिनके पास तुम्हें रखने को कह रहा था।"

नन्दा को ऐसा प्रतीत हुआ मानो उसके सारे शरीर में एक साथ हिमालय के शीत का प्रवेश हो गया है। भीतर से थरथराती हुई बोली—"क्या आप मुझे यहाँ पर अकेली छोड़ देंगे ?"

"कुछ देर प्रतीक्षा करो। राजर्षि से तुम्हारे सम्बन्ध में बातचीत करके मैं अभी आता हूँ।" कहकर विजयपाल गाड़ी से उतर पड़ा। नन्दा कुछ न कह सकी। उसने अपना हाथ गाड़ी से बाहर निकालकर विजय की ओर बढ़ा दिया। विजयपाल ने नन्दा के हाथ को अपने होंठों से लगा लिया। फिर जल्दी-जल्दी पैर बढ़ाता हुआ वह महल में चला गया।

निर्दिष्ट कमरे के द्वार पर पहुँचकर उसने दस्तक दी। भीतर से बनावटी शेख़ ने मृदुकंठ में कहा—"आइए।"

उस कंठस्वर को विजय पहचानता था। वह सीधा अन्दर चला गया और अभिवादन करके दाहिनी ओर बिछे आसन पर बैठ गया।

"आप ठीक समय पर आ गये।" स्वागत में मुस्कराते हुए बैरम ख़ाँ ने कहा।

जब तक काम पूरा न हो जाय, मेरे लिए एक-एक क्षण का मूल्य है। मैं पश्चात्ताप से डरता हूँ। आप समझ सकते हैं कि मेरे जैसे व्यक्ति को पश्चात्ताप कितना बुरा लग सकता है।

"ठीक !" प्रसन्न होते हुए बैरम ख़ाँ ने कहा—"अब शायद आपको अपनी भूल मालूम हो गई है और आपका इरादा बदल रहा है !"

"जी नहीं, ऐसी बात नहीं है।"

"तो फिर आप अपने पहले इरादे पर क़ायम हैं न ?" कुछ उदास होते हुए बैरम ख़ाँ ने प्रश्न किया।

"मैंने मन, वचन और कार्य की एकता का पाठ पढ़ा है। जो इरादा एक बार पक्का हो गया, वह पूरा होने पर ही बदला जा सकता है।"

"यानी बैरम ख़ाँ के क़त्ल का आपका इरादा अब भी है ?" अधिक स्पष्टता से समझने का प्रयत्न करते हुए ख़ानख़ानाँ ने पूछा।

"जी, मैं निवेदन कर चुका हूँ।" दृढ़ता से विजयपाल ने उत्तर दिया।

"मेरी सलाह यह है कि एक बार पूरे मामले पर तुम फिर ग़ौर कर लो। अच्छी तरह सोच-समझ लो। बुज़ुर्गों का क़ौल है कि गुनाह करने के लिए बीस गुनी हिम्मत चाहिए और सौ गुनी अक़्ल।"

"आप इसे गुनाह कहते हैं ?" आश्चर्य से बैरम ख़ाँ की ओर देखते हुए विजयपाल ने कहा।

"ख़ुदा की बनाई शक्ल को बिगाड़ना गुनाह नहीं तो फिर क्या है—एक ऐसी शक्ल को जो इन्सान की है—अशरफ़ुलमख़लूक़ात की है—सो भी बादशाह। तुम्हारे धर्म में भी राजहत्या को बड़ा पाप माना गया है।"

"पर दूसरे के धन व राज्य को छीन लेनेवाले को हमारे धर्म में

आततायी कहा गया है। बैरम ख़ाँ आततायी है। आततायी को मारना धर्म है।"

"अगर यह ठीक हो तो भी वह काम तुम्हीं को क्यों करना चाहिए? कोई दूसरा शख़्श वह काम ज़्यादा सहूलियत से कर सकता था।"

"इत्तफ़ाक़ से पाँसा मेरे रुख़ गिरा। भगवान् की इच्छा यही है कि मैं ही इस कार्य को करूँ।"

"तुम्हारा इरादा बेशक बहुत ऊँचा है। पर हमें यह भी ख़याल रखना होगा कि तुम वह रुम्मानी गुहर हो, जो जहाँ रहेगा, वहीं रोशनी देगा। ऐसी ख़ुशक़िस्मत और ख़ुशइख़लाक़ हस्तियाँ सदियों में एक दो ही होती हैं। मेरी समझ से तुम्हारा चुनाव मुनासिब नहीं हुआ है। अगर तुम्हारी राय हो तो मैं अपना सुझाव तुम्हारे साथियों के पास भेज दूँ। मुझे पूरी उम्मीद है कि वे लोग अगर ज़रा भी समझदार हुए तो मेरी इस सिफ़ारिश को ज़रूर मंज़ूर कर लेंगे। रही काम की बात, उसके लिए मेरे पास ऐसे दर्जनों आदमी हैं जो चुटकी बजाते उसे कीड़े-मकोड़े की तरह मसल देंगे और अगर ज़रूरत पड़ गई तो ख़ुशी-ख़ुशी सूली पर भी चढ़ जायँगे। उनके न रहने से किसी का कुछ नुक़सान न होगा। पर तुम्हारी जैसी अहम हस्ती की क़ुरबानी मेरा दिल गवारा नहीं करता। इस वक़्त यहाँ पर सिर्फ़ हमी दो हैं, तीसरा कोई नहीं है। मैं अपनी दिली बात कह रहा हूँ।

"आप मेरे शुभचिन्तक हैं, मेरे धर्म पिता हैं।" बैरम ख़ाँ के चरणों की ओर हाथ बढ़ाते हुए विजयपाल ने कहा—"मेरी प्रार्थना आपके चरणों में यही है कि आप मुझे कर्त्तव्य से हटाने का प्रयत्न न करें।

मैं विश्वासघात नहीं कर सकता। मैं अपने साथियों के सामने लज्जित होना नहीं चाहता।"

"अच्छा तो जाने दो।" गहरी साँस लेते हुए बैरम ख़ाँ ने कहा—"अब यह बताओ कि तुम अपना काम किस तरह करोगे?"

"मैं पहले उसके समीप पहुँचने की कोशिश करूँगा। जब पास पहुँच जाऊँगा तब एक बार उसके मुँह की ओर ध्यान से देखूँगा जिससे उसकी आकृति जीवन भर के लिए मेरे हृदय-पटल पर अंकित हो जाय। उसके बाद......।" अपने वाक्य को पूरा करने के लिए विजय ने सोने की मूठवाला अपना छुरा बैरम ख़ाँ के सामने कर दिया। उसका फ़ौलादी फलक कमरे के अर्द्ध प्रकाश में बिजली जैसी कौंध पैदा कर रहा था।

"ठीक है!" कुछ सिहरते हुए बैरम ख़ाँ ने कहा।

विजयपाल चुप रहा।

"तुम्हारा तरीक़ा मुझे पसन्द है। मगर एक बात फिर भी पूछने को बाक़ी है। मान लो कि तुम मौक़े पर गिरफ़्तार हो गये और तुमसे पूछ-ताँछ हुई?"

"श्रीमान् को यह बताने की शायद आवश्यकता न होगी कि मेरे जैसे मनुष्य ऐसे अवसर पर क्या करते हैं। वे मर जाते हैं, पर भेद की बात ज़बान पर नहीं लाते।"

विजयपाल का यह उत्तर सुनकर बैरम ख़ाँ के मुँह पर प्रसन्नता के भाव झलकने लगे जो विजयपाल से छिपे न रह सके।

"तब मैं मान लूँ कि तुम अपने इरादे पर क़ायम हो?"

विजयपाल ने सिर झुका दिया।

"ठीक है। तुम अपने इरादे पर चट्टान की तरह क़ायम हो।"

"हाँ, अब आपकी आज्ञा की प्रतीक्षा है।"

"मेरी आज्ञा की?"

"मैं अपना तन-मन आपको अर्पण कर चुका हूँ।"

बैरम ख़ाँ उठकर खड़े हो गये और एक गलियारे की ओर संकेत करते हुए बोले—"उस रास्ते से जाने पर तुम्हें एक दरवाज़ा मिलेगा। वहीं मेरी गाड़ी खड़ी है। मेरा आदमी उसी में बैठा मिलेगा। वह तुम्हें बैरम ख़ाँ के महलों में पहुँचा देगा और उससे तुम्हारी भेंट का भी प्रबन्ध कर देगा।"

"बस, इतना ही मैं आप से......।" विजय ने कुछ ठिठकते हुए कहा।

"कहो-कहो, जो कुछ भी कहना चाहते हो?" विजय की हिचकिचाहट को लक्ष्य करते हुए बैरम ख़ाँ ने कहा।

"पीरो मुरशिद, मेरी दुबिधा से आपको आश्चर्य न होना चाहिए। मुझे जिस चीज़ की आवश्यकता है, वह मेरे पास मौजूद है। उसके सिवाय मुझे और कुछ नहीं चाहिए। पर शरीर के साथ-साथ मैं अपनी आत्मा का बलिदान नहीं कर सकता। आप मेरे पूज्य हैं; पिता हैं; गुरु हैं। आपसे कहते मुझे शर्म लगती है, पर मौक़ा ही ऐसा आ गया है। मैं संसार में केवल दो वस्तुओं को प्रेम करता हूँ। ऊपर परमेश्वर को और पृथ्वी पर एक लड़की को। आपको सुनकर दुःख ही होगा कि हमारा प्रेम ऐसे बुरे क्षण में जुड़ा, जब मेरे गले में मौत का फन्दा पड़ चुका था। उसे छोड़ना मेरे लिए अग्नि-परीक्षा हो रहा है। मेरे मरने के बाद उसका

क्या होगा, यह चिन्ता मेरे हाथ-पैरों को ढीला कर रही है। अपने जीवन की वह पवित्र धरोहर मैं आपके हाथों में सौंप जाना चाहता हूँ। आपके पास साधन हैं, शक्ति है। आपने मुझे पिता का स्नेह प्रदान किया है। आपसे उसी पैतृक स्नेह की भीख मैं उस लड़की के लिए माँग रहा हूँ।"

"मैं वचन देता हूँ।" भावावेश में बैरम ख़ाँ के मुँह से निकल गया।

"मैं आपका जन्म-जन्म ऋणी रहूँगा। मैं मौत से लड़ने जा रहा हूँ। नहीं जानता कि जीत किसकी होगी। जीवन में मैं उसे कुछ सुख न दे सका। पर विवशता है। अपने पीछे मैं उसके लिए तीन वस्तुएँ छोड़े जा रहा हूँ—आपका स्नेह, अपना नाम और अपने बाप-दादों की शेष सम्पत्ति।"

"वह उसे मिलेगी।"

"यही चाहता हूँ। कौन जानता है, मैं गिरफ़्तार ही हो जाऊँ—शायद आज शाम ही तक—शायद इस घर से बाहर होते ही।"

इस बात ने बैरम ख़ाँ को चौंका दिया।

"मैं चाहता हूँ कि आप अपने प्रभाव से ऐसा प्रबन्ध करा दें कि गिरफ़्तारी के बाद और मौत की सज़ा से पहले हम दोनों विवाह के पवित्र सम्बन्ध में बँध सकें। ऐसा होने पर लोक-परलोक में उसे मेरी विधवा होने का अधिकार प्राप्त हो जायगा। साथ ही मुझे यह भी विश्वास दिला दीजिए कि मुग़लों के नियम के अनुसार मेरी सम्पत्ति ज़ब्त करके शाही ख़ज़ाने में नहीं पहुँचा दी जायगी और आप उसे नन्दा के लिए सुरक्षित करा देंगे?"

"नन्दा के लिए?" आश्चर्य से बैरम ख़ाँ ने पूछा।

"हाँ, यही उस लड़की का नाम है।"

"रसूल-पाक के नाम पर मैं क़सम खाकर कहता हूँ कि जैसा तुम चाहते हो, वैसा ही होगा।"

"एक प्रार्थना और है ?"

"कहो-कहो !"

"नन्दा मेरे इस कार्य के विषय में कुछ भी नहीं जानती। वह यह भी नहीं जानती कि मैं सीकरी क्यों आया हूँ। उसे कुछ बताने का मुझे साहस ही नहीं हुआ। आप उसे यह सब बातें बता दें जिससे आनेवाले संकट के लिए वह तैयार हो सके। मुझे आज्ञा दीजिए। अब मैं नन्दा से मिलना भी नहीं चाहता। संभव है, उसे देख लेने पर मेरे हाथ काँपने लगें और मैं अपना काम ठीक से न कर सकूँ।"

"दिलेर शाहज़ादे, मैं अपनी बात दोहराना पसन्द नहीं करता। फिर भी तुम्हारे इतमीनान के लिए कह रहा हूँ कि वह लड़की मेरे दिल में अपने लिए पिता की उन्सियत पायेगी। मेरे दिल में तुम्हारे लिए जितनी कुछ उन्सियत है, उस पर आज से अकेली उसका हक़ होगा। वह मेरी आँख की पुतली और अपने दिलेर पति की यादगार बनकर रहेगी।"

"आज्ञा दीजिए।" पैर छूते हुए विजय ने कहा।

"ख़ुदा हाफ़िज़।"

"आपका आशीर्वाद मिल गया। अब मैं निर्भय हूँ।" सीधे खड़े होकर विजय ने कहा।

"कहाँ है वह लड़की ?" बैरम ख़ाँ ने पूछा।

"नीचे गाड़ी में। मुझे आज्ञा दीजिए! केवल यह और बता दीजिए कि आप उसे कहाँ रक्खेंगे।"

"उस महल में।" सामने के एक सुन्दर महल की ओर संकेत करते हुए बैरम ख़ाँ ने कहा—"वह ख़ाली है। मेरे और नौकर-चाकरों के सिवा वहाँ और कोई नहीं जा सकता।"

"अच्छा तो अब चलता हूँ। कृपया इसका ध्यान रखिए कि वह लड़की अत्यन्त भोली-भाली है। उसे अभी संसार की हवा तक नहीं लगी है।"

"तो क्या मैं उससे कह दूँ कि तुम एक बहुत बड़े आदमी की जान लेने जा रहे हो?" स्वर को साधकर बैरम ख़ाँ ने अन्तिम तीर छोड़ा।

"आपको अधिकार है। पर साथ में यह भी कह दीजिए कि मैं आततायियों के हाथ से देश को बचाने के लिए ही ऐसा कर रहा हूँ।"

विजयपाल बैरम ख़ाँ के बताये मार्ग से बाहर चला गया।

———

एक रास्ते से विजयपाल मजलिस से बाहर हुआ और दूसरे रास्ते से मुल्ला भीतर पहुँचा। बैरम ख़ाँ अब भी अपने आसन पर बैठे थे। विजयपाल की शिष्टतापूर्ण दृढ़ता से वे अभी तक प्रभावित थे। पहुँचते ही मुल्ला ने कहा—"इस तरह की जाती है बादशाहत !"

"क्या मतलब है तुम्हारा ?" उसकी ओर आश्चर्य से देखते हुए बैरम ख़ाँ ने कहा।

"यही कि अब आप बादशाहत के रग व रेशे को अच्छी तरह जान गये हैं।"

"मैं समझा नहीं।" अनजान भाव से मुल्ला की ओर देखते हुए बैरम ख़ाँ ने कहा।

"शेख़ ने कहा है कि बादशाह वह है जो हर चीज़ को उसकी मुनासिब जगह पर रखना जानता है।"

"तुम्हारा इशारा किस तरफ़ है ?" कुछ उद्विग्नता प्रकट करते हुए बैरम ख़ाँ ने पूछा।

"किसी ख़ास चीज़ की तरफ़ नहीं। मैं सिर्फ़ यह कहना चाहता हूँ कि बक़ौल शेख़ के एक बादशाह में जो गुण होने चाहिए, वे सब आप

में मौजूद हैं।" होंठों पर उभरती हुई व्यंग्यपूर्ण मुस्कराहट को छिपाने का प्रयत्न करते हुए मुल्ला ने कहा।

बैरम ख़ाँ कुछ न समझ सके। वे जिज्ञासापूर्ण दृष्टि से मुल्ला की ओर देखते रहे। मुल्ला की इस प्रकार की व्यंग्योक्तियों में कोई रहस्य छिपा हुआ रहता है, यह वे जानते थे। पर उस रहस्य को समझ सकना उनके लिए आसान न था।

कुछ देर रुककर मुल्ला ने फिर कहा—"आप मिसाल चाहते होंगे शायद। मिसालों की कमी नहीं। यही आज का मामला ले लीजिए। विजयपाल आख़िर क्या चाहता था? यही न कि जो चीज़ उसकी समझ से मुनासिब जगह पर नहीं है, उसे हटा दिया जाय और उसकी जगह मुनासिब चीज़ को रख दिया जाय।"

"हर एक आदमी यही चाहता है!"

"बेशक-बेशक, पर चाहने पर भी हर एक आदमी ऐसा कर नहीं सकता। ऐसा करने की अक्ल ख़ुदा ने बादशाह को ही दी है। इसी लिए तो शेख़ ने कहा है......।"

"हाँ तो बादशाह ने क्या किया?" मुल्ला को असल बात पर लाने के अभिप्राय से बैरम ख़ाँ ने कहा।

"बादशाह ने क्या किया! यही कि बादशाह ने मुनासिब चीज़ को मुनासिब जगह पर रख दिया। यही उसका काम है। तभी तो उसे ख़ुदा-बन्द कहा जाता है।"

"मगर उसमें तुम्हारी समझ का भी तो हाथ है!"

"मेरी समझ!...पर वह तो महज़ एक हीला थी। शेख़ ने कहा है कि

ख़ुदावन्द को हर काम के लिए एक न एक हीला चाहिए, जिससे उस पर कोई तोहमत न आ सके! इस बार बदक़िस्मती से मैं मौजूद था। मैं न होता तो कोई दूसरा होता। तोहमत लेने के लिए तो कोई न कोई होना चाहिए ही।"

"मैं जो कुछ करता हूँ, तुम्हारी राय लेकर!" बैरम ख़ाँ ने मुल्ला के कथन में संशोधन करते हुए कहा।

"बेशक-बेशक, पर इसके मानी यह हर्गिज़ नहीं हैं कि ख़ुदावन्द के सारे काम मेरी राय से ही होते हैं। ऐसा होना ज़रूरी भी नहीं है। बहुत से काम ऐसे होते हैं जिन्हें समझने में मुझे काफ़ी परेशानी उठानी पड़ती है, पर जो बज़ाहिर ख़ुदावन्द के 'वाहदहू ला शरीक़' होने की तसदीक़ करते हैं।"

"मुझे किसी ऐसे काम का इल्म नहीं है जो तुम्हारी सलाह के बिना किया गया हो।"

"बेशक-बेशक, मैं भी यह मानता हूँ। इस ख़ाकसार को ऐसा रुतबा देने के लिए मैं आपका मशकूर हूँ। फिर भी हाँ, कुछ छोटे-छोटे काम ऐसे ज़रूर हैं जो ख़ुदावन्द की ख़ुदाई का इज़हार करते हैं।"

"कोई मिसाल?"

"मिसाल देनी होगी!...ख़ैर, कोशिश करने पर मिसाल भी मिल जायेगी। मेरी निगाह ज़्यादा अच्छी नहीं है, इसलिए पाँव के नीचे की ज़मीन को देख-देखकर क़दम रखता हूँ। जन्नताबाद की तीसरी गली का बारहवाँ मकान जहाँपनाह ने ज़रूर देखा होगा। वही जो मसजिद के पड़ोस में है और जिस पर लोहे का फाटक चढ़ा है?"

"नही, मैंने नहीं देखा। हाँ तो क्या बात है उस मकान में!" आश्चर्य का भाव प्रकट करते हुए बैरम ख़ाँ ने कहा।

"नहीं देखा तो कोई हर्ज़ नहीं। वकीले मुतलक़ का काम गलियों के मकान गिनना नहीं है। यह काम मेरा है। पाँव तले से कितनी चिउँटियाँ रेंगती निकल गईं, इस तक की कैफ़ियत भी मुझे देनी पड़ती है।"

"हाँ तो कैसा है वह मकान?"

'बहुत ख़ूबसूरत है—निहायत महफ़ूज, मोटी-मोटी दीवारें, लोहे का फाटक, अन्दर से निहायत आरामदेह, ईरानी क़ालीन, अस्पहानी पलँग, कारचोबी के परदे—ख़ासा हरम समझिए—हम्माम, खाना बाग़, शीराज़ी और इस्तम्बोली के झरने—गुलिस्ताँ-बोस्ताँ—शाहज़ादों के क़ाबिल!"

"पूरे शैतान हो......क्यों गये थे उधर?"

"क्यों गया था...अर्ज़ कर चुका हूँ कि मेरे ज़िम्मे काम ही ऐसा सौंपा गया है। सबेरे उठकर मुझे सबसे पहले यह पता लगाना होता है कि किस तुर्कमान अमीर की दाढ़ी के कितने बाल पक गये हैं और कितने अभी पकने को बाक़ी हैं।"

बैरम ख़ाँ चुपचाप एकटक मुल्ला की ओर देखते रहे। वे जानते थे कि मुल्ला की इस लम्बी-चौड़ी भूमिका के पीछे कोई नई शरारत अवश्य है।

बैरम ख़ाँ को इस तरह अपनी ओर देखते हुए देखकर मुल्ला ने कहा—"हाँ तो उधर जाने की एक ख़ास वजह थी। एक रोज़ जहाँपनाह ने हुक्म दिया था कि सैदे हयात अब्दुर्रहीम के मकतब के लिए सीकरी में कोई मुनासिब मकान तलाश किया जाय। वह मकान मेरी निगाह में

ठीक जँचा था। मसजिद का पड़ोस, रात-दिन नमाज़ और नजात की अज़ाँ। मैं दरख़्वास्त करनेवाला था कि किसी शाही मुल्ला के नाम उस मकान में डेरा जमाने के लिए फ़ौरन रोबकार जारी कर दिया जाय!"

"अब क्या हो गया?"

"हुआ कुछ नहीं, अब मेरी समझ में आ गया है कि मैं ग़लती पर था। बादशाह ने एक दूसरी ही मुनासिब चीज़ को उस मुनासिब जगह पर रख दिया है।"

"अरे साँप की तरह लहरें लेते हुए बातें करते हो!"

"तालीमो तरबियत का मतलब हल भी हो जायगा। साहबज़ादी की तालीमो तरबियत वहाँ अच्छी तरह हो जायगी। बहरहाल, मकान की बाबत मेरा ख़याल ठीक ही निकला।"

"अच्छा-अच्छा, समझ लिया! और जो कहना बाक़ी हो, उसे भी जल्द कह डालो। एक दूसरा आदमी मुलाक़ात के लिए बाहर इन्तज़ार कर रहा है!"

"मैं हुज़ूर का ज़्यादा वक़्त ख़राब न करूँगा। पर गुस्ताख़ी माफ़ हो, एक अर्ज़ ज़रूर करूँगा, वकीले मुतलक़ बाहरी आदमियों से क्या इस जगह और इस लिबास में मुलाक़ात करेंगे?"

"कोई हर्ज़ नहीं। मौक़े का तक़ाज़ा यही है।"

"जो इरशाद; इसी लिए तो कहता हूँ कि अब बादशाहत मुकम्मिल है।"

"तुम अपनी बात जल्द पूरी कर डालो।"

"जो हुक्म; मैं सिर्फ़ यह कहना चाहता था कि ख़ुदाबन्द का चुनाव

निहायत दुरुस्त था। जंगली कली को खिलाने के लिए ऐसी जगह रखना ही मुनासिब है जहाँ बाहर की हवा तक न लग सके।"

बैरम ख़ाँ ने तीखी दृष्टि से मुल्ला की ओर देखा। मुल्ला की इस बात से वे कुछ क्षुब्ध-से हो उठे थे।

मुल्ला उनके मनोभाव को ताड़ गया। उसने तुरन्त बात बदलते हुए कहा—"हाँ तो वह लड़की उस महल में निहायत अमनो-अमान से थी!"

"थी क्यों?.........क्या मतलब है तुम्हारा?"

सहसा चौंककर बैरम ख़ाँ ने पूछा।

"वही तो अर्ज़ कर रहा हूँ। शाहज़ादों और शाहज़ादियों को अल्लाह-ताला ने जहाँ हज़ारों नियामतें अता फ़र्माई हैं, वहाँ एक 'मतलून मिज़ाजी' भी अता की है।"

"क्या उसे वह मकान पसन्द नहीं है?"

"नहीं था, यह कहना ज़्यादा मौज़ूँ होगा!"

"यानी अब वह वहाँ नहीं है?"

"जी हाँ, और अब मेरी समझ में यह भी आ गया है कि शाहज़ादे का दिल भी शायद वहाँ न लगता।"

"कहाँ गई वह?"

"किसी मुनासिब जगह पर ही गई होगी। शाही ख़ानदान के लोग ग़ैर मुनासिब जगह पर नहीं जा सकते।"

"पर वह चली कैसे गई?"

"कैसे चली गई—शाहज़ादियाँ जैसे चली जाती हैं—दिन-दहाड़े, सबके सामने, सदर फाटक से!"

"और बेगम मुअज़्ज़िमा ?"

"वे बैठी ख़त लिख रही थीं।"

"उन्होंने उसे रोका नहीं ?"

"ज़रूर रोका होगा।"

"तब...?"

"वे अपनी भवों में शायद उतना बल नहीं दे सकीं जितना कि उस लड़की को रोकने के लिए ज़रूरी था।"

"नौकरों से फाटक बन्द करवा सकती थीं।"

"फाटक तो बन्द रहे होंगे। वे सिर्फ़ जाने के लिए ही खुले होंगे ?"

"बेगम मुअज़्ज़िमा के हुक्म के बग़ैर फाटक किसने खोल दिये ?"

"खोले तो बाँदियों ने ही होंगे, हुक्म चाहे किसी ने दिया हो।"

"बाँदियों ने किसी दूसरे के हुक्म की तामील कैसे की ?"

"हुक्म के पीछे तलवार का ज़ोर ज़रूर रहा होगा।"

"तलवार !......तलवार कहाँ से आ गई !"

"उसके पास तो बेशक नहीं थी। वह किसी और के पास रही होगी।"

"दूसरे के पास !......यानी कोई और भी उसके साथ था ?"

"ज़रूर रहा होगा। शाहज़ादियाँ महल से बाहर अकेली क़दम नहीं निकालतीं।"

"कौन था वह !......कोई मर्द ?"

"मर्द ही रहा होगा; नहीं तो इतनी हिम्मत और किसमें हो सकती है !"

"अच्छा तो वह गई कहाँ ?"

"किसी मुनासिब जगह पर ही गई होगी।"

"मज़ाक़ का मौक़ा नहीं है। तुम नहीं जानते कि उसका यहाँ रहना कितना ज़रूरी है।"

"पहले मैं नहीं जानता था, पर अब समझ में आ रहा है कि 'फ़िर्दौस मकानी'* और 'जन्नत आशियानी'† के तख़्त की मज़बूती के लिए एक पन्द्रह-सोलह साल की लड़की का उसके पाये से बाँध रखना बहुत ज़रूरी है।"

"मैं चाहता हूँ कि वह जहाँ कहीं भी हो, फ़ौरन गिरफ़्तार कर ली जाय!" वातावरण को गम्भीर बनाने का प्रयत्न करते हुए बैरम ख़ाँ ने कहा।

"बजा इरशाद, मैं सारे शहर में अभी मुनादी कराये देता हूँ कि एक ख़ूबसूरत नौजवान लड़की किसी जवान के साथ जहाँ कहीं·········।"

मुल्ला की इस चोट से बैरम ख़ाँ बुरी तरह तिलमिला गये। वे बिगड़कर कुछ उत्तर देनेवाले ही थे कि मजलिस के द्वार पर हलकी-सी थाप पड़ी। अपने आसन से ही उन्होंने कहा—"कौन है?"

"नीचे गाड़ी में बैठी लड़की जानना चाहती है कि उसका साथी कितनी देर और लगायेगा!"

विजयपाल के शब्द तुरन्त बैरम ख़ाँ को याद आ गये। सचेत होकर वे द्वार खोलने के लिए बढ़े। पर मुल्ला सामने आ गया और नम्रतापूर्वक बोला—

"ग़ुलाम की मौजूदगी में तकलीफ़ करने की ज़रूरत नहीं है।"

"मैं ख़ुद उसका इस्तक़बाल करना चाहता हूँ।"

---

* स्वर्गीय बाबर † स्वर्गीय हुमायूँ

"यह वकीले मुतलक़ के तर्ज़े अमल के ख़िलाफ़ होगा।"

"मैं वचन दे चुका हूँ। उसके प्रेमी को मैंने आफ़त में डाला है तो उसे धीरज देने का काम भी मुझे करना होगा। यह इन्सानियत का तक़ाज़ा है।"

"मैं समझता हूँ।" शरारत-भरी दृष्टि से बैरम ख़ाँ की ओर देखते हुए मुल्ला ने कहा।

"ज़बान बन्द करो और चुपचाप अपनी जगह पर खड़े रहो।" आँखें टेढ़ी करते हुए बैरम ख़ाँ ने कहा।

उनके इस प्रकार के रुख़ से मुल्ला सहम गया। और अपनी जगह पर खड़े-खड़े ही बोला—"मैं उससे सिर्फ़ दो बातें करने की इजाज़त चाहता हूँ।"

"एक हर्फ़ नहीं। उससे मैं ख़ुद बातचीत करूँगा।"

मुल्ला और कुछ कहना चाहता था पर ख़ानख़ानाँ का रुख़ अचानक बिगड़ते देख उसे हिम्मत न हुई। दीवार से पीठ लगाकर वह चुपचाप खड़ा हो गया। बैरम ख़ाँ ने जाकर द्वार खोल दिया।

अपनी जड़ाऊ और भड़कीली पोशाक से मजलिस के स्तब्ध वातावरण को स्पन्दित-सी करती हुई एक षोडशी भीतर आई। अपनी कजरारी आँखों को उठाकर एक बार उसने कमरे में चारों ओर देखा। फिर हाथ जोड़कर बैरम ख़ाँ से बोली—"धृष्टता की क्षमा चाहती हूँ, पिता जी! आप ही शायद वे राजर्षि हैं, जिनके सम्बन्ध में मुझसे कहा गया था।"

कण्ठस्वर सुनकर बैरम ख़ाँ भौचक्के रह गये। बेगम मुअज्ज़िमा के महल में उस रात को सुना हुआ कण्ठस्वर उन्हें भूला नहीं था। आँखें

उठाकर एक बार उन्होंने नन्दिनी को ऊपर से नीचे तक अच्छी तरह देखा। फिर बोले—"किसे चाहती है, बेटी!"

इस बार नन्दा की चौंकने की बारी थी। उसके चाचा का कण्ठस्वर भी तो ठीक ऐसा ही था।

"माफ़ी चाहती हूँ, पिता जी! मैं अपने साथी को खोजने आई थी। वे शीघ्र लौट जाने का वचन देकर यहाँ आये थे। पर यहाँ उन्हें असाधारण रूप से विलंब हो गया। मुझे भय लगा कि कहीं कोई दुर्घटना न हो गई हो!"

तेरा मतलब सरदार विजयपाल जी से तो नहीं है! वे मुझसे मिलकर अभी-अभी यहाँ से गये हैं!"

बैरम ख़ाँ के कण्ठस्वर ने इस बार नन्दा को अत्यधिक आश्चर्य में डाल दिया। कुछ पीछे हटती हुई वह बोली—"आश्चर्य की बात है।"

"क्या?"

"आपकी बोली ठीक मेरे चाचा जी जैसी है।" नन्दा के चेहरे पर शिशु-सुलभ भोलापन खेलने लगा।

"कौन हैं तेरे चाचा जी; कहाँ रहते हैं वे?"

बैरम ख़ाँ ने भी उसे भोलेपन के साथ पूछा।

"उनका घर मैं नहीं जानती। वे बहुत बड़े आदमी हैं। जापनाह, आलीजाह। मैंने उनसे सिर्फ़ एक बार बातचीत की है!"

"अच्छा, उनकी शक्ल-सूरत क्या मेरी जैसी ही है?"

"मैंने उनका मुँह तो देखा नहीं। पर उनकी आवाज़ पहचानती हूँ।"

"मासूम बच्ची।" बैरम ख़ाँ के मुँह से निकला।

मुल्ला ने कनखियों से उनकी ओर देखा।

"तेरा साथी यहाँ क्यों आया था ?" बैरम ख़ाँ ने पूछा।

"वे मुझे एक राजर्षि के—शायद आपके ही—पास छोड़ने के लिए लाये थे। कह रहे थे कि आपके पास रहने से मेरी मुसीबत टल जायगी।"

"तुझ पर क्या मुसीबत है ?" भूमि की ओर आँखें गड़ाये बैरम ख़ाँ ने पूछा।

नन्दा ने आँखें उठाकर कमरे में चारों ओर देखा। मुल्ला उसी की ओर टकटकी लगाये था। वह सहसा सकुच गई मानो अपने वस्त्रों में ही छिप जाना चाहती हो। फिर लड़खड़ाती आवाज़ में बोली—"हमारे शास्त्रों में लिखा है कि ऋषियों और राजाओं से पर्दा नहीं करना चाहिए क्योंकि वे पिता के तुल्य होते हैं।"

"तू मेरी बेटी है।" बैरम ख़ाँ ने आश्वासन के स्वर में कहा। इन शब्दों में कुछ अद्भुत जादू था। नन्दा के हृदय का भय बहुत कुछ दूर हो गया। पर मुल्ला की उपस्थिति अब भी उसके संकोच का कारण बन रही थी। अपने पैरों में आँखें जमाये वह अँगूठे से फ़र्श कुरेदने का प्रयास करने लगी।

उसके मन की द्विविधा को ताड़ते हुए ही जैसे मुल्ला ने प्रार्थना की—"जहाँपनाह को शायद अब मेरी ज़रूरत नहीं है। मैं इजाज़त चाहता हूँ।"

"जहाँपनाह !" नन्दा ने मन ही मन दोहराया और साहस करके एक बार बैरम ख़ाँ के मुँह की ओर देखा।

मुल्ला कमरे से बाहर हो गया था।

"आसन पर बैठ जा बेटी! तुझसे बहुत-सी बातें करनी हैं।" आसन की ओर संकेत करते हुए खानखानाँ ने कहा।

"कृपा कर पहले यह बता दीजिए कि मेरे साथी कहाँ हैं और वे सुरक्षित हैं या नहीं?" निर्दिष्ट आसन पर बैठते हुए नन्दा ने दोनों हाथ जोडकर कहा। उसकी आँखें भर आई थीं।

"मैं सब बतला रहा हूँ। पर उससे पहले तुझसे दो-एक बात कर लेना ज़रूरी है। वे तुझे मेरी हिफ़ाज़त में छोड़ गये हैं, इसलिए अव्वल मैं यह जान लेना चाहता हूँ कि तुझ पर क्या मुसीबत है?"

"यों खास मुसीबत तो कोई नहीं है, पर पिछले कुछ दिनों से कुछ ऐसी बातें हुई हैं जिनके कारण मैं बहुत डर गई हूँ।" नन्दा ने नारी-सुलभ शैली से उत्तर दिया।

"क्या वे बातें मैं सुन सकता हूँ?"

"यदि वे यहाँ होते......! उन्होंने मुझे यह नहीं बताया कि मुझे किसका विश्वास करना चाहिए, और किसका नहीं।" नन्दा ने फिर उसी शैली में उत्तर दिया।

"मैं समझ गया। विजयपाल जी की इजाज़त पाकर ही तू किसी को कुछ बतला सकती है। पर अगर मैं तुझे वह सारे वाक़यात सुना दूँ जो तुम दोनों पर गुज़रे हैं तो शायद तुझे इतमीनान हो जाय कि तुम लोगों की कोई बात मुझसे छिपी नहीं है।"

नन्दिनी ने कुछ उत्तर नहीं दिया। वह सिर झुकाये चुपचाप बैठी रही।

"अच्छा सुन! तेरा नाम नन्दिनी है। कात्यायनी माई के थान में तू

पाली-पोसी गई है। एक दिन तेरे नज़दीक़ी रिश्तेदारों ने एक ख़त भेजकर तुझे आगरे बुला लिया। थान से शचीदेवी आकर तुझे आगरे के सलीमशाह के महल में छोड़ गईं। जहाँ तू कुछ दिन तक एक शरीफ़ औरत की देख-रेख में रही। वहीं तुझसे तेरे चाचा ने रात में भेंट की। उसके बाद की रात को वहीं तेरी भेंट एक और शख़्स से भी हुई जो क़न्नौज के पास का ही रहनेवाला है।"

"वे माता शचीदेवी के परिचित हैं।" बात को बीच ही में काटकर नन्दा ने कहा।

"आगरे से तुझे सीकरी बुला भेजा गया। उसी औरत की देख-रेख में तू यहाँ भी एक मकान में रक्खी गई, जो मसजिद के पड़ोस में है, जहाँ तेरे ऊपर कड़ा पहरा था। वह पहरा तुझे बर्दाश्त न हुआ।"

"नहीं, मैं पहरे के कारण उस मकान से नहीं निकली। पहरे में रहने की आदत तो मुझे बचपन से है। बात यह थी कि वह मकान कुछ ऐसे ढंग का था कि उसे देखकर मेरे मन में बुरी-बुरी भावनायें पैदा होती थीं। जिनका ज़िक्र आपने अभी किया था, और जो मुझे वहाँ से निकालकर आपके पास यहाँ ले आये हैं, वे भी वहाँ का रंग-ढंग देखकर सन्देह कर रहे थे। उस मकान को देखकर तो उनका सन्देह और भी दृढ़ हो गया था। मैं समझती हूँ कि यह सारी बातें वे आपको बता चुके हैं।"

"उन्हें क्या सन्देह हुआ था?"

"यह बात शायद उन्होंने आपको नहीं बतलाई!"

"बतलाई ज़रूर होगी, पर मैंने उस पर ग़ौर न किया होगा।"

"क्या आपको उन्होंने यह नहीं बतलाया कि जिस मनुष्य ने मुझे थान से आगरे बुला भेजा था और फिर जिसे मैं अपना चाचा समझ रही थी...।"

"समझ रही थी !"

"मैं सौगन्ध खाकर कह सकती हूँ कि मकान में अंधकार रहने पर भी उस मनुष्य के निकट जिस प्रकार की शान्ति और निर्भयता का मुझे अनुभव हुआ था वैसा पिता के सिवाय और किसी के निकट हो ही नहीं सकता।"

"उस समय उस आदमी पर तुम्हें कोई सन्देह नहीं हुआ था ?" प्रसन्नता और संतोष के स्वर में बैरम ख़ाँ ने पूछा !

"नहीं। उन्होंने बताया था कि वे मेरे चाचा हैं। उनकी बातचीत भी वैसी ही थी !"

"तू कहती है कि उनसे तेरी भेंट सिर्फ़ एक बार हुई। यानी उसके बाद वे तुझसे नहीं मिले। फिर सन्देह कैसे पैदा हुआ ?"

"यह सीधी-सी बात है। आगरे रहने पर शायद मुझे संदेह न होता। पर उन्होंने आगरे से बुलाकर मुझे एक ऐसे महल में क़ैद कर दिया जिसका सारा सामान आँखें फाड़-फाड़कर मुझे बतला रहा था कि मैं क्यों वहाँ रक्खी गई हूँ। मा-बाप अपनी लड़की को ऐसे गन्दे घरों में नहीं रखते जहाँ शराब रहती हो।"

"तब उस छल से बचने के लिए ही तुम उस मकान से निकल आईं; उस व्यक्ति के फुसलाने से नहीं ?" संतोष की साँस लेते हुए बैरम ख़ाँ ने पूछा।

"फुसलाने की ज़रूरत उन्हें क्या थी। वे मेरे सच्चे शुभचिन्तक हैं। मकान के रहस्यपूर्ण वातावरण से मुझे डर लगा। मैंने पत्र भेजकर उन्हें बुलाया, और बुलाती ही किसे! वे मुझे निकाल लाये!"

"तू अपने चाचा को पत्र लिख सकती थी!"

"चाचा जी दुबारा मुझसे मिले ही नहीं। न मैं यही जानती थी कि वे कहाँ रहते हैं! फिर मैं उन्हें पत्र कैसे भेजती!"

"मासूम बच्ची?" बैरम खाँ के मुँह से फिर सहसा निकल पड़ा। फिर अपने को सहसा सँभालकर उन्होंने कहा—"फिर भी यह मानना पड़ेगा कि संदेह का बीज तेरे मन में विजयपाल ने ही डाला था। क्योंकि तू तो इतनी भोली-भाली है कि तुझे किसी चीज़ पर सन्देह नहीं हो सकता।"

"हाँ; सौभाग्य से वे यहीं थे। उन्हें संसार का ज्ञान मुझसे अधिक है।"

"क्या तुझे विश्वास है कि उन्होंने तुझे जो कुछ बतलाया वह सच था?"

"जिससे प्रेम होता है उसकी बात पर सहज ही विश्वास हो जाता है।"

"तू विजयपाल से प्रेम करती है?"

नन्दा ने लज्जा से सिर झुका लिया।

"कब से?"

नन्दा फिर भी चुप रही।

"कात्यायनी माई के थान में रहते हुए तुम दोनों की भेंट कैसे हो जाती थी?"

"वे नदी पार करके उधर के जँगले के नीचे आ जाते थे ?"

"रोज़ आया करते थे ?"

"सप्ताह में एक बार !"

"क्या तू नहीं जानती कि हिन्दू लड़कियों की शादी उनके भाई-बाप करते हैं ?"

"जानती थी ! पर पन्द्रह साल में मुझे यह किसी ने नहीं बताया कि मेरा भी कोई कहीं है। थान के अन्य लड़के-लड़कियों की भाँति मैं भी अपने को अनाथ-लावारिस समझती थी। उस अवस्था में अपने साथ जो थोड़ी-सी भी सहानुभूति दिखलाता है, वह अपना हो जाता है।" नन्दा ने सफ़ाई देते हुए कहा।

"अब तो तुझे मालूम हो गया कि तेरे भी घरवाले हैं ?"

"ठीक से कुछ समझ में नहीं आता। मुझे तो ऐसा लगता है, मानो मैं स्वप्न देख रही हूँ।"

"अच्छा, दूसरों के कहने-सुनने को छोड़ दे। अपने दिल की बात बता ! तेरा दिल क्या कहता है कि वह शख़्स तुझे चाचा लगा था या नहीं ?"

"उस समय तो वैसा ही लगा था।"

"और अब ?"

नन्दा सोच में पड़ गई।

"अब शायद वह चाचा नहीं लगता होगा ! यही न ? जब तक वह पास रहा, उसकी मुहब्बत का तुझ पर असर रहा। जब वह चला गया तब दूसरे की मुहब्बत का असर हो गया जिसमें उससे ज़्यादा गर्मी,

उससे ज़्यादा जोश था!" कुछ उत्तेजित से होते हुए खानखानाँ ने कहा। भय से नन्दा उनके तमतमाये चेहरे की ओर देखने लगी।

"आप अजब तरह की बातें कर रहे हैं, पिता जी!" उठने की चेष्टा करते हुए उसने कहा।

दूसरे ही क्षण बैरम खाँ सँभल गये और अत्यन्त विनीत स्वर में बोले—"बेटी! शायद मैं ग़लती कर रहा हूँ। सारा दोष तेरे चाचा का है। अगर वह तुझे मिलने-जुलने का काफी मौक़ा देता तो तू बाहर निकलने की ग़लती न करती!' नन्दा चुपचाप द्वार की ओर देखती रही। उसे लग रहा था कि शायद विजयपाल आ जाय!

"फिर भी तूने उन्हें मना नहीं किया?"

चौंककर नन्दा ने फिर खानखानाँ की ओर देखा और पूछा—"किसे? क्यों?"

"तू जानती है कि विजयपाल आगरे क्यों आये हैं?"

"नहीं। जब मैंने उनसे कहा था कि मैं आगरे जा रही हूँ तब वे प्रसन्न होकर कहने लगे थे कि मुझे भी वहाँ जाना है।"

"इस साज़िश का तुझे कोई इल्म नहीं है?"

"साज़िश का?" भयभीत होकर नन्दा ने पूछा।

"नही-नहीं। मेरा मतलब दूसरा था। तू समझी नहीं।" प्रसग को बदलने की इच्छा से बैरम ख़ाँ ने कहा।

"मैं समझ गई! मैं समझ गई! आपने मुझे बतला दिया! मेरी समझ में आ गया कि क्यों वे पिछले कुछ दिनों से इतने गम्भीर और चिन्तित दिखाई देते थे। क्यों वे सदा बैरम ख़ाँ, मुराद बेग और चम्पालाल

को ही बातें किया करते थे; भविष्य-जीवन की चर्चा करने पर क्यों वे उदास से होकर कहने लगते थे कि 'नन्दा, मैं नहीं जानता कि कल क्या होनेवाला है।' क्यों वे अपने भाग्य को अनिश्चित समझते थे। वे षड्यंत्रकारी हैं। वे यहाँ षड्यन्त्र करने आये हैं!" नन्दा का स्वर सहसा उत्तेजना की चरम सीमा पर पहुँच गया। ऐसा लगता था मानो वह अभी फूट पड़ेगी!

"तू उन पर इतना विश्वास करती है, और उन्होंने यह छोटी-सी बात तुझे नहीं बतलाई!" भेद-नीति से काम लेते हुए बैरम खाँ ने कहा।

"शायद इसलिए कि मैं स्त्री थी। नीति का वचन है कि रहस्य की बात स्त्री को नहीं बतानी चाहिए।" कुछ सँभलते हुए नन्दा ने कहा।

"अच्छा ही हुआ। अब अगर मेरी बात मान—क्योंकि तू मुझे पिता कह चुकी है—तो उन्हें उनकी राह जाने दे और वे जो कुछ करना चाहते हैं, उसके लिए उन्हें आज़ाद छोड़ दे।"

"मैं आपकी आज्ञा मानने को तैयार हूँ, पिता जी! पर, हम दोनों ही संसार में अकेले हैं। एक-दूसरे के सिवाय हमारा संसार में और कोई नहीं है। मा-बाप उनके भी नहीं हैं, मेरे भी नहीं। और अगर होंगे भी तो पन्द्रह साल से मुझसे अलग हैं। इस लम्बे समय में मुझसे अलग रहने की उनकी आदत पड़ गई होगी और मेरा वियोग उन्हें अधिक कष्टदायक न होगा। मतलब यह है कि हम दोनों यदि साथ-साथ मर भी जायँ तो हमारे शोक में किसी को एक आँसू भी बहाना न पड़ेगा। मैं

आपसे झूठ कह रही थी कि उस साज़िश में मेरा हाथ नहीं है। उन्होंने जो कुछ किया है—या करने जा रहे हैं—उसमें मैं भी शामिल हूँ।"

एक गहरी साँस के साथ बैरम खाँ ने गुनगुनाया—"नेस्त ज़ंजीरें जर्नू दर गरदने मजनूने ज़ार। इश्क़ दस्ते दोस्ती दर गरदनश अफ़गन्दह अस्त*।" फिर प्रकट रूप में कहा—"तू बड़ी वफ़ादार और लायक़ लड़की है। तेरी एक-एक बात अनमोल है। मैं सिर्फ़ एक बात और जानना चाहता हूँ। थान से चलते वक्त तूने क्या सोचा था? मेरा मतलब यह है कि क्या तू ने उस वक्त मन ही मन में यह तय नहीं कर लिया था कि अगर तेरे मा-बाप तेरी शादी किसी और के साथ करना चाहेंगे तो तू विजयपाल का ख़्याल छोड़ देगी?"

"शायद सोचा हो; मैं ठीक से कह नहीं सकती। वह हालत दूसरी थी। उस हालत में मैं जानती थी कि मेरे लिए उन्हें दुःख ज़रूर होगा, पर इससे उनके जीवन पर कोई प्रभाव न पड़ेगा। उन्हें छोड़ने का मुझे दुःख हो सकता था, पश्चात्ताप नहीं। अब परिस्थिति दूसरी है। अब मैं जानती हूँ कि उनका जीवन ख़तरे में है। अब मुझे अनुभव हो रहा है कि हम दोनों का जीवन एक ही है।"

"यह महज़ इसलिए कि अभी मामला ताज़ा है। धीरे धीरे सब भूल जायगा।"

---

*यह साकल जो बेचारे मजनूँ की गर्दन में पड़ी हुई है, वह साकल नहीं है, जिससे पागल को बाँधा जाता है। यह साकल उस इश्क़ का प्रतीक है जिसने दोस्ती का हाथ उसकी गर्दन में डाल दिया है।

"कदापि नहीं! उनकी शीतल छाया मुझे उस समय प्राप्त हुई थी जब माता-पिता के स्नेह का मैंने स्वप्न भी नहीं देखा था। जीवन की सूनी घड़ियों में मेरे वे आकाश-दीप रहे हैं। मेरा जीवन—मेरी आशा—मेरा सब कुछ—उन्हीं पर आधारित है—उन्हीं के चरणों पर समर्पित है। पिता जी, मैं आपसे प्रार्थना करती हूँ—आपके चरणों पर सिर रखकर भीख माँगती हूँ—कि आप उन्हें उस काम से अलग कर दीजिए। वे आपकी आज्ञा अवश्य मान लेंगे। वे आप पर श्रद्धा रखते हैं—आपको राजर्षि कहते हैं, आपको पिता समझते हैं। आपको इसी लिए उन्होंने भेद की सारी बातें बतलाई हैं। यदि वे वैसे न मानें तो उनसे कहिए कि आपकी नन्दा आपके बिना क्षण भर नहीं रह सकती। जो कुछ आपको होगा, वही नन्दा को भी अवश्य होगा। आपको देश निकाला हुआ तो वह भी देश से निकल जायगी; जेलख़ाना हुआ तो वह भी जेल का जीवन व्यतीत करेगी—और अगर फाँसी हुई तो वह भी फाँसी लगा लेगी।" कहकर नन्दा बैरम ख़ाँ के पैरों पर लोट गई और फफक-फफककर रोने लगी। नन्दा को अपनी बाँहों में सँभालते-सँभालते बैरम ख़ाँ के मुँह से निकल ही गया—"मैं विजयपाल जी को बचाने की भरसक कोशिश करूँगा। मैं वचन देता हूँ।"

नन्दा फिर भी पैरों से लिपटी ही रही। उसे लगता था कि जैसे उसकी सारी आशायें, उसका सारा भविष्य, उसके जीवनाधार विजय का समस्त कुशल-क्षेम उन्हीं दो चरणों में केन्द्रीभूत होकर रह गया है।

कुछ क्षण तक अपने भावावेश को सँभालने के पश्चात् बैरम ख़ाँ फिर बोले—"सबसे पहले हमें ज़रूरी कामों की ओर ध्यान देना है।

यह तो कह ही चुका हूँ कि विजयपाल का जीवन ख़तरे में है। पर वह ख़तरा अभी दूर है। इसलिए अव्वल तेरे बारे में इन्तज़ाम करना ज़रूरी है। विजयपाल जी तुझे मेरी हिफ़ाज़त में छोड़ गये हैं। तू मुझ पर विश्वास करेगी ?"

"अवश्य; 'वे' मुझे यहाँ लाये थे !"

"हमेशा 'वे' !" ठंडी साँस लेते हुए धीरे से बैरम ख़ाँ ने गुनगुनाया। फिर बोले—"यह जो सामने छोटी-सी सुन्दर हवेली दिखाई दे रही है; तुझे वहीं रहना है। वहाँ तुझे किसी प्रकार का ख़तरा नहीं हो सकता। मैं तेरे पढ़ने के लिए कुछ अच्छी-अच्छी किताबें रखवा दूँगा और अकसर तुझसे मिलता-जुलता भी रहूँगा, बशर्ते कि तुझे कुछ ऐतराज़ न हो !"

नन्दा ने कुछ उत्तर नहीं दिया। वह धैर्य के साथ बैरम ख़ाँ की बात सुनती रही।

उसके मौन को सम्मति का लक्षण मानते हुए बैरम ख़ाँ फिर बोले—"उस हवेली में विजयपाल जी से भेंट करने का मौक़ा भी तुझे मिल सकता है।"

नन्दा विचलित हो उठी, फिर भी कुछ बोली नहीं। बैरम ख़ाँ ने आगे कहा—"हवेली की बग़ल में एक छोटा-सा शिवाला है। तू चाहे तो वहाँ बैठकर भजन-पूजन भी कर सकती है। इससे तेरे चित्त को कुछ शान्ति मिलेगी।"

"मैं राज़ी हूँ पिता जी; आपके उपकारों के लिए हम दोनों जीवन भर आपके ऋणी रहेंगे।"

सिर झुकाते हुए बैरम ख़ाँ ने कहा—"अब तू समझ ले कि तू अपने पिता के घर पर है जहाँ तेरा कोई कुछ बिगाड़ नहीं सकता। मैं दो-एक बाँदियाँ भेज दूँगा जो तेरी सब तरह से टहल करेंगी।"

"आप बड़े दयालु हैं, पिता जी!"

"और अपने चाचा जी व माता जी को तू छोड़ ही देगी?" मुस्कराते हुए बैरम ख़ाँ ने कहा।

नन्दा हाथ जोड़कर बोली—"आप मेरे भय को क्या नहीं समझ रहे हैं, पिता जी! क्या मेरा सन्देह अनुचित था?"

"अनुचित न होने पर भी उसकी बुनियाद कमज़ोर है। मकान को देखकर ही किसी की नीयत पर शुबह कैसे किया जा सकता है!"

"मैं अपनी बात आपसे कह चुकी हूँ।"

"अच्छा मान ले, तेरे चाचा जी तेरा पता लगाते-लगाते यहाँ आ पहुँचे और उन्होंने तुझे ले जाना चाहा?"

"उस हालत में आप कृपा करके 'उन्हें' सूचना कर दीजिए। 'वे' जो आज्ञा देंगे वही करूँगी।"

"यही ठीक होगा।" कहते हुए बैरम ख़ाँ मुस्कराकर उठ खड़े हुए। नन्दा भी उठ खड़ी हुई। उसे हवेली की ओर जाने का संकेत करते हुए वे स्वयं दाहिनी ओर के एक फाटक की ओर बढ़े। कुछ क़दम आगे चलकर नन्दा ठिठकी और मुड़कर पीछे की ओर देखने लगी। बैरम ख़ाँ लौटकर उसके पास आये और बोले—"कुछ कहना चाहती है?"

"'वे' हैं कहाँ?"

"इतना उतावलापन ठीक न होगा।" धीरे से बैरम ख़ाँ ने कहा।

नन्दा ने सिर झुका लिया।

उसे चिन्ता में पड़ी देखकर बैरम ख़ाँ ने कहा—"वे सफ़र पर गये हैं। दो या तीन दिन में लौटेंगे।"

"लौटने पर तो दर्शन हो जायँगे?" अर्द्धस्पष्ट स्वर में नन्दा ने कहा।

"ज़रूर, इसका मैं वादा करता हूँ।"

इसके बाद वह धीरे-धीरे हवेली की ओर चली गई।

——

"यह अढ़ाई घड़ी की भद्रा भी आज निबट जाय तो ठीक रहेगा।" कहते हुए मुराद बेग घुटनों के बल फ़र्श पर बैठ गया और मसनद को खींचकर उसने अपने पीछे कर लिया। उसके दोनों साथी भी अगल-बग़ल बैठ गये।

"इतनी कोशिश हुई तब कहीं जाकर प्याला लबालब भरा।" कहकर इम्दाद ने मुराद के मुँह की ओर देखा।

"मैं तुम्हारी तारीफ़ करता हूँ, इम्दाद भाई, तुम इतनी कोशिश न करते तो धरती के दोनों छोर न मिलते।" प्रशंसासूचक दृष्टि से इम्दाद की ओर देखते हुए मुराद ने कहा।

"ख़ानज़माँवाला मामला फिर भी रहा जाता है।" चम्पालाल ने धीरे से कहा।

"आज की बैठक में वह भी तय हो जायगा। देखो न यह ख़त!" कहते हुए मुराद बेग ने एक ख़त निकाला और सामने रख दिया।

"शाहम बेग का दस्तख़ती है।" ख़त पर एक निगाह डालते हुए चम्पालाल ने कहा।

"हाँ, और नहीं तो क्या! इसी लिए तो मैं कहता हूँ कि मुग़ल

सल्तनत की इमारत की पहली ईंट लाहौर में रक्खी गई थी और लखनऊ से गिरनी शुरू होगी।"

"कितने पर सौदा हुआ है?" चम्पालाल ने प्रश्न किया।

"दो हज़ार अशर्फ़ियों पर।" मुराद ने मूँछों पर ताव देते हुए कहा।

"बग़ल का काँटा इसे ही तो कहते हैं।" इम्दाद ने समर्थन किया।

"आगरे से ख़बर मिलने के पेश्तर ही यह काम कर डालना होगा, नहीं तो ख़ानज़माँ हमारी सम्भल की राह मे रोड़ा बन जायगा।" चम्पालाल ने सम्मति दी।

"मैं कल ही कुछ बन्दोबस्त करने की सोच रहा हूँ।" मुराद ने कुछ धीरे से कहा।

"योजना क्या रहेगी?" चम्पालाल ने फिर पूछा।

"उसकी बाबत कुछ सोच चुका हूँ, कुछ सोचना बाक़ी है।" मुराद ने उत्तर दिया।

"अशर्फ़ियों की बाबत क्या इन्तज़ाम हुआ।"

"दौलतराम जौहरी से तय हो गया है। उसने कह दिया है कि वह सब दाम भर देगा।"

"बहादुर बनिया है।"

"ख़ानज़माँ ने उसे बेइज़्ज़त भी बहुत किया है।"

इसी समय कोठरी में कुछ खटके की आवाज़ हुई। मुराद ने उधर मुड़कर देखा। गुप्त-द्वार से पाँच मूर्त्तियाँ भीतर आ रही थीं। तीनों एक साथ उठकर खड़े हो गये।

"आइए सेठ जी!" दोनों हाथ बढ़ाकर मुराद ने स्वागत किया।

"हाज़िर हूँ।" कहकर दौलतराम जौहरी ने अपना नक़ाब उतार दिया। साथियों ने भी उसका अनुसरण किया।

"आपकी ही चर्चा हो रही थी।" इम्दाद ने कहा।

"बड़ी मेहरबानी आपकी; मैं किस लायक़ हूँ।" बनियों की भाँति सेठ ने उत्तर दिया।

सब चुपचाप बैठकर एक-दूसरे का मुँह देखने लगे।

"आपकी बात पर मैंने विचार कर लिया है।" कुछ इधर-उधर करने के बाद जौहरी ने कहा।

तीनों मित्र आशा के साथ सेठ के मुँह की ओर देखने लगे।

सेठ मुराद की आँखों में देखते हुए बोला—"ख़ानज़माँ ने हमें जिस तरह बेइज़्ज़त किया है, आपसे छिपा न होगा।"

"आपकी इज़्ज़त हमारी इज़्ज़त है, बल्कि सारे जौनपुर की इज़्ज़त है।" तीनों एक स्वर से बोले।

"तो मैं भी आपके साथ पूरी तरह से हूँ।" दौलतराम ने दृढ़ता से कहा।

"यह ख़त शाहम बेग का है, जिसका ज़िक्र मैंने आपसे किया था।" कहकर मुराद ने वही पत्र सेठ के सामने भी रख दिया।

"मैं पूरा विश्वास करता हूँ।" पत्र की ओर देखते हुए सेठ ने कहा—"पर एक बात कहना चाहता हूँ, बुरा न मानिएगा। इन शाहम बेगों का इतमीनान ज़रा समझ-बूझकर करना चाहिए। वह ख़ानज़माँ की बग़ल में सोनेवाला है। ऐसे आदमी की बात बहुत पक्की नहीं होती। और यदि यह चाल ख़ानज़माँ की हुई तब तो......ख़ैर, मेरी कुछ बात

नहीं। मेरी इज़्ज़त-आबरू तो वह ले ही चुका है और मुझे बिरादरी के सामने मुँह दिखाने के क़ाबिल भी नहीं रक्खा; सवाल आप लोगों का है। नारायण न करे कि कहीं......फिर रुपये का भी सवाल है। कहीं ऐसा न हो कि रुपया भी जाय, मुसीबत आवे।"

मुराद ने इम्दाद की ओर देखा।

इम्दाद बोला—"इसका उपाय यह है कि 'इस हाथ दे उस हाथ ले' वाला सौदा होना चाहिए। कोई जगह ऐसी मुक़र्रर कर दी जाय जहाँ वह उधर से ख़ानजमाँ का सिर लेकर आये और इधर से हममें से कोई रुपये लेकर पहुँच जाय।"

"यह कैसे हो सकता है! इतमीनान दोनों तरफ़ से होना चाहिए। मान लो, उसने कह दिया कि रुपया पहले लिये बिना मैं ख़ानज़माँ पर हाथ नहीं उठाऊँगा। बात भी पते की है। ज़रा देर के लिए सोचो, वह वैसा क्यों करेगा! रुपये के लिए ही तो! यदि उसने वह काम कर डाला और रुपया भी न पाया, तब कहाँ का रहेगा!" चम्पालाल ने कहा।

"यह काम आपसी दिलजमई का है। फ़रीक़ैन को एक-दूसरे पर विश्वास तो करना ही होगा; भले ही दो में एक घाटे में रहे। हमें अपनी तरफ़ का तो इतमीनान है ही।" मुराद ने संक्षेप में निर्णय पर पहुँचते हुए कहा।

"हँसे रुपये का कोई सवाल नहीं है। आप लोगों की दया से यह तो हाथ का मैल है। जैसा आया, वैसा गया। सोचता यही हूँ कि इससे कोई नई मुसीबत न आ पड़े।" कहते हुए सेठ ने अशर्फ़ियों का एक तोड़ा निकालकर रख दिया।

"जोखिम तो उठानी ही पड़ती है। फिर हम जो कुछ करने जा रहे हैं, उसमें भी जोखिम ही है। अगर सच पूछें तो उसमें जो जोखिम है, उसके मुक़ाबिले में यह जोखिम कुछ भी नहीं है।"

"आगरे की क्या ख़बर है?" सेठ ने प्रसंग बदलते हुए पूछा।

"बहुत अच्छी है। सरदार कुशलपाल का यह ख़त कल ही तो आया है। लिखा है कि विजयपाल शेख़ साहब की शागिर्दी में क़बूल कर लिया गया है और अब वह ग़ाज़ी बननेवाला है।"

"विजयपाल सच्चा सिपाही है।" प्रशंसा करते हुए सेठ ने कहा।

"अब हमें भी जल्दी करनी चाहिए।"

"शाहम बेग से सौदा किस तरह हो; इसके बाबत मैं आप लोगों की राय जानना चाहता हूँ।" मुराद ने मुख्य प्रसंग पर पहुँचते हुए कहा।

"वह आजकल है कहाँ?" सेठ ने प्रश्न किया।

"क़ायमगंज मे।" मुराद ने उत्तर दिया।

"मगर हममें से किसी का क़ायमगंज जाना ठीक नहीं है।" चम्पालाल ने राय दी।

"लेकिन किसी तीसरे आदमी पर विश्वास भी कैसे किया जा सकता है!" मुराद ने आपत्ति की।

"मेरी समझ से एक नाव सौदा भरकर पच्छिम की ओर रवाना की जाय। साथ ही शाहम बेग को ख़बर कर दी जाय कि वह भी नाव पर ही उधर से आये। बीच में दोनों फ़रीक़ मिलें। वहीं सौदा हो जाय। अगर वह राज़ी हो जाय तो रुपया किसी ऐसे आदमी के पास जमा

कर दिया जाय जिस पर दोनों का विश्वास हो। जब वह काम कर दे तब रुपया ले लें।" सेठ ने अपनी सम्मति दी।

"ऐसा आदमी कौन हो सकता है?" चिन्ता प्रकट करते हुए मुराद ने कहा।

"शृङ्गीरामपुर के महन्त जयरामदास से काम चल सकता है।" सेठ ने सम्मति दी।

"यह भी हो सकता है कि शाहम बेग का कोई ख़ास आदमी ओल में ले लिया जाय और रुपया उसे दे दिया जाय। जब वह काम कर दे तब उस ओल को उतार दिया जाय।"

"दोनों ही तदबीरें मुनासिब हैं। अब विचारना यह है कि हम में से नाव पर कौन जाये। क्योंकि सेठ जी का अकेले जाना ठीक न होगा।" इम्दाद ख़ाँ ने कहा।

"मैं नहीं जाऊँगा। ज़्यादा से ज़्यादा मैं अपने मुनीम जी को भेज सकता हूँ। रही रुपयों की बात, वह मैं आपसे अर्ज़ कर ही चुका हूँ।" सेठ ने आपत्ति की।

"इसकी चिन्ता नहीं। पाँसा फेंककर इसका फ़ैसला किया जा सकता है।" मुराद बेग ने कहा।

"मगर मैं न जा सकूँगा, चाहे पाँसा मेरे ही रुख़ क्यों न गिरे।" चम्पालाल ने आपत्ति की।

"ऐसा क्यों?" आँखें तरेरते हुए मुराद ने प्रश्न किया।

"यह मेरी निजी बात है। और जहाँ कहीं जाने की आज्ञा होगी, वहाँ जा सकता हूँ।"

"सबब बताना होगा।" कुछ बिगड़ते हुए मुराद बेग ने कहा।

"कारण यह कि मैं नाव पर जाना नहीं चाहता।"

"आख़िर क्यों?"

"मैं जल से डरता हूँ।"

"जल से डरते हो?"

"हाँ, यही तो मैं कह रहा हूँ।"

"आख़िर कोई बात भी हो?"

"एक लम्बी कहानी है, जिसे सुनाने से कोई फ़ायदा नहीं।"

"पर मैं यों ही न जाने दूँगा।" हठ और अविश्वास के स्वर में मुराद बेग ने कहा।

"आप हर बात में हठ करने लगते हैं। यह ठीक नहीं है।" चम्पालाल ने कुछ उग्र होते हुए कहा।

"मैं ठीक कह रहा हूँ। हममें से हर एक अगर यों ही बहाना बनाकर निकल भागने की कोशिश करने लगे तो आख़िर काम करने के लिए लोग कहाँ से आयेंगे।" मुराद ने भी बिगड़ते हुए कहा।

"मैं बहाना करनेवालों में नहीं हूँ।"

"यह मैं मानता हूँ। पर जब एक बात तय हो गई, और सब एक राय पर पहुँच गये, तब इस तरह भाँजी मारना क्या मानी रखता है?"

"जो तय हुआ है, उससे मैं पूरी तरह सहमत हूँ। पर मैं सिर्फ़ यह कहना चाहता हूँ कि नाव और जल के झमेले से मुझे बचाया जाय। मैदान में आप जो काम चाहें, मुझे सौंप सकते हैं। मैं क़दम पीछे न हटाऊँगा।"

उपस्थित लोग चम्पालाल के इस भाव-परिवर्त्तन को आश्चर्य से देखने लगे।

"मैं कैफ़ियत चाहता हूँ।"

"अच्छी बात है। मैं कैफ़ियत देने को तैयार हूँ, पर कहानी ज़रा लम्बी है और यह मौक़ा उसे सुनाने का है भी नहीं।"

"कोई हर्ज़ नहीं; हम सब उसे सुनने को तैयार हैं।"

"तो सुनिए।" चम्पालाल आसन बदलकर बैठ गया और कहने लगा—

"पन्द्रह-सोलह साल पहले की बात है। तब मैं दस-ग्यारह साल का था और पिता जी के साथ रियासत पर रहा करता था। एक दिन मेरे पिता जी और चाचा जी ने हिरनों के शिकार का निश्चय किया। वे मुझे भी साथ ले गये। हम लोग घोड़ों पर सवार थे, जैसा कि हिरनों के शिकार में रिवाज है। पिता जी का घोड़ा लाल रङ्ग का था और चाचा जी का स्याह अबलक़। मैं नकुले रङ्ग के एक पहाड़ी टट्टू पर सवार था जो बहुत शायस्ता और सधा हुआ था।

"शिकार का जंगल हमारी गढ़ी से छः कोस पर उत्तर की ओर था। तीन-चार कोस चलने के बाद एक जगह एक नीम की छाया में हम लोग रुके। मुझे प्यास लगी थी और चाचा जी का एक साईस मेरे लिए पानी लेने गाँव की ओर चला गया था।

"हम लोगों ने देखा, एक बुढ़िया, जिसके सिर के बाल सन की तरह सफ़ेद हैं, नीम की जड़ से लगी बैठी है। उसके दाहिने हाथ में बकरी के सींग का टुकड़ा है और बायें हाथ में पानी भरा मिट्टी का एक

छोटा-सा प्याला। वह सींग की नोक से ज़मीन पर रेखायें खींचती जाती है और उन पर थोड़ा-थोड़ा पानी बायें हाथ से छोड़ती जाती है।

"पागल है।" मेरे चाचा ने कहा। बुढ़िया हम लोगों की ओर देखने लगी।

"क्या कर रही है?" चाचा जी ने उससे पूछा।

"कर क्या रही हूँ, नैहर के गाँव में आग लग गई है, उसे बुझा रही हूँ।" बुढ़िया ने बहुत संजीदगी से उत्तर दिया।

"हम तीनों हो-हो करके हँस पड़े।

"बुढ़िया कुछ न बोली। वह पहले की तरह अपने काम में लगी रही। इसी बीच साईस पानी ले आया। हम लोग पानी पीकर चलनेवाले ही थे कि बुढ़िया बोली, "यह सफ़ेद टट्टू बड़ा अशुभ है।"

"धुत् पगली", मेरे चाचा ने कहा, "जानती है, यह कितना क़ीमती और शायस्ता है। सलोतरियों का कहना है कि बाल-भौंरी से साफ़ और बेऐब घोड़ा इस तरह का रजवाड़े भर में दूसरा न होगा। इसे भारी दामों पर देवीपाटन से मँगाया है।"

बुढ़िया ने एक बार टट्टू की ओर देखा और फिर मेरी ओर। फिर पागलों की तरह ताली बजाती हुई और हवा में लातें उछालती हुई कहने लगी—"सुभान तेरी क़ुदरत, सुभान तेरी क़ुदरत।"

"फिर उस बुढ़िया के पागलपन की चर्चा करते हुए और हँसते-हँसाते हुए हम तीनों शिकारगाह की ओर चल दिये।

"जंगल का अभी छोर ही दबाया था कि हमारे घोड़ों के सुमों की आहट पाकर एक सियार दाहिनी ओर की झाड़ी से निकला और शोर

करता हुआ बाईं ओर को भागा। हमारे घोड़े भड़क गये। पिता जी और चाचा जी ने तो जैसे-तैसे चूम-पुचकारकर अपने-अपने घोड़े क़ाबू में कर लिए, पर मैं अपने टट्टू को क़ाबू में न कर सका। मैंने लगाम खींची तो पुस्तंग झाड़ता हुआ वह अर्जल होने लगा। मैंने आगे को दबाया तो उसने बुरी तरह कांधी मार दी। मैं चारोंख़ाने चित्त गिरा। बाईं बाँह टूट गई। इस घटना से मेरे पिता जी और चाचा जी बहुत दुःखी हुए और शिकार का विचार छोड़ मुझे लिये हुए जैसे-तैसे घर लौट आये। मैं छः महीने खाट पर पड़ा रहा, तब कहीं जाकर बाँह ठीक हुई। लेकिन पहले की तरह फिर भी सीधी नहीं हो सकी।"

यह कहते हुए चम्पालाल ने अपनी बाईं बाँह खोलकर मित्रों को दिखलाई और फिर उसकी टेढ़ाई को ठीक से समझाने के लिए दाहिनी बाँह को भी खोलकर बाईं के समानान्तर फैलाकर दिखाया।

"आगे क्या हुआ?" उत्सुकता से मुराद ने प्रश्न किया।

"इसके बाद सात-आठ साल तक मुझे बुढ़िया देखने को न मिली। अब मैं जवान हो गया था और रात-दिन शिकार खेलने में मस्त रहता था। हम जैसे राजकुमारों का प्रधान कार्य उन दिनों यही था। मैं अपना घोड़ा लेकर गढ़ी से निकल जाता और हफ़्तों बाद बीसों मज़दूरों पर शिकार लदवाये लौटता।

"एक दिन की बात है। मैं शिकार को जा रहा था। साईस साथ था। सामने देखा, वही बुढ़िया सड़क के किनारे-किनारे चली आ रही है। उसकी आकृति अभी वैसी ही थी, जैसी मैंने पहले देखी थी। इसी लिए उसे पहचानने में मुझे देर नहीं लगी। उस बुढ़िया ने भी मुझे

पहचान. लिया। यह देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। क्योंकि मेरा शरीर अब बहुत बदल चुका था। मेरी ओर देखकर वह बोली—"कहाँ जा रहे हैं, राजा चम्पालाल ?"

"शिकार खेलने।" मैंने उत्तर दिया।

"ओहो, यह तो अच्छा है। पर अपनी जेब का यह छुरा मुझे दे दें तो बड़ी मेहरबानी हो।" मेरी जेब में पड़े छुरे की ओर संकेत करते हुए उसने कहा। मैंने अपने नौकर की ओर देखा।

"छुरा न रहने से शिकार की खुरियाँ किस तरह काटेंगे ?" नौकर ने आपत्ति की।

बुढ़िया फिर बोली, "सुभान तेरी क़ुदरत, सुभान तेरी क़ुदरत!" और चुपचाप सड़क के किनारे-किनारे चल दी।

"मेरी समझ में न आया कि बुढ़िया के इस तरह छुरा माँगने का कारण क्या था। मेरे नौकर ने अवश्य कहा कि उसे छुरे की ज़रूरत रही होगी, इसी लिए माँगती थी। हम लोग भी अपनी राह चल दिये। हाँ, अपने मन में मैंने यह निश्चय अवश्य कर लिया कि छुरे का प्रयोग बहुत समझ-बूझकर करूँगा।

"संयोग की बात कि बहुत देर तक दौड़-धूप करते रहने पर भी मुझे उस दिन शिकार दिखाई न दिया। मेरी समझ में आ गया कि बुढ़िया का क्या अभिप्राय था। जब शिकार मिलना ही नहीं था तब छुरे का क्या होगा। शायद बुढ़िया के कथन का यही अभिप्राय था। मेरा दिल कुछ हलका हो गया और मैंने घर की ओर घोड़ा मोड़ दिया।

"उसी समय एक मोटा करसायल छलाँगें मारता हुआ मेरे आगे से

निकला। बिना कुछ सोचे-विचारे मेरी एड़ ने घोड़े के तंग को छुआ। हाथों ने लगाम तानी। घोड़ा हिरन के पीछे था। मैं कुछ ही दूर गया था कि हिरन के पीछे घोड़ा डाले हुए एक और शिकारी पर मेरी निगाह पड़ी। पर अब क्या हो सकता था! मुझे देखते ही वह बोला—"तकलीफ़ करने की ज़रूरत नहीं। यह शिकार मेरे लिए काफ़ी होगा!"

"मैं भी यही कहनेवाला था।" शिकारी की ओर कनखियों से देखते हुए मैंने कहा। अब हम दोनों के घोड़े बगमेल दौड़ रहे थे।

"ख़ैरियत इसी में है कि लौट जायँ।" कुछ चिढ़ते हुए उस शिकारी ने कहा।

"होश की दवा करो।" मैंने भी उसी अकड़ से उत्तर दिया।

"मेरे मुँह से यह निकलना था कि वह जवान जो लगभग मेरी ही अवस्था का था, आग-बबूला हो गया, और ओंठ चबाता हुआ बोला—"यह गुस्ताख़ी!" उसने अपना छुरा हाथ में ले लिया और मेरी ओर बाग मोड़ते हुए कहा—"ठहर तो बद कलाम!"

"बेवक़ूफ़ कहीं का!" कहकर मैंने भी अपना छुरा हाथ में ले लिया और सावधान हो गया।

"घोड़े को कावा देते हुए उस शिकारी युवक ने मुझ पर छुरे से वार किया। मैंने भी उस पर छुरा चलाया। होनहार की बात कि उसके घोड़े का एक पैर गढ़े में जा पड़ा और उसका वार चूक गया। पर मेरा छुरा मूँठ तक उसकी छाती में जा धँसा। तड़पकर वह घोड़े से नीचे जा गिरा। छाती से ख़ून का फुहारा छूट पड़ा। मैंने भी इस दुर्घटना के कारण शिकार की आशा छोड़ चुपके से घर की राह ली। राह में सोच

रहा था कि छुरा साथ न होता तो अच्छा होता; पर मेरी प्राण-रक्षा भी उस दशा में क्योंकर होती।"

"क़यामत की बुढ़िया थी!" मुराद ने आँखों से आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा।

"हाँ, और क्या! आगे और भी सुनिए। उस घटना के चार या पाँच वर्ष बाद, पिछले वर्ष मुझे उस बुढ़िया के दर्शन अचानक फिर हो गये। उस वक़्त मैं अपनी शादी करके लौट रहा था। मेरी स्त्री पालकी में थी और उसके साथ-साथ सोलह सशस्त्र सैनिक चल रहे थे। बाराती कुछ आगे थे और कुछ पीछे आ रहे थे। हाथियों, घोड़ों, रथों और ऊँटों की कई मील लम्बी क़तार थी। मैं भी अपने सब्ज़े पर चढ़ा वर के वेश में पालकी से कुछ फ़ासले पर चल रहा था। रास्ते में मैंने देखा, सड़क के एक किनारे, शीशम के एक उकठे पेड़ के नीचे खड़ी वह बुढ़िया टकटकी लगाये मेरी ही ओर देख रही है।

"मेरा रोम-रोम सिहर उठा। दिल धक्-धक् करने लगा। ऐसा लगा कि घोड़े से अब गिर जाऊँगा। इच्छा हुई कि आँख फेरकर आगे बढ़ जाऊँ, पर घोड़ा मानो किसी अदृष्ट की प्रेरणा से उसी की ओर मुड़ गया और पास पहुँच कर खड़ा हो गया। बुढ़िया मुस्करा रही थी।

"दुलहिन लाये हैं?" मेरी ओर दयापूर्ण नेत्रों से देखते हुए उसने पूछा।

मैंने सिर झुका लिया।

"अच्छा किया, बेटा; बड़ी अच्छी बहू है। तुझे बहुत सुख देगी

बेचारी। सुभान तेरी क़ुदरत, सुभान तेरी क़ुदरत!" कहकर बुढ़िया पालकी की ओर देखने लगी।

"मेरे सारे शरीर से एक साथ पसीना छूट पड़ा।

"फिर एक ओर को जाते-जाते वह बोली—"जल से बचना बेटा, जल से। जल में तेरे लिए ख़तरा है। और कोई तेरा कुछ न बिगाड़ सकेगा।"

"पिछले दो अनुभवों ने मेरे दिल को काफ़ी कच्चा कर दिया था। इस बार मैं और भी डर गया। घर के सब लोग ख़ुशियाँ मना रहे थे और मैं भविष्य की चिन्ता कर रहा था। बुढ़िया की बातें मेरे दिल पर जैसे किसी ने खोद दी थीं। उसके बाद छः महीने भी न बीते कि ख़ानख़ानाँ से मेरे पिता का बिगाड़ हो गया और फिर जो कुछ हुआ वह आप सबको मालूम है। आज यह दिन है कि फूलों की सेज पर सोनेवाली मेरी बीबी, जिसने हाथ से उठाकर कभी पानी पीना नहीं जाना, आज हाथ से चक्की पीसती और रसोई पकाती है। इस तरह बुढ़िया की तीसरी भविष्यवाणी भी क़रीब-क़रीब पूरी हो गई है और अब जलवाली बात बाक़ी रह गई है।"

"एक तरह से यह बात अच्छी भी है। तुम्हें कम से कम यह इतमीनान तो है ही कि जल के सिवा और कहीं कोई तुम्हारा कुछ बिगाड़ नहीं सकता, फिर वह चाहे ख़ुद मलकुल्मौत ही क्यों न हो। क्यों न?" बात पर दूसरे रुख़ से प्रकाश डालते हुए मुराद ने कहा।

"कम से कम मेरा विश्वास तो यही है।" चम्पालाल ने कहा।

"ख़ैर, पर इसमें एक नुक़सान भी है, जो बहुत बड़ा है। यह बात

यह साबित करती है कि तुम इस मामले में सिर्फ़ उसी हद तक जाने को तैयार हो जहाँ मौत का ख़तरा नहीं है। कम से कम इस कहानी का मैं यही मतलब निकाल रहा हूँ। मेरा मतलब यह है कि तुम इस मामले में इसी लिए शिरकत कर रहे हो, क्योंकि तुम्हें मालूम है कि जल के सिवा और कोई तुम्हें नुक़सान नहीं पहुँचा सकता। तब इसमें न तुम्हारी दिलेरी की बात है और न बहादुरी की। दुनिया में ऐसा कौन होगा जिसे अगर यह इतमीनान हो कि उसकी मौत नहीं हो सकती तो वह बहादुर न बन जाय! तुम्हारी सारी बहादुरी, सारी दिलेरी—बहुत कुछ इसी तरह की है। ऐसी बहादुरी को मैं बहादुरी नहीं समझता जो कुछ शर्तों के साथ हो।"

चम्पालाल चुपचाप सिर झुकाये सुनता रहा।

"मैं कहता हूँ कि सेठ की नाव पर तुम्हीं को जाना होगा।" मुराद ने उत्तेजित होकर कहा।

चम्पालाल ने एक बार आँखें उठाकर मुराद के तमतमाये चेहरे की ओर देखा। फिर आँखें नीचे झुका लीं।

"मेरी बात का क्या जवाब देते हो?" मुराद ने फिर कड़ककर पूछा।

"मैं अर्ज़ कर चुका हूँ।"

"यानी तुम भी उन्हीं कायरों में हो, जिन्हें हरदम मौत सामने दिखाई देती है। यही सबब है जो तुम कोई बड़ा काम नहीं कर सकते।"

मन में एक-दूसरे के प्रति कुछ असाधारण धारणायें लिये हुए तीनों मित्र आधी रात गये कोठरी से निकले और पेचीदा गली के नुक्कड़ पर जा पहुँचे। रात साँय-साँय कर रही थी। उसी समय सामने की सड़क पर घोड़ों की टापों की आवाज़ सुनकर तीनों ठिठक गये।

"शायद पहरेदार हैं।" इम्दाद ने धीरे से कहा।

"पोशाकें कुछ ग़ैरमामूली हैं।" मुराद ने उस ओर ध्यान से देखते हुए कहा।

तीनों खिसककर दीवाल की छाया में हो रहे।

"वह देखो!" कहते हुए चम्पालाल ने एक सवार की ओर अँगुली उठाई जो दस्ते के बीस क़दम के फ़ासले पर ऊँचे अरबी घोड़े पर सवार आ रहा था।

"इसका तुर्रा और कलँगी मुग़लों जैसी है!"

"ख़ानज़माँ तो नहीं है?"

"ख़ानज़माँ नहीं हो सकता। वह तो कल तक लखनऊ में ही था।"

"तब यह कुछ दूसरा मामला है।" दोनों की ओर सन्देह से देखते हुए मुराद ने कहा।

"भगवान् जाने।" चम्पालाल ने धीरे से उत्तर दिया।

तीनों टकटकी लगाकर सवारों को देखने लगे। सवार कुछ आगे बढ़कर एक गली में मुड़े जो दाहिनी ओर को जाती थी।

"हमारी गली में ही मुड़े हैं।" मुराद ने कुछ मुस्कराते हुए कहा।

"शायद दल-बादल में पड़ाव करेंगे!" चम्पालाल ने कहा।

सवारों के चले जाने पर तीनों मित्र गली के मुहारे पर जा पहुँचे।

"वह देखो!" इम्दाद ने आगे की ओर संकेत किया।

"मेरा घर घेर रक्खा है, शायद।" मुस्कराते हुए मुराद ने कहा।

"तब ज़रूर यह किसी की हरकत है?" सन्देह के साथ चम्पालाल ने कहा।

"आगरे में हमारे सिर्फ़ दो आदमी हैं।" इम्दाद ने कहा।

"विजयपाल ऐसा नहीं करेगा।" मुराद ने निश्चय के साथ कहा।

"कुशलपाल भी मुख़बरी नहीं कर सकता। तीसरा वहाँ है ही कौन?" इम्दाद ने भी अपना मत प्रकट कर दिया।

"हो सकता है, सवार किसी दूसरे ही मतलब से आपके दरवाज़े पर रुक गये हों, और कुछ देर बाद आगे चले जायें।" चम्पालाल ने बतलाया।

"मुमकिन है; पर बात ग़ैरमामूली ज़रूरी है। इसी लिए शुबह होता है।"

"शुबह से फ़ायदा उठाना चाहिए।"

"यानी!"

"यानी इस मौक़े पर हट जाना अच्छा रहेगा।"

"और अगर वहाँ चलकर ही देखा जाय !"

"अगर वे दुश्मन हुए तो आपको ज़रूर गिरफ़्तार कर लेंगे।

"मुझे गिरफ़्त में लेकर क्या करेंगे ?"

"बैरम ख़ाँ से आपकी पुरानी दुश्मनी जो है।"

"बैरम ख़ाँ मुझे नहीं पहचानता।"

"पर दरबार में आपको पहचाननेवालों की कमी न होगी।"

"इसके अलावा मेरे ख़िलाफ़ शहादत भी चाहिए।"

"शहादत की परवाह मुग़ल नहीं करते। और ज़रूरत पड़ने पर शहादत तो पैदा कर ली जाती है।"

"यह भी मान लेता हूँ। पर क्या आप लोगों का मंशा यह है कि अपने बाल-बच्चों को इस तरह दुश्मनों के घेरे में छोड़कर मुझे भाग खड़ा होना चाहिए !" चम्पालाल की ओर देखते हुए मुराद ने कहा।

"राज-काज के मामलों में ऐसा करना बुरा नहीं कहा जाता। भगवान् श्रीकृष्ण तक जरासन्ध को पीठ दिखाकर भागे थे और द्वारका जाकर दम लिया था। सुना है, आपके हज़रत रसूलिल्लाह भी ज़रूरत पेश आने पर मदीने के लिए हिजरत कर गये थे।; और बादशाह हुमायूँ का मुल्क-दौलत छोड़ सिर पर पैर रखकर भागना तो अभी कल की ही बात है।" चम्पालाल ने अपनी बात का समर्थन करते हुए कहा।

"यह मौक़ा रायज़नी का नहीं है। और न उस काम के लिए यह जगह ठीक ही है। मैं जो कुछ कहता हूँ, उसे पहले सुन लो, और फिर जिसके जी में जो आवे, वह वैसा आज़ादी से कर सकता है। मैं ग़लत मिसाल देना पसंद नहीं करता, न मुझे पीठ दिखाकर भागने पर यक़ीन

है। मेरे दादा ने भागना पसंद नहीं किया और न अब्बाजान ही कभी जान बचाकर भागे, हालाँकि उनके पास मौक़ा था। इसलिए भागने की बात मैं नहीं मान सकता। मान लो, मैं भागा भी, तो क्या इसका असर आप लोगों पर और हमारे दूसरे साथियों पर नहीं पड़ेगा? क्या विजयपाल के कान में यह बात नहीं पहुँचेगी? और क्या वह यह नहीं कहेगा कि बड़े सरदार बनते थे, मुझे सूली पर चढ़ा दिया और ख़ुद वक़्त आया तब भाग खड़े हुए।"

दोनों साथी चुपचाप कुछ देर तक मुराद के उत्तेजित मुख की ओर देखते रहे; फिर इम्दाद बोला—"मान लो आप गिरफ़्तार हो गये, तो इससे सब लोगों के हौसले टूट जायेंगे!"

"मैं यह नहीं मानता कि मुग़ल मेरे घर से मुझे पकड़कर ले जायेंगे और मेरे बचाने के लिए एक भी तलवार म्यान से बाहर न होगी! इसके बरख़िलाफ़ मेरा अक़ीदा तो यह है कि जिस काम को हम करने जा रहे हैं, उसे शुरू करने का यह एक नादिर मौक़ा अल्लाताला ने दिया है। अगर मुझे गिरफ़्तार किया गया तो सारे इलाक़े में आग लग जायगी। बारूदख़ाना तैयार है, सिर्फ़ एक चिनगारी की देर है। वह चिनगारी मैं बन जाऊँ तो बेहतर है। बिना ऐसा किये सरदार की पगड़ी की लाज नहीं रहने की। ठीक यही होगा कि मैं आगे बढ़कर शहीद बनूँ और फिर मेरे दोस्त मेरी क़ब्र पर छुरे तेज़ करके क़समें लें। मुग़लों को नहीं देखते कि ऐसे मौक़ों पर कैसा जोश और हौसला दिखलाते हैं। फिर जब मैं सरदार हूँ तो मेरा फ़र्ज़ है कि जहाँ आप लोगों के लिए मैंने और बहुत से रास्ते साफ़ किये हैं वहाँ मौत का रास्ता भी साफ़ कर दूँ,

जिससे उस नाज़ुक रास्ते पर आप लोग भी मेरे पीछे-पीछे साबित क़दमी से चल सकें। अगर हाथ में तलवार रही और मुँह घर की ओर रहा तो मैदान में क्या कर सकते हैं !"

"हम लोगों के लिए क्या आज्ञा है ?" कुछ झिझकते हुए चम्पालाल ने प्रश्न किया।

"हाँ, उसका ज़िक्र भी ज़रूरी है। तुम लोग वफ़ादार सिपाहियों की तरह आज तक मुझे अपना सरदार मानते रहे हो। मेरा और तुम लोगों का वह सरदारीवाला रिश्ता आज से ख़त्म होता है। अब तुम ख़ुद मुख़्त्यार हो। जो कुछ मुनासिब समझो, कर सकते हो। तुम्हारे सामने तुम्हारा घर-बार है, बाल-बच्चे हैं, इज़्ज़त-आबरू है। तुम्हारे सामने तुम्हारा दुश्मन भी है जो तुम्हारे घर-बार, बाल-बच्चों और तुम्हारी इज़्ज़त आबरू के लिए ख़तरा है। अब यह तुम्हारे दिल की बात है। तुम चाहो तो अपने बाल-बच्चों को लेकर मज़े में बेकसों, बेदिलों और बेग़ैरतों की ज़िन्दगी बिता सकते हो। ऐसा करते हुए तुम्हारे कंधों पर सिर ज़रूर साबित रहेंगे, उनके लिए कोई ख़तरा न होगा; लेकिन उन सिरों पर बाप-दादों की पगड़ी रख सको, या न रख सको, यह दूसरी बात है। तुम्हारे पेट के लिए रोटियों की कमी न रह सकेगी, भले ही तुम आँसुओं के घूँट पीकर उन्हें गले से नीचे उतारो। यही नहीं, अगर तुम थोड़ी-सी बेग़ैरती और भी दिखला सके, अपने दोस्त-अहबाब, अपने संगी-साथियों और अपने हमवतनों और हमजोलियों की इज़्ज़त का सौदा ग़ैरों के हाथ कर सके तो तुम्हें उनके दरबार में मंसब भी मिल जायगा, ख़िलअतें भी मिल जायेंगी और दाम-दिरम तो इतना मिलेगा कि सँभाले न चुकेगा।

दूसरी तरफ़ अगर मेरी तरह तुम्हें भी यह जूतियों में परोसी मिठाई पसन्द न आये, क़ौम की बहू-बेटियों की इज़्ज़त अपनी जान से कम क़ीमती न लगती हो, लानत और बेइज़्ज़ती की लिखावटवाले तमग़े सीने पर लगाने से गुरेज़ हो तो तुम भी वही कर सकते हो जो मैं करने जा रहा हूँ, ज़ाती ज़िम्मेवारी पर, ज़ाती बलबले का शिकार होकर! हालांकि तुम जानते ही हो कि मैं 'बेग' हूँ।"

इम्दाद और चम्पालाल ने सिर झुका लिया। मुराद बेग क्षण भर तक खड़ा दोनों की ओर देखता रहा, फिर वह उन्मत्तों जैसी मस्ती के साथ अपने घर की ओर अग्रसर हो गया। दोनों साथी भी उसके पीछे-पीछे चल दिये।

"आप लोग किसकी इजाज़त से मेरा दरवाज़ा रोके खड़े हैं?" द्वार पर पहुँच कर एक सिपाही से उसने प्रश्न किया जो दरवाज़ा घेरकर खड़े होनेवाले सिपाहियों में से एक था। सिपाही ने एक और सैनिक की ओर संकेत कर दिया जो पास ही खड़ा था और जिसकी पोशाक अफ़सरों जैसी थी।

"मैं अन्दर जाना चाहता हूँ। रास्ता छोड़ दीजिए।" उसने सिपाही को धक्का देते हुए कहा।

"आप कौन हैं?" आगे बढ़ते हुए अफ़सर ने प्रश्न किया।

"मै इस घर का मालिक हूँ।" मुराद ने कड़ाई से उत्तर दिया।

"मालिक! आप इस घर के मालिक नहीं हो सकते!" आँख से मुराद बेग को दूसरी ओर हटने का संकेत करते हुए अफ़सर ने कहा।

मुराद बेग दूसरी तरफ़ को हट गया। पास पहुँच कर अफ़सर ने धीरे से उसके कान में कहा—"आपका नाम क्या है?"

"मुराद बेग।" मुराद बेग ने धीरे से उत्तर दिया।

"तो जानते हो, दरबार को आपके सर की ज़रूरत है, और इसी लिए हम लोग भेजे गये हैं?" अफ़सर ने फिर घुनघुनाते हुए कहा।

"अब जान गया। पर मेरा सिर गाजर-मूली नहीं है।"

"वह तो देख रहा हूँ। हालाँ कि मुल्ला पीर मोहम्मद अपने से ख़िलाफ़ राय रखनेवाले के सिर की क़ीमत यही लगाता है।"

"और अपने सिर की क़ीमत?" मुराद ने चिढ़ते हुए कहा।

"उसका ठीक अन्दाज़ा तुम कर सकते हो। पर इस बहस की ज़रूरत नहीं। मेरी दोस्ताना सलाह यह है कि तुम फ़ौरन नौ-दो ग्यारह हो जाओ। तुम कहाँ जाओगे, इसको बताने की ज़रूरत नहीं, कम से कम मेरे नज़दीक।"

"फिर तुम क्या करोगे?" मुराद ने कुछ आश्चर्य, कुछ सन्देह के साथ पूछा।

"मैं अपना काम करूँगा; तुम अपना काम करो! हमें एक दूसरे के काम में दख़ल देने की ज़रूरत नहीं।"

"फिर भी!"

"सुनना ही चाहते हो! अच्छा सुनो! हम ज़ाब्ते की कार्रवाई करेंगे। हम कुछ दिन तक यहाँ मुक़ाम करेंगे। किसी को भीतर-बाहर आने-जाने न देंगे। फिर एक गश्ती चिट्ठी आगरे को रवाना करेंगे कि आसामी

फ़रार हो गया और हम उसका पीछा करने जा रहे हैं। इस तरह कुछ दिन इस क़स्बे में, कुछ दिन उस क़स्बे में रहेंगे। कोई जौहरी मिल गया तो उसके बाल-बच्चों की ख़ैर आफ़ियत पूछेंगे। फिर महीना पन्द्रह रोज़ बाद आगरे की जानिब रुख़ करेंगे। रास्ते से दो-चार धुनिया-जुलाहे पकड़ लेंगे। उन्हें ख़ूब ज़रदा-पुलाव छकायेंगे और उन्हें सिखा देंगे कि पूछने पर अपना नाम मुराद बेग बतलायें। आगरे पहुँच कर उनके हाथ-पैर बाँध देंगे और इस तरह एक की जगह चार मुरादबेग हुज़ूर में पेश कर देंगे।" मुस्कराते हुए अफ़सर ने धीरे-धीरे कहा।

"जब मैं हाज़िर हूँ तब मुझे गिरफ़्तार क्यों नहीं करते?"

"कह तो चुका हूँ। आपको गिरफ़्तार करने में मुझे क्या मिल जायगा? दरबार का हुक्म है कि आसामी मिल जाय तो इलाक़े में किसी से कुछ छेड़-छाड़ न की जाय। न उसके बाल-बच्चों को किसी तरह की तकलीफ़ दी जाय। इस हालत में मेरा नुक़सान तो है ही, आपके सर का भी ख़तरा है।"

"मगर उस ख़तरे से बचने के लिए मुझे भागना मंज़ूर नहीं है।"

"तब आप क्या चाहते हैं? कुत्ते की मौत मरना?"

"इसका फ़ैसला करना तुम्हारा काम नहीं है।"

"यह मैं जानता हूँ और साथ ही यह भी जानता हूँ कि जिसका यह काम है वह अपना काम बहुत पहले पूरा कर चुका है।"

"कोई परवाह नहीं। अब आप अपना काम पूरा कीजिए और उसके बाद मुझे अपना काम पूरा करने की इजाज़त दीजिए।"

"आप काफ़ी शरीफ़ हैं, मियाँ साहब!"

"मैं भी आपकी शराफ़त की क़द्र करता हूँ ।"

"आपके साथ ये दो शरीफ़ और कौन हैं ?"

"वे मेरे कोई नहीं हैं ।"

"मैं इम्दाद ख़ाँ हूँ, कड़ा का सरदार !" इम्दाद ने आगे बढ़ते हुए कहा ।

"मैं चम्पालाल हूँ; राजा भगवानदास का नज़दीकी ।"

"बहुत ख़ूब ! आप लोग ख़ुशी से दरबार की मेहमानी क़बूल कर रहे हैं, इसके लिए आपका शुक्रिया अदा करता हूँ ।"

एक अँगड़ाई लेकर विजयपाल उठ बैठा। पूर्व ओर के ऊँचे झरोखे से मन्द प्रकाश भीतर आ रहा था जिससे ज्ञात होता था कि सूर्य अब आसमान पर कहीं न कहीं अवश्य है। दूसरी ओर का झरोखा अब भी अंधकार विकीर्ण कर रहा था। उसने मन ही मन दोनों झरोखों की उँचाई का अनुमान किया। उछलकर भी उन तक पहुँच सकना सम्भव न था। फिर एक कातर दृष्टि उसने उस लौह-द्वार पर डाली जो उसे इस गन्दी, मैली और मोटी मोटी दीवालोंवाली कालकोठरी में बन्द किये था। हताश होकर उसने अपनी आँखें उधर से फेर ली और कमरे के सामान को देखने लगा। एक पुराना आबनूस का तख़्त, जिस पर वह सोया था; एक तिपाई और एक सुराही; बस० इतना ही सामान वहाँ था। अब उसकी दृष्टि दीवालों की ओर घूम गई। कुछ उँचाई पर दो-चार जालियाँ थीं, शायद हवा आने-जाने के लिए। प्रयास करने पर उन तक पहुँचा जा सकता था। दीवाल पर जगह-जगह लेख थे। शायद उन आत्माओं के जो अपने जीवन का कुछ भाग इस मनहूस कोठरी में बिता चुके थे और कोठरी की एकान्त नीरसता को बदलने के लिए जिन्होंने इन दीवालों को अपने हृदयों के उद्‌गार सौंप दिये थे। विजयपाल उठा और एक-

एक लेख को पढ़कर अपना मन बहलाने का प्रयत्न करने लगा। कुछ लेख कोयले से लिखे गये थे, कुछ ईंट के टुकड़ों से। दो-एक जगह स्याही मायल लाल रङ्ग के भी कुछ लेख थे। लेखनोपयोगी सामग्री के अभाव और लिखने की इच्छा के दबाव के कारण ही क़ैदियों ने जो सामग्री सुलभ हो सकी, उसी का उपयोग कर लिया था।

लेखों का विषय भी विभिन्न प्रकार का था जो एक ही जैसी परिस्थितियों के शिकार मानव की रुचि-विभिन्नता का परिचय दे रहा था। किसी ने भगवान् को याद किया था तो किसी ने अपनी प्रेयसी के नाम पर आँसुओं का अर्घ्य चढ़ाया था। किसी-किसी ने शासकों को भद्दी गालियाँ देते हुए उनके सर्वनाश की कामना की थी।

इस कोठरी में बन्द हुए उसे अभी एक रात ही बीती थी, फिर भी उसे ऐसा लगा कि मानो प्रकाश और जीवन के संसार से पृथक् हुए उसे एक ज़माना बीत चुका है। खेदपूर्ण एकरसता का अनुभव अपने जीवन में उसने प्रथम बार किया था। उससे रहा न गया। उसने तख़्त को खींच-कर झरोखे के नीचे दीवाल के सहारे खड़ा किया और फिर तिपाई के सहारे उस पर चढ़कर झरोखे से बाहर की ओर देखने लगा।

जाड़े का मनहूस सवेरा था। धूप फैल रही थी। खेतों में पौधों पर पड़ी ओस सूरज के प्रकाश में झिलमिला रही थी। सड़क पर पथिक आ-जा रहे थे, मोटे-मोटे काले लबादों में यथासम्भव अपने को लपेटे, विस्मय और भयपूर्ण दृष्टियों से बादलगढ़ की ओर देखते। वे जैसे स्वयं को इन मोटी दीवालों से बाहर रखने के लिए भगवान् को मन ही मन धन्यवाद देते जा रहे थे।

इसी समय उसे ऐसा लगा मानो कोई उसकी कोठरी का भीतरी द्वार खोल रहा है। वह तुरन्त नीचे उतर आया और शीघ्रतापूर्वक तिपाई और तख़्त को यथास्थान रखकर शान्ति के साथ प्रतीक्षा करने लगा। द्वार खुला और तीस-पैंतीस वर्ष की आयु का एक गेबीला युवक भीतर आया जो अपनी वेष-भूषा से कोई अधिकारी लगता था। आते ही उसने मुस्कराकर विजयपाल को अभिवादन किया और जेलदार के रूप में अपना परिचय दिया।

इस अप्रत्याशित सौजन्य और शिष्टाचार से विजय को कम आश्चर्य नहीं हुआ। उसने भी सज्जनोचित ढङ्ग से जेलदार के अभिवादन का उत्तर देते हुए उससे तख़्त पर बैठ जाने की प्रार्थना की।

"मैं सिर्फ़ यह देखने आया हूँ कि आपको कोई ख़ास तकलीफ़ तो नहीं है।" जेलदार ने सहज मुस्कराहट के साथ अपने आकस्मिक आगमन का कारण बतलाया।

"जी नहीं, आपकी कृपा है।" विजय ने भी उसी शिष्टता के साथ उत्तर दिया।

"आपकी तबीअत तो ठीक है न?" जेलदार ने दूसरा प्रश्न किया।

"जी, कोई ख़ास परेशानी नहीं है।"

"आपके सोने लायक़ पलँग का इन्तज़ाम यहाँ नहीं हो सकता, इसके लिए मुझे बड़ा अफ़सोस है। हरामी मुन्तज़िम यह भी ख़्याल नहीं करते कि शाहज़ादों के लिए किस तरह के सरोसामान की ज़रूरत होती है। फिर भी हत्तुलइमकान मेरे तख़्तों में जो तख़्त सबसे अच्छा था, वही इस कोठरी में लगाया गया है। कम्बल भी नये हैं। इतमीनान रखिए कि इन

कम्बलों को आपसे पहले किसी ने इस्तेमाल नहीं किया है। हाँ, कोठरी ज़रूर कुछ तंग है, और ज़्यादा अच्छी भी नहीं है। मगर फिर भी बादलगढ़ की सारी कोठरियों में यह सबसे ज़्यादा साफ़ और हवादार है। दूसरी कोठरियाँ तो ऐसी सीलनभरी और बदबूदार हैं कि किसी रईसज़ादे को उनमें रखने की हिम्मत कम से कम मुझे नहीं हो सकती। मुझे भी ख़ुदा के रूबरू जवाब देना होगा। यह कोठरी, जैसा कि कुछ दिन बाद आपको ख़ुद मालूम हो जायगा, बादलगढ में बहिश्त मानी जाती है और ख़ुदा न करे, अगर कभी मुल्ला पीर मोहम्मद को भी बादलगढ़ का मेहमान बनना पड़े तो उसके लिए भी इसी कोठरी में बिस्तरा लगाया जायेगा।" कहकर जेलदार हँसने लगा। विजयपाल ने भी इस विनोद में उसका साथ दिया।

"यों आपकी मेहरबानी से मुझे कोई ख़ास तकलीफ़ नहीं है, मगर अकेले रहने से जी ऊबता है। सबब यह है कि आज तक इस तरह तनहाई की ज़िन्दगी बसर करने का मौक़ा नहीं आया। अगर पढने-लिखने का कुछ सामान मिल सके तो वक्त काटने में आसानी होगी।" जेलदार के सौजन्य से साहस पाकर विजयपाल ने कहा।

"आपकी माँग मुनासिब है और इन्सानियत का तक़ाज़ा भी यही है कि ख़ुदा के बन्दों को और कुछ नहीं तो पढ़ने-लिखने की नियामत से तो महरूम न रक्खा जाय; मगर देखता हूँ कि इन जङ्गलियों को इससे भी गुरेज़ है। ख़ुदा जाने किस मसाले से बने हैं। अरे बाबा, गीता-भागवत और कुरानमजीद दे देने से क्या बिगड़ता है! मगर यहाँ इसकी भी सख़्त मुमानियत है। फिर भी अगर आपकी यही मंशा है तो मैं इसका कुछ न

कुछ इन्तज़ाम करूँगा। आपको मालूम होना चाहिए कि मैं भी अपने बाल-बच्चों के साथ इसी परकोटे के भीतर रहता हूँ। मैं ऐसा इन्तज़ाम कर दूँगा कि आप वक़्त-बे-वक़्त मेरे ग़रीबख़ाने में आ-जा सकेंगे। यह मेरी ख़ास रिआयत सिर्फ़ उन चन्द क़ैदियों के हक़ में है जिन्हें मैं ख़ानदानी और शरीफ़ समझता हूँ। वहाँ आने-जाने से आपको मेरे बच्चों के साथ दिल बहलाने का मौक़ा भी मिलेगा, और अपने हमजिन्सों के साथ गुफ़्तगू और हँसी-दिल्लगी करके आप अपना ग़म भी ग़लत कर सकेंगे। मैं आपको यह भी बता देना चाहता हूँ कि मेरे ग़रीबख़ाने पर बहुत-सी किताबें आपको इधर-उधर बिखरी पड़ी मिलेंगी। आप उनमें से जिसको पसन्द करें, मेरी आँख बचाकर जेब में रक्खे चले आयें। मैं ऐसे मामलों में दीदओ दानिश्ता चश्मपोशी करने का आदी हूँ, इसलिए आपको ज़्यादा तरद्दुद न करना पड़ेगा। फिर दूसरी मर्त्तबा जाने पर आप उस किताब को बदलकर उसी तरह दूसरी किताब ले आ सकते हैं।"

"बड़ी इनायत है। क़लम-दावात और काग़ज़ का सवाल फिर भी रह जाता है। मैं कुछ शायरी करता हूँ और इसके लिए यह एक नादिर मौक़ा है।"

"बेशक, कहा भी है—"चूँ मज़ामीं जमअ गरदद शायरी दुश्वार नेस्त*।" और इस तल्ख़लिये की ज़िन्दगी में मज़मूनों की कमी नहीं रहती। देखते नहीं हैं कि जब कुछ चारा नहीं रहता तब लोग कोठरी की दीवलों पर ही अपने जज़बात ज़ाहिर कर बैठते हैं। कुछ दिन पहले की बात है, सूरी ख़ानदान के एक शाहज़ादे साहब यहाँ आकर मेहमान बने

---

*भाव एकत्र हो जाने पर कविता करना कठिन नहीं होता।

थे। शायरी का वलवला जो उठा तो उन्होंने अपनी उँगली में सुराही के खपड़े से शिगाफ़ लगा लिया और फिर उससे टपकते हुए ख़ून से ही दीवालों पर लिख मारा। वह देखिए !"

कहकर जेलदार ने दीवाल पर लिखी स्याही माइल पंक्तियों की ओर इशारा कर दिया।"

"मेरा अन्दाज़ भी यही था।"

"तो आप इन सारी इबारतों को पढ़ चुके हैं। यह ठीक ही है। आपकी हालत में होने पर मैं भी ऐसा ही करता। ख़ैर, आपके लिए कुछ न कुछ इन्तज़ाम करने की कोशिश करूँगा।"

"मैं आपका बहुत-बहुत मशकूर रहूँगा।"

"तो आप आज शाम को मेरे ग़रीबख़ाने पर तशरीफ़ लाइएगा ?"

"बड़ी कृपा है। समझ में नहीं आता कि आपके इस प्रकार के उपकार का बदला किस तरह चुकाऊँगा। यदि मैं आज़ाद होता, और मेरे सामने मौत की सज़ा के अलावा कोई दूसरी चीज़ होती......।"

"सज़ाये मौत ! यह आप क्या कह रहे हैं ?" आश्चर्य के साथ जेल-दार ने पूछा।

"मैंने जो कुछ किया है उसके लिए इसके सिवा दूसरी सज़ा नहीं दी जा सकती।" उदासी के साथ विजयपाल ने उत्तर दिया।

"आपका ख़्याल ठीक हो तब भी आप कुछ ग़लती कर रहे हैं। मौत कोई ऐसी सज़ा नहीं है जो इन्सान की ईजाद हो। वह तो अल्लाताला की ख़ास रहमत है और हर कसोनाकस को आख़िरकार उसका सामना करना पड़ता है; किसी को आज, किसी को अगले दिन; किसी को चार

रोज़ बाद ! जो दूसरों को मारकर यह समझते हैं कि वे ख़ुद अमर हैं, उनसे बड़ा बेवक़ूफ़ और कौन होगा। इस तरह जब मौत एक ऐसी सज़ा है जो ज़रूर मिलेगी तब हमें उसकी ओर से बेफ़िक्र होकर दुनिया की रंगीनियों में लौलीन हो जाना चाहिए। 'जब मरना ही है तब उससे पहले कुछ देख सुन क्यों न लें!' यही तो शेख़ सादी का क़ौल है। ख़ैर, तो मेरी अर्ज़ यह है कि शाम को अगर मैं इन्तज़ाम कर सका तो जनाब को मेरे ग़रीबख़ाने पर तशरीफ़ लाने में कुछ एतराज़ तो न होगा!"

"हरगिज़ नहीं। आपकी इस इनायत के लिए हज़ार-हज़ार शुक्रिया।"

"मेहरबानी है!" कहकर जेलदार जिस द्वार से आया था, उसी से वापस हो गया।

उसके चले जाने पर विजय शान्तचित्त से अपने तख़्त पर बैठ गया और उसकी बातों पर विचार करने लगा। बड़ा शिष्ट, मिलनसार और भलामानस है। लंका में हरिभक्त भी हो सकता है, इसकी कल्पना विजय को न थी। इस अप्रत्याशित सौजन्य से वह बहुत प्रभावित हुआ। पर कुछ ही देर बाद उसकी विचार-धारा ने दूसरी दिशा पकड़ी। कहीं इस सारी शिष्टता, समस्त सौजन्य और नम्रता के बीच कोई कपट तो नहीं छिपा हुआ है। बुद्धिमानों ने कहा है कि लाल-लाल आँखें निकालकर मारने के लिए तलवार उठानेवाले शत्रु से वह शत्रु अधिक भयंकर होता है जो हँसकर मिलता है। जेलदार की चाल भी कुछ ऐसी ही तो नहीं है कि वह मुझे मीठी-मीठी बातों में फँसाकर, जीवन के सुख-भोगों का लालच देकर या मुझे अतिरिक्त सुविधायें देकर मेरे मन का रहस्य जान लेना चाहता हो। इस विचार के आते ही उसे रोमांच हो आया और उसने मन

ही मन निश्चय कर लिया कि चाहे उसे तिल-तिल गलते हुए इसी कोठरी में जीवन समाप्त कर देना पड़े पर वह किसी प्रलोभन, किसी भय के आगे सिर न झुकायेगा और न अपने मित्रों के सम्बन्ध में किसी को कुछ बतलायेगा। उसका हृदय किसी अज्ञात आशंका, भय और सन्देह से भर गया। उसने सोचा लिखने-पढ़ने की सुविधा माँगकर उसने उचित नहीं किया। मन की विचित्र अवस्था होती है। पता नहीं काग़ज़-क़लम-दावात पास रहने पर कब क्या लिख जाय, जिससे शत्रु हमारे को षड्यन्त्र का कुछ सूत्र मिल जाय। नहीं, वह इन सुविधाओं को स्वीकार नहीं करेगा।

तुरन्त ही उसे अपने मित्रों का ध्यान आया जो आगरे की ओर टक-टकी लगाये किसी शुभ सूचना की प्रतीक्षा कर रहे होंगे। उन्हें यह भी ज्ञात न होगा कि मैं यहाँ आकर किस संकट में पड़ गया हूँ। कहीं ऐसा न हो कि शत्रु उन्हें कुछ उलटी-सीधी ख़बरें भेज दे जिनके आधार पर काम करके वे अपना सर्वनाश कर बैठें।

सबसे अन्त में उसे नन्दा का ध्यान आया। कैसे नाज़ुक मौक़े पर उसे नन्दा से अलग हो जाना पड़ा। इतना भी सुयोग न मिल सका कि नन्दा को स्वयं शेख़ साहब की गोद में सौंप सकता। बेचारी का क्या हुआ होगा। अवश्य ही वह गिरफ़्तार करके फिर उसी मकान में, उसी औरत की सुपुर्दगी में, पहुँचा दी गई होगी। उसका हृदय अज्ञात वेदना से भर गया, अपने लिए कम; नन्दा के लिए अधिक। निष्क्रिय-क्रोध के आवेश में उसने अपने दोनों हाथ तख़्त पर दे मारे और फिर शरीर को ढीला छोड़कर एक ओर को गिर पड़ा, मानो उसकी चेतना जवाब दे गई हो।

परन्तु इस अर्द्धविक्षिप्त मनोदशा में अधिक काल तक रह सकना विजयपाल के लिए संभव न हो सका। द्वार खुलने का फिर शब्द हुआ। पर इस बार आनेवाला जेलदार नहीं था। वह कोई ऊँचा अधिकारी था जिसके चेहरे से पदगौरव, अभिमान और रोब प्रकट हो रहे थे। उसे भीतर आते देख विजयपाल उठकर खड़ा हो गया। उसके पीछे एक मुंशी भी भीतर आया जिसके हाथ में एक बस्ता था। उसके बाद दस सशस्त्र सिपाही आए। उन्हें देखकर विजयपाल मन ही मन जगदम्बा का ध्यान करने लगा।

आते ही आते अधिकारी ने प्रश्नों की झड़ी लगा दी। पर विजयपाल ने किसी प्रश्न का उत्तर न दिया। उसने केवल यही कहा कि मैं सर्वथा निर्दोष हूँ, और मुझे यह भी नहीं मालूम कि किस अपराध के फलस्वरूप मुझे पकड़कर यहाँ बन्द कर दिया गया है। विजयपाल के इस उत्तर पर अधिकारी ने ऐसा भाव प्रदर्शित किया मानो उसे बहुत क्रोध आ गया है। उसकी चढ़ी भवें देखकर विजयपाल अपनी हँसी न रोक सका। इस पर अधिकारी और भी आपे से बाहर हो गया और बोला—"तुम ख़ानख़ानाँ की हत्या करना चाहते थे?"

"यह तुमने कैसे जाना?" विजय ने उलटकर प्रश्न किया।

"किसी तरह जाना, पर यह सच है न?"

"जब तुम्हें सब कुछ मालूम है, तब मुझसे क्यों पूछते हो!"

"मैं मज़ाक़ नहीं करता।" अधिकारी ने कुछ अप्रतिभ होकर कहा।

"मेरा भी इरादा ऐसा नहीं है।"

"मगर इस तरह की बातों से आपको कुछ फ़ायदा न होगा!"

"तब क्या आपकी राय में मेरा फ़ायदा उन सब बातों को क़बूल कर लेने से होगा, जो आप मुझसे क़बूल करवाना चाहते हैं।"

"असलियत मुझसे छिपी नहीं है। इसलिए सच बात छिपाने से कुछ फ़ायदा न होगा।"

"उस हालत में मेरा जवाब यही है कि जब आप मुझसे ज़्यादा जानकारी रखते हैं, तब मुझसे पूछने में क्या लाभ?"

"ठीक कहते हो। मुझे तुम्हारे और तुम्हारे साथियों के बारे में सभी कुछ मालूम है।" झुँझलाहट के साथ सिर हिलाते हुए अधिकारी ने कहा।

विजय ने कुछ उत्तर नहीं दिया।

"मैं सिर्फ़ तफ़सीलवार हर एक बात जानना चाहता हूँ। इसी लिए तुमको तकलीफ़ दे रहा हूँ।"

"आपके ख़ुफ़ियानवीस पूरी-पूरी तफ़सील दे सकेंगे और इस हद तक कि उसके बारे में ख़ुद मुझे भी कुछ कम ताज्जुब न होगा।"

"हूँ, अच्छा; अगर मैं सरदार कुशलपाल की बाबत कुछ पूछूँ तो आप क्या जवाब देंगे?"

"यही कि जो ग़लती मेरे साथ हुई है, वही शायद उनके साथ भी हुई होगी।"

"ओ हो! तब आप शायद सरदार कुशलपाल साहब को जानते हैं?"

"मैं उनको केवल एक मित्र के रूप में जानता हूँ जो मुझे सीकरी की सैर करानेवाले थे।"

"जी हाँ, सीकरी के हर मुक़ाम की, यही न! और यहाँ के ख़ास-ख़ास बाशिन्दों की भी!"

"इससे कुछ छिपा नहीं है।" विजय ने मन ही मन सोचा।

"क्या मेरे इस सवाल का भी कोई जवाब आपके पास है?" आँखें घुमाते हुए अधिकारी ने पूछा।

"जी, मैं आपके प्रश्न को ठीक से समझ नहीं पाया; नहीं तो कुछ न कुछ उत्तर ज़रूर देता।"

"शेख़ कमाल बियाबानी से तो आप ज़रूर मिले होंगे?"

"जी, सरदार कुशलपाल ने उनसे मेरी भेंट कराई थी। उन्होंने मुझे शेख़ साहब का परिचय भी दिया था और कहा था कि उत्तरी हिन्दुस्तान के पहुँचे हुए फ़क़ीरों में शेख़ साहब का विशेष स्थान है।"

"सरदार साहब के साथ आपकी और क्या-क्या बातें हुई थीं?"

"आपके ख़ुफ़ियानवीसों को सब कुछ मालूम होगा। उन्हीं से पूछना ठीक रहेगा।"

"इस तरह हीलेहवाले करने से कोई फ़ायदा नहीं। उनसे सब कुछ पूछा जा चुका है और उसके बाद आपसे पूछा जा रहा है।"

विजय के शरीर में ऊपर से नीचे तक कंपन हुआ। बड़ी कठिनता से वह अपने को सँभाल पाया। उसके भावों का यह आकस्मिक परिवर्तन प्रश्नकर्त्ता से छिपा न रह सका। अतः उसने विजय के मर्मस्थल को स्पर्श करने का प्रयत्न करते हुए पूछा—"क्या आप सरदार साहब से मिलना चाहते हैं?"

"इस समय तुम्हारे हाथ में हूँ; जहाँ ले जाओगे, वहाँ जाऊँगा; जिससे मिलाना चाहोगे, उससे मिलूँगा।" कुढ़ते हुए विजय ने उत्तर दिया। साथ

ही उसने मन ही मन निश्चय कर लिया कि यदि उसे कुशलपाल से मिलाया गया तो वह कम से कम उसके मुँह पर थूक अवश्य देगा।

"अच्छी बात है। आप सब कुछ समझते हैं। आप शायद यह भी जानते होंगे कि मुझे यह भी मजाज़ है कि अपने सवालों का जवाब आपसे जिस तरह चाहूँ, उस तरह हासिल करूँ। मेरा मतलब यह है कि मैं असामी से 'मामूली' और 'ग़ैर मामूली' दोनों तरीक़ों से जवाब ले सकता हूँ।" 'मामूली' और 'ग़ैर मामूली' शब्दों पर ज़ोर देते हुए अधिकारी ने कहा।

विजय का सारा शरीर पसीने से भीग गया। उसने सुन रक्खा था कि असामियों से अपराध स्वीकृत कराने के जो तरीक़े बादलगढ़ में प्रचलित हैं, वे अत्यन्त अमानुषिक हैं। उनकी अपेक्षा मृत्यु का सामना कहीं अधिक सुखकर है। क्योंकि उन तरीक़ों में अपराधियों को मरणान्तक कष्ट तो होता ही है, प्रायः उनका अंगभंग भी हो जाता है: जिससे उनका सारा जीवन बेकार हो जाता है।

"कोई है!" अधिकारी ने उच्च स्वर से पुकारा।

दो सिपाही आकर सामने हाज़िर हो गये।

"आप शरीफ़ ख़ानदान के शाहज़ादे हैं और 'मामूली' और 'ग़ैर मामूली' सवालों का जवाब देने में आपको कोई एतराज़ नहीं है। आपको उधर ले चलिए।" अधिकारी ने आदेश दिया।

'जिस भयानक क्षण की कल्पना कर रहा था, वह आ पहुँचा। मा शक्ति, मुझे साहस दे।' विजय ने मन ही मन कहा। इसके बाद वह उठकर खड़ा हो गया और अधिकारी के संकेत पर चुपचाप दोनों सिपाहियों

के पीछे चल दिया। उसकी इस प्रकार की दृढ़ता पर अधिकारी को आश्चर्य नहीं हुआ।

गलियारा, एक गुम्बद, फिर एक गलियारा पार करके सिपाहियों के पीछे-पीछे विजयपाल एक ऐसे गुम्बद के नीचे पहुँचा जिसमें नीचे की ओर जाने के लिए पत्थर की सीढ़ियाँ बनी थीं। 'हवस का यही मार्ग है' विजयपाल ने सोचा। एक बार मन ही मन फिर शक्ति का ध्यान करके वह स्थिर चरणों से नीचे उतरने लगा।

आठ-दस सीढ़ियाँ उतरने के बाद उसे फिर एक गलियारे से चलना पड़ा जिसके दोनों ओर छोटी-छोटी कई कोठरियाँ एक क़तार में बनी हुई थीं। इन भूगर्भगृहों के द्वार लोहे की मोटी-मोटी छड़ों से बने थे जिससे गलियारे में आनेवाले नाम-मात्र प्रकाश की कुछ झलक उनके अभागे निवासियों को भी मिल सके। लगभग प्रत्येक कोठरी से कराहने की मर्मभेदी ध्वनि आ रही थी जो विजयपाल के हृदय को हिला देने के लिए काफ़ी थी।

'भगवान् को याद करो, पंथी!' एक कोठरी से आवाज़ आई जो शायद विजयपाल को लक्ष्य कर कही गई थी। विजयपाल ने उस पर ध्यान नहीं दिया।

'राम-राम सत्य है!' दूसरी कोठरी में पड़े क़ैदी ने आर्त्तस्वर से पुकारा। विजयपाल कुछ ठिठका। फिर आगे बढ़ा।

'सत्य बोलो मुक्ति है!' एक और कोठरी से किसी ने कहा। विजयपाल ने मन ही मन निश्चय किया कि वह सत्य पर दृढ़ रहेगा।

सब लोग कुछ दूर और आगे बढ़े। अब वे एक ऐसे कमरे के पास

पहुँच गये थे जिसमें प्रकाश अपेक्षाकृत कुछ अधिक था। यह प्रकाश कमरे की छत में लगे चार बड़े-बड़े रोशनदानों से आ रहा था।

"यहीं ठहर जाइए।" सिपाहियों में से एक ने कहा। विजय खड़ा हो गया। उसने एक बार अन्वेषक की दृष्टि से उस काल-कोठरी को देखा। दीवालों में लोहे की कई खूँटियाँ गड़ी थीं जिन पर कहीं ज़ंजीर लटक रही थी, कहीं लोहे की चलनी जैसी कोई चीज़। फ़र्श पर भी कई विचित्र-विचित्र वस्तुएँ रक्खी थीं जिन्हें इससे पहले उसने कभी नहीं देखा था।

"यह देखिए!" एक काठ की चौकी की ओर संकेत करते हुए अधिकारी ने कहा। चौकी लगभग दो हाथ ऊँची थी। उसके एक सिरे पर लोहे का एक मोटा कड़ा लगा था। दूसरे सिरे पर बराबर में वैसे ही दो कड़े लगे थे जो अपेक्षाकृत कुछ छोटे थे। ये कड़े एक प्रकार के शिकंजे थे जिनकी गोलाई को आवश्यकतानुसार घटाने-बढ़ाने के लिए चूड़ीदार चाबियाँ थीं।

"आसामी को इस चौकी पर लिटाते हैं। बड़े कड़े में गर्दन फँसा दी जाती है और उन दोनों छोटे कड़ों में दोनों टाँगें, जिससे वह इधर-उधर हिल-डुल नहीं सकता। इसके बाद यह पच्चर धीरे-धीरे ठोंककर चौकी और उसकी पीठ के बीच में बढ़ाई जाती है जिससे उसका पेट ऊँचा उठना शुरू होता है। पच्चर कितनी बढ़ाई जाय, इसका फ़ैसला आसामी की हालत पर मुनहसर करता है। कुछ असामी एक-दो ठोंक लगने के बाद ही सवालों का ठीक-ठीक जवाब देने लगते हैं, इसलिए उनसे ज़्यादा छेड़-छाड़

नहीं की जाती। पर कुछ ऐसे भी होते हैं जो आधी पच्चर ठोंक दिए जाने पर ही पते की बात बतलाते हैं। कुछ असामी उनसे भी सख़्त होते हैं। हालाँकि ऐसे असामी अपने दो साल के वक़्त में मुझे दो ही मिले हैं जिनके नीचे पूरी पच्चर चला देनी पड़ी, और फिर उसी हालत में उन्हें दो-तीन पहर रहने दिया गया तब कहीं जाकर उनके दिमाग़ ठीक हुए। मगर इस चौकी का काम सिर्फ़ इतना ही नहीं है। पूरी पच्चर चले जाने के बाद भी असामी अगर अपनी ज़िद न छोड़े तो उस चिलमची के ज़रिये उसके पेट में मुँह के रास्ते पानी पहुँचाया जाता है। पानी की तादाद एक से लेकर दस-बारह चिलमचियों तक हो सकती है। जब असामी अपना मुँह बन्द कर लेता है और पानी नहीं पीना चाहता तब उसकी नाक को काठ की इस चुटकी से बन्द कर देते हैं। मजबूर होकर साँस लेने के लिए वह ज्यों-ज्यों मुँह खोलता है, पानी उसके मुँह में उँडेल दिया जाता है, यहाँ तक कि उसका पेट फूलकर नगाड़ा हो जाता है। पर ऐसा शायद ही कोई असामी पसन्द करता है। क्योंकि उस हालत में पहुँचने के बाद जो असामी जवाब देते हैं, वे अपनी सेहत से हमेशा के लिए हाथ धो बैठते हैं। उनकी आँतें ख़राब हो जाती हैं और फिर उनके लिए पानी तक हज़म करना मुमकिन नहीं होता।"

विजयपाल शान्ति के साथ सारी कहानी सुनता रहा। यंत्रणा के विभिन्न प्रकारों का विवरण अभी पूरा नहीं हुआ था।

"यहाँ की यह सबसे हलकी सज़ा है जिसे सिर्फ़ 'मामूली' सवालों का जवाब पाने के लिए इस्तेमाल किया जाता है। 'ग़ैर-मामूली' सवालों के लिए दूसरे तरीक़े से काम लिया जाता है। इधर देखिए।" एक दूसरे

यन्त्र की ओर संकेत करते हुए अधिकारी ने कहा—"इस तख़्त के छेदों में असामी की दोनों टाँगें फँसा दी जाती हैं और फिर नीचे उनमें बेड़ियाँ पहना दी जाती हैं। इसके बाद दोनों हाथ इस लट्ठे के दोनों ओर करके ऊपर हथकड़ियों से बाँध दिये जाते हैं। इस तरह जब ऊपर को बाँहें और नीचे को टाँगें किये हुए असामी जमकर तख़्त पर बैठ जाता है तब इस खुरहरे से धीरे-धीरे उसकी पीठ की खाल साफ़ करते हैं। इसके बाद साफ़ की गई जगह पर नमक मिले पानी का पुचारा बार-बार फेरते हैं। जो असामी ज़्यादा हठीले होते हैं, उनके साथ यह कार्रवाई पहर दो पहर तक जारी रक्खी जाती है। इससे खाल के बाद उनकी पीठ का गोश्त भी छिल जाता है। इस सज़ा में इतनी ज़्यादा तकलीफ़ होती है कि कैदी कुछ ही देर बाद अकसर बेहोश हो जाता है। ऐसा होने पर उसे होश में लाने के लिए आँखों में पिसी हुई मिर्च लगा देते हैं, या लख़लख़ा सुँघाकर उसे बार-बार होश में लाना पड़ता है।

"इस तरकीब में भी कामयाबी न मिलने पर एक तीसरी तरकीब से काम लेना पड़ता है। यह देखिए," कहकर अधिकारी ने कुछ पतली फाँसें दिखलाईं जो बाँस से बनी थीं। उसके बाद कहा—"इन्हें इस्तेमाल करने का तरीक़ा यह है कि असामी के दोनों हाथ इस तख़्ते के छेदों में से दूसरी ओर को निकाल दिये जाते हैं। इसके बाद उनमें हथकड़ियाँ डाल देते हैं जिससे असामी हाथ वापस नहीं खींच सकता। काम की सहूलियत के लिए एक तिपाई पर दोनों हाथ जुड़े हुए इस तरह रखाये जाते हैं कि अँगुलियाँ खुली रहें। फिर इनमें से एक फाँस एक अँगुली के नाख़ून में धीरे-धीरे ठोंकी जाती है। जब इससे भी काम नहीं चलता तब दूसरी अँगुली

में फाँस ठोंकी जाती है। इस तरह कभी-कभी दसों अँगुलियों के नाखूनों में फाँसें ठोंकना ज़रूरी हो जाता है। कहने की ज़रूरत नहीं, कि इस सज़ा में इतनी तकलीफ़ होती है कि अकसर असामी पहली फाँस ठोंकने के वक्त ही पाखाना-पेशाब कर देते हैं।"

"बस-बस, इतना काफ़ी है। अब ज़्यादा तशरीह की ज़रूरत नहीं। क्योंकि इस तरह तकलीफ़ों की व्याख्या करने से वे और भी ज़्यादा भयानक बन जाती हैं। पर यदि आपका मतलब यह हो कि इन तकलीफ़ों में से मैं अपने पसन्द की एक चुन लूँ तो चुनाव का यह अधिकार मैं आप पर छोड़ता हूँ। आप मेरे लिए जो तरकीब मुनासिब समझें, करें। यदि मुझ पर मेहरबानी करना चाहते हो तो ऐसी सज़ा चुनें जिससे मेरे प्राण जल्द ही निकल जायँ और मुझे बहुत देर तक कष्ट का अनुभव न करना पड़े।" विजय ने सूखे मुँह से उत्तर दिया।

"तब मुनासिब यही है कि आप मेरे सवालों का ठीक-ठीक जवाब दे दें। उस हालत में आपको किसी तकलीफ़ का सामना नहीं करना पड़ेगा।"

"जब आपके सवालों की बाबत मुझे कुछ मालूम ही नहीं है तब मैं जवाब क्या दूँ?" विजय ने दृढ़ता से उत्तर दिया। यह सुन अधिकारी भी मन ही मन उसकी प्रशंसा करने लगा। फिर उसने कहा—"इस तरह लड़कपन दिखाना ठीक नहीं है। तकलीफ़ें आख़िर तकलीफ़ें हैं और जब उनका सामना करना पड़ता है तब रोते-धोते असामी भेद की सारी बातें बतला जाता है।"

"आज़मा देखिए न।" विजय ने फिर सूखे मुँह से कह दिया।

"अब भी वक्त है, और मैं चाहता हूँ कि आपके साथ मुझे सख्त कार्रवाई न करनी पड़े।" अधिकारी ने फिर समझाया।

"सुनिए। मैंने यह निश्चय कर लिया है कि जब आप मुझे यातना देने के लिए किसी शिकंजे में कसेंगे तब मैं अपनी साँस रोक लूँगा। और इस तरह स्वयं अपनी जान दे दूँगा। आपकी सारी कोशिशें बेकार जायँगी। अब आप ही सोचिए कि जब मैं उन यंत्रणाओं की परवाह नहीं करता, तब आपकी धमकियों से क्योंकर डर सकता हूँ।" विजय ने कुछ रुखाई और कुछ दृढ़ता का प्रदर्शन करते हुए कहा।

"अच्छी बात है।" कहकर अधिकारी ने दो जल्लादों को संकेत किया। उनके पास पहुँचते ही विजय में मानो दैवी स्फूर्ति आ गई और उसने अपना अँगरखा उतारकर एक ओर रख दिया और 'अग्निपरीक्षा' के लिए तैयार हो गया। जल्लाद विजय का हाथ पकड़कर चौकी के पास ले गये।

"पानी ?" एक जल्लाद ने प्रश्न किया।

"हाँ, वहीं से शुरू करो।" अधिकारी ने आज्ञा दी।

विजय की गर्दन और दोनों टाँगें लोहे के कड़ों में फँसा दी गईं। इसके बाद चूड़ियों से कड़ों को धीरे-धीरे कस दिया गया। यहाँ तक कि विजय के लिए ग्रीवा और टाँगों को ज़रा-सा भी हिलाना-डुलाना असंभव हो गया। इसके बाद पच्चरवाला तख़्ता और काठ का मोंगरा लाकर चौकी पर रक्खे गये। फिर नाक दबानेवाली चुटकी लाकर रक्खी गई। फिर चिलमचियाँ पानी से भर गईं और एक-एक करके धीरे-धीरे लाकर चौकी के पास रक्खी गईं।

विजय की दृष्टि इस समय ऊपर की ओर थी। फिर भी सामान के उठाने और रखने के शब्द से यह अनुमान कर लेना उसके लिए कठिन न था कि कब क्या लाया जा रहा है। वह धैर्य के साथ आगामी विपत्ति को सहन करने के लिए अपने हृदय को तैयार कर रहा था। एक-एक क्षण का विलम्ब उसे युगों जैसा लम्बा लग रहा था।

सब सामान यथास्थान सजाकर जल्लादों ने आज्ञा के लिए एक बार अधिकारी की ओर देखा। विजय ने समझ लिया कि परीक्षा का वह क्षण अब पास आ गया है जिसके स्वागत की तैयारी वह पिछले कई महीनों से कर रहा था।

"छोड़ दो।" अधिकारी ने आज्ञा दी।

जल्लादों ने शिकंजे खोल दिये। विजय उठकर बैठ गया।

"इसे इसकी कोठरी में पहुँचा दो।" अधिकारी ने दूसरी आज्ञा दी।

विजय चुपचाप उठा और अपने वस्त्र ठीक करके सिपाहियों के पीछे-पीछे चल दिया। जब वह भकसियों के पास से जा रहा था, एक क़ैदी ने कहा—"मालूम पड़ता है, मुख़बिर बन गया है।"

"तभी चिकना-चन्दा जा रहा है, हरामी!" दूसरे ने उसका समर्थन किया।

विजय ने इस धिक्कार का कोई उत्तर नहीं दिया। वह चुपचाप अपनी कोठरी में पहुँचकर तख़्त पर लेट रहा।

विजय की समझ में नहीं आया कि अधिकारी ने उसे इतनी आसानी से क्यों छोड़ दिया और उस पर आनेवाली विपत्ति सहसा कैसे टल गई। फिर भी उसने मन ही मन ईश्वर को बारंबार धन्यवाद दिया। साथ ही उसे यह विचार भी आया कि शायद मेरे विरुद्ध उन लोगों के पास काफ़ी सबूत हैं जो विश्वासयोग्य हैं। इसी लिये मेरी अपराध-स्वीकृति विशेष आवश्यक नहीं समझी गई। सम्भवतः वे मेरे अपराधों पर विचार करेंगे और फिर एक बार ही मुझे मौत की सज़ा की आज्ञा दे देंगे।

बादलगढ़ की नारकीय झाँकी का एक विपरीत प्रभाव भी उसके मस्तिष्क पर पड़ा। उसे यह देखने का पूरा अवसर मिल गया कि अन्य क़ैदी यहाँ किस प्रकार और कैसी कोठरियों में रक्खे जाते हैं। उन अँधेरी, सीलन भरी और दुर्गन्धपूर्ण कोठरियों से अपनी कोठरी उसे सैकड़ों गुना अच्छी और साफ़ दिखाई दी और उसकी समझ में जेलदार के उन शब्दों का अभिप्राय ठीक-ठीक आ गया कि यह कोठरी बादलगढ में बहिश्त समझी जाती है।

कोठरी का नाममात्र प्रकाश अब फीका होने लगा। विजय ने समझ लिया कि अब संध्या होने में देर नहीं है। तख़्त पर चढ़कर जँगले से

बाहर झाँकने का विचार एक बार फिर उसके मन में आया। पर वह उठने ही वाला था कि भीतर का द्वार खुल गया और एक सिपाही ने आकर शिष्टतापूर्वक सूचना दी कि जेलदार साहब अपने डेरे पर उसे याद कर रहे हैं। बिना आगा-पीछा किये वह उठा और सिपाही के पीछे-पीछे हो लिया। कुछ गलियारों, बरामदों और सहनों को पार करता हुआ वह एक बारहदरी जैसे कमरे में पहुँचा। उससे सटा हुआ ही एक बड़ा-सा मकान था। बारहदरी में बराबर-बराबर कई छोटे-छोटे तख़्त बिछे हुए थे। शायद यह जेलदार की चौपाल थी। विजय से वहीं ठहरने को कहकर सिपाही मकान की ओर चला गया।

कुछ ही देर बाद जेलदार अपनी सज्जनतापूर्ण स्वाभाविक मुस्कान के साथ आता दिखाई दिया। उसने आते ही शिष्टाचार के साथ पहले विजय को अभिवादन किया, फिर बोला—"आपसे पेश्तर ही एक अर्ज़ करना चाहता हूँ।"

"क्या?" विजय ने कुछ चौकन्ना होते हुए पूछा।

"आप वचन दें कि जब तक यहाँ रहेंगे, भागने की कोशिश नहीं करेंगे।"

"मेरे कह देने भर से आपको इतमीनान हो जायगा?"

"शरीफ़ की बात ही बहुत कुछ होती है।"

"मैं वचन देता हूँ।"

प्रसन्नता के आवेश में जेलदार ने विजयपाल का हाथ पकड़ लिया और उसे अपने मकान के भीतर एक सुसज्जित कमरे में ले गया जहाँ तीन व्यक्ति पहले से ही बैठे हुए थे।

"आप क़न्नौज के सरदार विजयपाल जी हैं। अभी पिछले दिन से ही आप हमारे मेहमान हुए हैं।" उपस्थित व्यक्तियों को विजयपाल का परिचय देते हुए जेलदार ने कहा। इसके पश्चात् उसने विजयपाल को उपस्थित लोगों का परिचय कराया—

"शाह अब्दुल मुआली—आप तैमूरी अमीरों के पेशवा हैं। आप पर ख़ानख़ानाँ की ख़ास मेहरबानी है। और इसी सबब आजकल हमें मशकूर फ़र्मा रहे हैं।" विजयपाल ने शाह को शिष्टता के साथ अभिवादन किया।

"अमजद ख़ाँ— मालवा के सरदार बाजिद ख़ाँ उर्फ़ बाज़बहादुर के शाहज़ादे। आप अपने वालिद मरहूम की तरह ही दरियादिल और नेक मिज़ाज हैं।"

"नवाब बाज़बहादुर चाचा जी के घनिष्ठ मित्रों में थे।" कहकर विजयपाल ने नम्रता के साथ ख़ाँ को अभिवादन किया।

"हुसेन मिर्ज़ा, अहमदाबाद के सूबेदार—आपने इस आधी उम्र में ही ज़माने के ऐसे-ऐसे रंग देखे हैं कि बस तोबा है।"

विजयपाल ने उसे भी अभिवादन किया।

इसके बाद सब यथास्थान बैठ गये और सबके सामने एक छोटी-सी चौकी पर जेलदार बैठ गया। विजयपाल ने बैरम ख़ाँ के प्रताप-सूर्य से पराभूत इन नक्षत्रों को एक-एक करके ध्यान से देखा। एक अज्ञातपूर्ण संवेदना से उसका हृदय भर गया। साथ ही इस विचार से कि वह अकेला नहीं है, उसके हृदय को बहुत कुछ सान्त्वना भी मिली। बादलगढ में ऐसे-ऐसे न जाने कितने जीव हैं जो प्रतिष्ठा, कुल-गौरव

और भाग्य में उससे किसी प्रकार कम नहीं हैं। साथ ही उसी की भाँति आज एक निराश्रित और विचाराधीन क़ैदी का जीवन व्यतीत कर रहे हैं। इन महान् व्यक्तियों की मौजूदगी में वह अपने को बहुत कुछ भूल-सा गया। इस परिचय के लिए मन ही मन उसने जेलदार को बार-बार धन्यवाद दिया।

"आज ख़ूबानी की बारी है न, ख़ाँ साहब?" अमजद ख़ाँ की ओर देखकर जेलदार ने कुछ मुस्कराते हुए पूछा।

"जो मर्ज़ी!" अमजद ख़ाँ ने भी सहज मुस्कराहट के साथ उत्तर दे दिया।

"सीकरी के प्याले अपनी जुदागाना अहमियत रखते हैं।"—हुसेन मिर्ज़ा ने विजयपाल की ओर देखते हुए टिप्पणी की।

"यह हमारे जेलदार साहब की ख़ास इनायत है कि हमें क़ैद में भी ये नायाब चीज़ें मुअस्सिर हो जाती हैं।" शाह ने सहज भाव से अपनी कृतज्ञता धन्यवाद के रूप में निवेदित की।

जेलदार ने कहार को प्याले लाने का आदेश दिया। फिर कहा—"ख़ुदा की यह ख़ास मेहरबानी है कि उसने मुझे जेलदार बनाकर भेजा है, मीर अद्ल बनाकर नहीं। इसी लिए मैं जानता हूँ कि बहादुर जवान क्या चाहते हैं और उनके साथ कैसा बर्त्ताव होना चाहिए। यह बात दूसरी है कि आप लोगों के सय्यासी ख़यालात मेरे ख़यालात से मेल न खायँ। वह मामला हर एक के ज़ाती नशेब-व-फ़राज़ से तअल्लुक़ रखता है, पर जहाँ तक इन्सानियत और शराफ़त का तक़ाज़ा है हम लोग एक हैं। और अगर ग़ौर किया जाय तो मैं भी आप लोगों की तरह

एक क़ैदी हूँ । आप लोगों की तरह मैं भी बाहर की फ़िज़ा देखने से महरूम हूँ और इन मोटी-मोटी दीवालों में बन्द होकर आप लोगों के बीच मुझे भी ज़िन्दगी ग़ुजारनी पड़ रही है ।"

"बड़ी हौलनाक जगह है बादलगढ़, चीख़-पुकार, आह-कराह, हथकड़ियाँ-बेड़ियाँ, तनहाई, ग़ुलामी—तोबा है !" मिर्ज़ा ने लम्बे कुरते की आस्तीनों को कुछ ऊपर समेटते हुए कहा ।

"कोफ़्ता तैयार है । इजाज़त हो तो हाज़िर किया जाय ?" जेलदार ने वार्त्तालाप को बदलने के लिए निवेदन किया ।

"ज़रूर ज़रूर ! वह तो आपके बावर्चीख़ाने का ख़ास तोहफ़ा है । ख़ुदा जाने, ऐसा नायाब कोफ़्ता तो कहीं खाने को ही नहीं मिला ।" मिर्ज़ा ने प्रशंसा करते हुए कहा ।

"और मैं तो ख़ुदा का शुक्रिया अदा करता हूँ कि उसने मुझे यहाँ भेजा । नहीं तो ऐसी नायाब चीज़ कहाँ मिलती ! सचमुच आपका बावर्ची यह चीज़ बहुत अच्छा बनाता है । मेरा बावर्ची भी होशियार था, मगर कोफ़्ता ऐसा अच्छा उससे भी न बनता था ।

"हाँ, और दूसरी चीज़ें अलबत्ता वह लाजवाब बनाता था । मैं जहाँपनाह से शिकायत करूँगा कि उस कमबख़्त को भी मेरे साथ बादलगढ़ क्यों नहीं भेजा गया ।" अमज़द ख़ाँ ने बेतक़ल्लुफ़ी के साथ कहा । इस घरेलू बातचीत ने वातावरण में एक विशेष प्रकार की सजीवता उत्पन्न कर दी ।

"हाँ, एक बात कहना तो भूल ही गया । शीराज़ी भी आ पहुँची

है। नया चालान सीधा ख़ुरासान से चला आ रहा है।" जेलदार ने प्रसन्नता प्रकट करते हुए कहा।

"मरहबा, मरहबा! यह बात तो बड़े मौक़े की रही और क़ाबिले इनाम भी।" मिर्ज़ा ने लगभग उछलते हुए कहा।

अदब के साथ सलाम करते हुए जेलदार ने दरबारी ढंग से इस प्रशंसा का जवाब दिया। फिर कहा—"कोफ़्ते के साथ ही साथ उसे भी मँगवा रहा हूँ।"

"शीराज़ी बस शीराज़ी है,"—दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए शाह ने कहा—"पहले-पहल इसे चखने का मौक़ा शाह तहमास्प के दस्तरख़ान पर हुआ था जब कि जन्नत आशियानी के हमराह हम लोग ग़ुरबत में थे और ख़ुरासान में शाह के मेहमान थे। बादशाह को वह शराब ख़ास तौर से पसन्द आई थी और उन्होंने उसकी बहुत तारीफ़ की थी। जब हम लोग फ़ारिस से हिन्दुस्तान की जानिब चले तब शाह तहमास्प ने और तोहफ़ों के साथ चार कण्टर शीराज़ी के भी रख दिये थे। और तब से तुर्कमान अमीरों के शौक़ की वह ख़ास चीज़ बन गई है। ख़ुद मेरी ही बात लीजिए, जब तक ग़रीबख़ाने पर था और जन्नत आशियानी* की परवरिश थी, दस प्याले से कम कभी न लेता था। और दावतों के मौक़ों पर तो बीस प्याले ख़ाली कर देना मामूली बात थी। फ़ारस की एक दावत का ज़िक्र है। शाह की बहन शाहज़ादः सुलतानालम ने हमारे मज़ाज़ में दावत दी थी। शाही हरम की लड़कियाँ कारचोबी

*जन्नत आशियानी—स्वर्गीय: बादशाह हुमायूँ से मतलब है।

के लिबास में सजी हुई खाना परोस रही थीं। एक हूर शीराज़ी लेकर आई। बादशाह ने मेरी ओर देखकर इशारा किया। बस जनाब, उसे रोक रखने की नीयत से पीना जो शुरू किया तो अकेले ही दो शीशे ख़ाली कर गया। और वह माहेरू थी कि बस उँडेलती जाती थीं और मुस्कान की बिजलियाँ गिराती जाती थी।" शाह ने आपबीती सुनाई।

इसी बीच नौकर ने आकर सुराही और प्याले सजा दिये और एक तरफ़ क़ीमे की तश्तरियाँ भी।

"साक़ी का फ़र्ज़ मुझे मरहमत हो।" कहकर जेलदार ने सुराही से प्याले में शराब उँडेली और सबसे पहले शाह के सामने पेश की।

"विस्मिल्लाह!" कहकर शाह ने प्याला हाथ में लिया और कृतज्ञता तथा स्नेह-मिश्रित दृष्टि से जेलदार की ओर देखा। फिर कहा—"मियाँ साक़ी, यह तुम्हारी इनायत है कि रात को आज सोना नसीब होगा। वर्ना बादलगढ़ में तो मेरे लिए जैसा दिन वैसी रात।"

"बल्कि यों कहिए कि रात दिन से ज़्यादा बदतर है,"—मिर्ज़ा ने कहा—"वह वह आवाज़ें होती हैं कि ख़ुदा की पनाह! पलक लगाना हराम हो जाता है।"

"इसमें मेरा क़सूर नहीं है। यह सब आप लोग ही करते हैं?" जेलदार ने अपनी सफ़ाई दी।

"आप कैसे दूर-दूर बैठे हैं?" विजयपाल की ओर प्याला बढ़ाते हुए ख़ाँ ने कहा।

"माफ़ कीजिए! मुझे आप लोगों की दोस्ताना बातचीत में ही ज़्यादा लुत्फ़ आ रहा है।" विजय ने हाथ खींचकर कहा।

"या आप बैठे-बैठे किसी दूसरी दुनिया का ख़्वाब देख रहे हैं ?" मिर्ज़ा ने दूसरा प्याला चढ़ाते हुए कहा।

"उम्र ही ऐसी है। इस उम्र में तो ख़्वाब देखने का शैतान सवार होता ही है। अरे मियाँ साक़ी, थोड़ा शर्बत तो मिलाओ इसमें; यह तो बुरी तरह गला पकड़ रही है।" शाह ने प्याला जेलदार की ओर बढ़ाते हुए कहा।

विजयपाल कुछ उद्विग्न हो उठा।

"सिन रसीदा होने पर भी शाह साहब अभी नौजवानों का दिल रखते हैं।" मिर्ज़ा ने कटाक्ष किया।

"बालों से मेरी उम्र का अन्दाज़ा लगाने का ज़ुल्म आप साहबान न करें! अभी बुढ़ापा बाल पर है।" शाह ने परिहास किया।

"बैरम ख़ाँ का क्या हालचाल है! सुनते हैं माहम अतका से उसकी बिगड़ गई है और वह जहाँपनाह के कान भर रही है ?" तीसरे प्याले को होंठों से छुआते हुए ख़ाँ ने कहा।

"सरकार के मसले पर गुफ़्तगू करने में माफ़ी चाहता हूँ।" जेलदार ने आपत्ति की।

"अच्छा सरदार विजयपाल जी: तब आप अपनी महबूबा का क़िस्सा सुनाइए। इसमें किसी को एतराज़ न होगा।" नशे के हलके सुरूर में मिर्ज़ा ने कहा।

विजयपाल कुढ़ गया; फिर भी चुपचाप बैठा रहा। उसे चुप देखकर शाह ने कहा—"अरे मियाँ, जाने भी दो इन बातों को। अच्छा साक़ी, यह बतलाओ कि अनवर हुसैन का क्या हुआ ?"

"भकसी में भर दिया गया है।" जेलदार ने उत्तर दिया।

"उसने क्या अपराध किया था?" विजय ने सतर्क होते हुए प्रश्न किया।

"गुलगज़ कोतवाल से लड़ गया था।" जेलदार ने उत्तर दिया।

"जल में बसकर मगर से बैर!" मिर्ज़ा ने कहा।

"और मियाँ गुलगज़ भी बड़े पहलवान बनते हैं। जिससे देखो भिड़ जाते हैं। बच्चू जानते नहीं थे कि अनवर भी कुछ हौसला रखता है।" खाँ ने कहा।

"अब आटा-दाल का भाव मालूम होगा।" जेलदार ने उत्तर दिया।

"गुलगज़ ख़ानख़ानाँ का ख़ास आदमी है।" शाह ने कहा।

"मुल्ला पीरमोहम्मद का कहिए।"

"थोड़ा ही फ़र्क़ है।"

"अभी तक गर्म बना हुआ है।" कोफ़्ते की तश्तरी शाह की ओर बढ़ाते हुए जेलदार ने कहा।

दावत और गपशप अभी चल ही रही थी कि घण्टा बज गया। जेलदार ने विवशतापूर्ण दृष्टि से अतिथियों की ओर देखा। उसका अभिप्राय समझकर सब उठ खड़े हुए और अपनी-अपनी कोठरियों की ओर चल दिये।

अलग हो जाने पर विजयपाल ने जेलदार से कहा—"अगर संभव हो सके तो मेरे लिए नहाने और हजामत का प्रबन्ध कर दीजिए। ऐसे भले आदमियों के बीच रीछ की तरह दाढ़ी बढ़ाकर और मैले वस्त्र पहनकर बैठने में तो बड़ी झेंप लगती है।"

"आपकी फ़र्मायश बजा है। मगर मैं यहाँ के क़ायदों के सबब मजबूर हूँ।" जेलदार ने उत्तर दिया।

"मगर आज जो तीन और मेहमान दावत में शामिल हुए थे उनकी तो हजामतें भी बनी हुई थीं और कपड़े भी साफ़ थे।"

"उनके साथ दरबार की ख़ास रिआयत है। आप चाहें तो आप भी वकीले मुतलक़ को अर्ज़ी देकर मंज़ूरी ले सकते हैं।"

विजयपाल ने मन ही मन सोचा, 'वह ऐसा नहीं कर सकता।'

"आप अर्ज़ी देना चाहें तो मैं काग़ज़, क़लम, दावात का इन्तज़ाम कर सकता हूँ।" विजयपाल को कुछ सोचते देखकर जेलदार ने कहा।

"इसकी ज़रूरत नहीं पड़ेगी। शायद मुझे इस हालत में ज़्यादा दिन नहीं रहना होगा।" ठंडी साँस लेते हुए विजयपाल ने उत्तर दिया।

"क्या दरबार में आपका कोई ख़ास सिफ़ारिश है?"

"कोई नहीं।"

"तब आपको अपनी तक़दीर पर भरोसा होगा?"

"तक़दीर ने हमेशा मुझे धोखा ही दिया है।"

"तब आप ख़ुदा पर भरोसा रखिए। वह जो कुछ करता है, ठीक ही करता है।

करम करते उसको नहीं लगती बार
न हो उससे मायूस उम्मीदवार।"

विजयपाल ने फिर एक गहरी ठंडी साँस ली और अपनी कोठरी में आ गया।

एक अनोखे प्रकार की आवाज़ से विजय की नींद उचट गई। उसे लगा जैसे कोई घण्टी उसकी शय्या से कुछ ही दूर पर टुनटुना रही हो। कुछ देर तक बिस्तर पर पड़ा-पड़ा ही वह उस शब्द के स्थान-निर्धारण की चेष्टा करता रहा। जब उसे निश्चय हो गया कि वह उसी की कोठरी में हो रहा है तब वह उठ खड़ा हुआ और अँधेरे में टटोलता हुआ दीवाल के पास उस स्थान पर पहुँच गया जहाँ पर शब्द हो रहा था। उसने टटोलकर देखा--पतली डोर के सहारे लटकी हुई एक छोटी-सी घण्टी दीवाल से लग-लगकर बज रही थी।

उसने घण्टी को पकड़ लिया और धीरे-से नीचे की ओर खींचा। इसी समय ऊपर से किसी ने धीरे से कहा—"आप जाग रहे हैं!"

आवाज़ ठीक उसके सिर के ऊपर से आ रही थी। विजय ने ऊपर को देखा पर अंधकार के कारण उसे कोई दिखाई न दिया। उसने कहा—"जी हाँ, क्या आज्ञा है?"

"सुनिए, आप सरदार विजयपाल जी हैं न?" उस आवाज़ ने कहा।

विजय का आश्चर्य और भी बढ़ गया। अंधकार, निर्जनता और नीरवता के वातावरण में इस प्रकार का अनुभव सर्वथा अप्रत्याशित था।

इस प्रकार उसका नाम लेनेवाला आख़िर कौन हो सकता है ? अन्ततः उसने कहा—"जी, मेरा यही नाम है। आप क्या चाहते हैं ?"

"मैं आपसे बातचीत करना चाहता हूँ। मैं अमजद ख़ाँ हूँ और आपके पीछेवाले बुर्ज के ऊपरवाली कोठरी में क़ैद हूँ। हम दोनों के बीच में सिर्फ़ एक दीवाल है।"

"एक दीवाल का अन्तर कुछ न होते हुए भी बहुत कुछ होता है।" विजयपाल ने अर्धस्पष्ट स्वर से गुनगुनाया।

आवाज़ ने फिर कहा—"कल जेलदार ने कहा था कि आप पूरब के बाशिन्दे हैं, क़न्नौज या और कहीं के...।"

"जी, मैं क़न्नौज का हूँ।"

"पूरब का क्या रंग-ढंग है। कुछ उम्मीद है या नहीं ?" आवाज़ ने यथासंभव धीमे स्वर से पूछा।

"इस समय सारी उम्मीदें बादलगढ में बन्द हैं!" एक ठंडी साँस लेते हुए विजयपाल ने उत्तर दिया।

"मैं भी यही ख़याल कर रहा था; बडी मनहूस जगह है यह!" उधर से फिर आवाज़ आई।

"माफ़ कीजिएगा! पूरब की ख़बरों में आपको क्यों दिलचस्पी है ?" विजय ने अपने मन की शंका प्रकट कर दी।

"आप राजा हेमू विकरमाजीत के अजीज़ होते हैं न ?"

"आपका ख़याल सही है।"

"तो आपने नवाब बाज़बहादुर का नाम भी ज़रूर सुना होगा ?"

"जी, नवाब साहब की फ़ौजें पानीपत में हमारे साथ थीं।"

"यह बदकिस्मत भी वहाँ मौजूद था। और उस मनहूस जंग को लेकर ही बैरम ख़ाँ ने—ख़ुदा उसको ग़ारत करे—मालवे पर तोहमत लगाई; जिसका नतीजा यह देखना पड रहा है।"

"भाग्य का फेर है, और क्या कहा जाय!" विजय ने निराशा के स्वर में कह दिया।

"हाँ, वह तो साफ़ है। पर मियाँ, जब वे दिन नहीं रहे तो ये दिन भी नहीं रहेंगे।"

"यह तो भगवान् ही जानता है।" विजय के उत्तर में फिर भी निराशा थी।

"आपको एक ख़बर सुनाता हूँ। कल हम जितने लोग जेलदार के घर पर इकट्ठा हुए थे, वे सब यहीं आस-पास क़ैद हैं।"

"यह तो अच्छा ही है।" विजय ने कोई उत्सुकता प्रकट किए बिना ही कह दिया।

"हम लोग चाहें तो एक-दूसरे से बात-चीत करके वक़्त काट सकते हैं।"

"किस तरह?" साधारण उत्सुकता से विजयपाल ने पूछा।

"देखिए; हम लोग बादलगढ़ के जिस हिस्से में क़ैद हैं, वह एक बुर्ज़ है। इस बुर्ज़ की तीन मंज़िलों में कुल छः कोठरियाँ हैं। इनमें से एक कोठरी तो आपकी है और दूसरी यह मेरी। एक कोठरी आपके पैरों के नीचे है। उसमें मिर्ज़ा को रक्खा गया है। मेरे बराबर और आपकी कोठरी से ऊपर दूसरी ओर एक ऐसी ही कोठरी और है। उसमें शाह साहब रहते हैं। शाह साहब की कोठरी और मेरी कोठरी के बीच,

उँचाई पर, एक जालीदार गौखा है। उस गौखे के ज़रिये तिपाई पर खड़े होकर हम लोग बातचीत कर लेते हैं। आपकी कोठरी अब तक खाली थी। मिर्ज़ा हमसे बहुत नीचे पड़ता है। उससे इशारों में बातचीत करनी पड़ती है।"

"इशारों में किस तरह?"

"फ़र्श या दीवाल पर तिपाई के पाये या किसी चीज़ से ठोंककर!"

"रात मेरे फ़र्श को कोई ठोंकता ज़रूर रहा था, पर मैंने कुछ समझा नहीं।"

"ज़रूर मिर्ज़ा ही होगा; या शायद नीचे की मंज़िल का कोई दूसरा क़ैदी हो! वह किस तरह ठोंक रहा था, कुछ ग़ौर किया था?"

"ग़ौर तो नहीं किया था। मुझे तो ऐसा लगा था जैसे कोई बढ़ई कीलें जड रहा हो।"

"यह नहीं; यह बतलाइए कि किस तरह ठोंक रहा था। यानी दो-दो चोटें, कुछ रुक-रुककर, या तीन-तीन चोटें, कुछ रुक-रुककर!"

"शायद दो-दो चोटें कुछ रुक-रुककर!"

"यह मिर्ज़ा का इशारा है।"

"उससे किस तरह बातचीत करनी होगी!"

"बादलगढ़ की ज़बान में। फ़ारसी आती है? मेरा मतलब हरूफ़ तहज्जी से है।"

"हाँ।"

"तब सीधा तरीक़ा है। अलफ़ के लिए एक चोट, बे के लिए दो। इसी तरह आगे भी!"

"तरीक़ा तो बेशक सीधा है, पर एक छोटी-सी बात कहने के लिए भी वक़्त बहुत चाहिए।"

"बेशक; पर हम लोगों को और काम ही क्या है! सारी रात यही सब तो करना रहता है। आराम करने को दिन का वक़्त काफ़ी होता है।"

विजयपाल की समझ में आ गया कि बादलगढ़ की विभिन्न प्रकार की उन आवाज़ों का क्या अर्थ है जिनके कारण रात को सोना तक कठिन हो जाता है। उसने पूछा—"कोई इस तरह की बातचीत को मना नहीं करता?"

"अव्वल तो कोई मना करता नहीं; और मना भी करे तो यहाँ माननेवाला कौन है! अरे मियाँ, कोठरी में बन्द हैं। सज़ाये मौत के इन्तज़ार में हैं। किसी तरह हाथ-पाँव पटककर वक़्त काट रहे हैं। इसमें किसी का क्या इज़ारा है! फिर क़ैदख़ाने की यह चोरियाँ तो ख़ुद अल्लाताला की ईजाद हैं, उन्हें कोई क्या खाकर बन्द करेगा।" अमजद ख़ाँ ने कुछ बेफ़िक्री के स्वर में कहा। फिर पूछा—"आपको कोई ख़ास तकलीफ़ तो नहीं है?"

"आराम ही कौन-सा है?" विजय ने भी उसी बेफ़िक्री से कह दिया।

"जेलख़ाना आख़िर जेलख़ाना है। मेरा मतलब किसी ऐसी तकलीफ़ से है जिसके लिए हम लोग कुछ कर सकते हों!"

"पढ़ने-लिखने को कुछ मिलता तो अच्छा रहता।"

"किताबें तो जेलदार के घर से ला सकते हैं!"

"मैं क़लम-दावात और रोशनी चाहता हूँ।"

"रोशनी का इन्तज़ाम मैं कर सकता हूँ।"

"क्या आपको रोशनी दी गई है ?"

"दी तो नहीं है, पर मैंने पैदा कर ली है!"

"पैदा कर ली है! किस तरह ?"

"खाने को जो शोरबा आता है, उसमें से कुछ तेल उतारकर एक कटोरी में जमा करता जाता हूँ। कपड़े की बत्ती बना ली है। चकमक पत्थर के लिए अलबत्ता बड़ी तिकड़म लगानी पड़ी। पर आख़िर मिल गया।"

"रोशनी बाहर जाती होगी तो कोई कुछ कहता न होगा ?"

"बाहर जायेगी कैसे, क्या दीवालें फोड़कर? दरवाज़ा मोटे-मोटे तख़्तों का बना है। दिन की रोशनी भी उससे छनकर अन्दर नहीं आ सकती। रोशनदान सिर्फ़ एक है, यही आपकी कोठरी के ऊपर, जिसकी जाली को ज़रूरत के मुआफ़िक़ चौड़ा करके आपसे बातचीत कर रहा हूँ।"

"आप सचमुच अक़्लमन्द हैं।"

"ज़रूरत अक़्लमन्द बना देती है!"

"काग़ज़-क़लम का सवाल फिर भी रह जाता है।"

"जहाँ तक मेरा ख़याल है, शाह साहब से आपको ये दोनों चीज़ें मिल सकती हैं।"

"उनसे कैसे कहा जाय ?"

"मैं कह दूँगा। फिर वे ख़ुद आपको बुला लेंगे। आपकी कोठरी में कोई रोशनदान उस तरफ़ को भी है ?"

"एक गौखा ज़रूर है, छोटा-सा। पर यह नहीं कह सकता कि वह उनकी कोठरी के लिए ही है।"

"इजाज़त हो तो उनसे कह दूँ।"

"ज़रूर! मेहरबानी होगी।"

इसके बाद अमजद ख़ाँ ने घण्टी ऊपर खींच ली। विजयपाल चुप-चाप अपने तख़्त पर जा लेटा और बादलगढ़ के जीवन का विचार करने लगा। ऊपर से दीवाल ठोंकने की आवाज़ें आने लगीं जिन का विचार करने पर भी विजय कुछ अर्थ न निकाल सका। फिर भी बहुत देर तक एकाग्र मन से वह दोनों ओर से होनेवाले संकेतों को समझने का व्यर्थ प्रयत्न करता रहा। इसी बीच उसे नींद आ गई।

वह अच्छी तरह से सो भी न पाया था कि दीवाल के पास घण्टी की आवाज़ सुनकर वह फिर जाग पड़ा और अंधकार में टटोलता हुआ उस ओर बढ़ा। इस बार उसे अनुभव हुआ कि घण्टी उसके सिर से काफी ऊँचाई पर बज रही है और वह उसे छू नहीं सकता। अतएव अनुमान से घण्टी के नीचे पहुँचकर उसने दोनों हाथों से दीवाल पर शब्द किया। घण्टी रुक गई और ऊपर से आवाज़ आई—"सरदार विजयपाल ही हैं न!"

शाह की आवाज़ पहचानने में विजयपाल को देर न लगी।

"जी!" उसने शिष्टाचार के स्वर में जवाब दिया।

"ख़ैर आफ़ियत!" शाह ने कहा।

"इनायत है।"

"क्या चाहिए?"

"कागज़, क़लम, दावात के लिए अर्ज़ कर रहा था।"

"कुछ शायरी-वायरी का शौक़ है क्या?"

"यों ही।"

"महबूबा के लिए ख़त लिखेंगे?"

विजयपाल ने कुछ उत्तर न दिया। फिर भी उसने अनुभव किया कि उम्र में बहुत अन्तर रहने पर भी अवस्था की समानता के कारण शाह का उससे दिल्लगी करना अनुचित नहीं है।

"अच्छी बात है। ये चीज़ें मैं आपके पास पहुँचा दूँगा।" कुछ देर प्रतीक्षा करने के पश्चात् शाह ने धीरे से कहा।

"मेहरबानी है।" विजयपाल ने नपे-तुले शब्दों में उत्तर दे दिया।

"और भी कुछ चाहिए?" शाह ने पूछा।

"और क्या मिल सकता है?"

"बहुत कुछ; खाने को, पीने को!"

"आपको सब चीज़ें मिली हुई हैं क्या?"

"मिली तो नहीं हैं, पर तिकड़म से सब कुछ मुमकिन है। जानते हो, कैदख़ाने में तिकड़म ही कैदी की ज़िन्दगी का सहारा है।"

"मुमकिन है।"

"मुमकिन नहीं, सच कहता हूँ। अच्छा, अब आपका ज़्यादा वक़्त ख़राब न करूँगा। ज़रा इन्तज़ार कीजिए। तिपाई है?"

"जी हाँ!"

"तो उसे टटोलकर नीचे कर लीजिए और उस पर खड़े हो जाइए।

क्योंकि आप बहुत नीचे खड़े हैं और जिस चीज़ से मैं रस्सी का काम ले रहा हूँ, वह काफ़ी लम्बी नहीं है।"

"आप रस्सी का काम किस चीज़ से ले रहे हैं?" उत्सुकता से विजय ने प्रश्न किया।

"इज़ारबन्द से। मेरे पास रस्सी के नाम पर यही एक चीज़ छोड़ी गई है।" हँसते हुए शाह ने उत्तर दिया। विजयपाल ने भी इस हँसी में शाह का साथ दिया।

तिपाई को दीवाल के पास लगाकर विजयपाल उस पर खड़ा हो गया। कुछ देर की प्रतीक्षा के बाद उसे लगा, कोई चीज़ दीवाल के सहारे नीचे को खिसक रही है। ऊपर को हाथ उठाकर उसने देखा, एक पोटली थी।

"इसमें जो कुछ है, निकाल लीजिए।" ऊपर से आवाज़ आई।

विजयपाल ने पोटली में से कुछ सेब, काग़ज़ और कोयले की बत्तियाँ निकाल लीं।

"हज़ार-हज़ार शुक्रिया!" उसने शाह साहब को धन्यवाद देते हुए कहा।

"इन बत्तियों से आप काग़ज़ पर लिख सकते हैं। अगर ज़रूरत समझें तो पानी के साथ फ़र्श पर रगड़कर स्याही बना लें। दोनों सूरतों में लिखावट सुन्दर आयेगी, कालपी का काग़ज़ है। मुश्किल से दस्तयाब हुआ है।"

"आपकी ख़ास मेहरबानी है।"

"क्या इसी वक़्त कुछ लिख डालने का इरादा है?"

"देखिए, अगर मुमकिन हो सका।"

"पर रोशनी तो आपके पास है नहीं?"

"ख़ाँ साहब ने देने का वायदा किया है।"

"बड़े शरीफ़ आदमी हैं ख़ाँ साहब।"

"बेशक; मुझ पर तो बड़ी मेहरबानी करते हैं।"

"और कोई कारे ख़िदमत?"

"ज़रूरत पड़ने पर ज़रूर तकलीफ़ दूँगा।"

"सलाम!"

"सलाम!"

शाह जाली के पास से हट गये और विजयपाल अपने तख़्त पर आ बैठा। वह इसी समय नन्दा को एक पत्र लिखना चाहता था। पर रोशनी के अभाव में वैसा करना संभव न था। अतः वह फिर उठा और टटोलते-टटोलते अमजद ख़ाँ की जाली के नीचे जा खड़ा हुआ।

"सुनिए!" दीवाल पर दो बार हाथ से चोट मारकर उसने पुकारा। उधर से कोई उत्तर न आया।

"सुनिए, सुनिए!" उसने फिर अनेक बार पुकारा। फिर भी अमजद ख़ाँ ने उत्तर नहीं दिया।

"शायद सो गये हैं।" विजयपाल ने मन ही मन सोचा। उसे ख़ाँ साहब पर बड़ी झुँझलाहट हुई। मुझे जगाकर हज़रत ख़ुद लम्बी तान गये। उसने एक बार फिर प्रयत्न करने का निश्चय करके तिपाई को उठाकर बड़ी ज़ोर से ज़मीन पर पटका। इसके बाद उत्तर की प्रतीक्षा में कुछ देर तक चुपचाप खड़ा रहा। फिर भी उधर से कोई उत्तर न मिला। तब उसने तिपाई को बड़ी ज़ोर से फिर ज़मीन पर तीन-चार बार पटका।

इस बार विजय का उद्योग निष्फल नहीं गया। क्योंकि उसे अधिक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी। उसकी कोठरी का भीतरी द्वार खुला और छः सिपाहियों के साथ कलवाले अधिकारी ने प्रवेश किया। उसके अग़ल-बग़ल दो मशालची मशालें लिये चल रहे थे।

"क्या है ?" आते ही अधिकारी ने आँखें तरेरते हुए पूछा।

"कुछ नहीं, तिपाई में खटमल ज़्यादा हैं; बहुत परेशान कर रहे हैं।"

"और ये शायद उन खटमलों के अण्डे हैं!" तख़्त पर रखे हुए सेबों की ओर इशारा करते हुए अधिकारी ने कहा।

विजय ने कुछ उत्तर नहीं दिया। उसे लगा कि वह अपराध करते हुए पकड़ा गया है और अब अपने को निर्दोष प्रमाणित करने की चेष्टा करना व्यर्थ है। फिर भी वह अपने ऊपर अपरिचित कृपा करनेवाले ख़ाँ साहब और शाह साहब का नाम नहीं लेगा।

"और यह काग़ज़-बत्ती!" मशाल को अपने हाथ में लेकर तख़्त के और समीप लाते हुए अधिकारी ने कहा," ग़ज़ब है। आप लोग क्या जादू-मंत्र भी जानते हैं!"

यह कहकर सब सामान उसने अपने हाथ में उठा लिया। विजय कोई आपत्ति न कर सका।

"आपके पड़ोसियों की शिकायत है कि आप उन्हें रात को सोने नहीं देते।" अधिकारी ने चेहरे पर यथासंभव रुखाई का भाव प्रकट करते हुए कहा।

विजय ने आँख उठाकर एक बार उसके मुँह की ओर देखा; फिर अपनी आँखें नीची कर लीं।

"मैं कहता हूँ कि इस तरह आप न सिर्फ़ अपने को ही, वरन् अपने अज़ीज़ों को भी मुश्किल में डाल रहे हैं।"

"अज़ीज़ों को!" विजय का ध्यान बिजली की गति से नन्दा की ओर पहुँच गया, "क्या उसे भी ये लोग परेशान कर रहे हैं। और शेख़ साहब!" उसका रोम-रोम काँप उठा। उसने दोनों हाथों से अपनी आँखें बन्द कर लीं और जहाँ खड़ा था, वहीं फ़र्श पर चुपचाप बैठ गया।

"मैं कहता हूँ कि अभी कुछ नहीं बिगड़ा है;" गर्म लोहे पर चोट करने के अभिप्राय से अधिकारी ने कहा, "अभी सब कुछ आपके हाथ में है। आप जिसे चाहेंगे, उसे बख़्श दिया जायगा!"

विजयपाल ने आँखें उठाकर अधिकारी की आँखों में देखा। अभिप्राय-सूचक मुस्कान अधिकारी के चेहरे पर खेल गई जिससे विजय का तन-मन घृणा से भर गया। अपने को सँभालते हुए उसने कहा—"आप क्या चाहते हैं?"

"मैं आपसे बहुत कुछ उम्मीद रखता हूँ।"

"मैं कुछ नहीं बताऊँगा; मैं कुछ नहीं जानता।"

"तब मैं सिर्फ़ यह जानना चाहूँगा कि ये चीज़ें क़ैदख़ाने में आपको किस तरह दस्तयाब हुईं?"

"मैं नहीं जानता; मैं बतलाना नहीं चाहता।" विजय ने साहस के साथ उत्तर दिया।

"आप लोगों की ये हरकतें हमारे इन्तज़ाम में ख़लल डालती हैं और इसका नतीजा अच्छा न होगा। ख़ैर, इस वक़्त मैं आपसे ज़्यादा छेड़-छाड़ करना नहीं चाहता; क्योंकि आपकी बाबत जो फ़ैसला होना था, हो चुका

है और उस हालत में आपको ज़्यादा तकलीफ़ देना बेकार है।" अधिकारी ने कुछ अन्यमनस्कता के साथ कहा।

"मेरे बाबत फ़ैसला हो चुका है! क्या फ़ैसला हुआ है, क्या मैं जान सकता हूँ?" विजय ने कुछ काँपती हुई आवाज़ मे पूछा।

"मैं जानता हूँ; पर मैं बताना नहीं चाहता; बताने की इजाज़त नहीं है।" अधिकारी ने उसी लापरवाही से उत्तर दे दिया।

इसके बाद अपने साथियों के साथ वह कोठरी से बाहर हो गया। अधिकारी के चले जाने पर विजय उठकर अपने तख्त पर जा बैठा। उसे लगा, उसका मस्तिष्क एक विचित्र प्रकार की शीतलता और स्वच्छन्दता से भर उठा है। कोठरी में व्याप्त अंधकार और शून्य ने जैसे उसे अपने अंक में भर लिया है। वह शून्य जो बाहर के शून्य से अविच्छेद्य है; मानवकृत मोटे-मोटे आवरण जिसे विभाजित करने का प्रयत्न करने में असफल होते हैं। अब उसके लिए भय का कोई कारण नहीं है। उसका फ़ैसला हो चुका है। अब वह विचाराधीन क़ैदी नही है। वह अब चिन्तामुक्त है। बादलगढ़ की मोटी-मोटी दीवालें, कोठरी के लोहे के फाटक, यहाँ तक कि उसका अपना शरीर भी, उसे बाँधकर नहीं रख सकते। वह व्यर्थ ही डर रहा था। शून्य की इस सर्वतोव्याप्ति में वह अकुतोभय है। वह जिस शून्य में श्वास ले रहा है, वह विश्वात्मा है। बैरम ख़ाँ और उसके सारे संगी-साथी, मुग़ल-साम्राज्य की सारी मशीन, उस विश्वात्मा का एक क्षुद्र निःश्वास भर है। वह निर्भय है, अंतरिक्ष से, द्यावा-पृथिवी से; मित्र से, अमित्र से; परिचित से, अपरिचित से; ऊपर से, नीचे से; सामने से, पीछे से; वह

अभय है। उसका कोई कुछ बिगाड़ नहीं सकता। न दिन में और न रात में; न जल में और न स्थल में। उसके लिए भय का कोई कारण नहीं है।

उसे लगा, उसकी कोठरी के फ़र्श से लेकर असीम और अनंत के दूसरे छोर तक एक ज़ीना बन गया है। इस ज़ीने में इतनी सीढ़ियाँ हैं कि विजयपाल प्रयत्न करने पर भी गिन नहीं सकता। ज़ीने की सीढ़ियों पर निःशब्द किन्तु निश्चित गति से पादक्षेप करते हुए स्वर्गीय सम्राट् हेमू विक्रमादित्य धीरे-धीरे उतर रहे हैं। उनकी आँखें एकटक उसी की ओर देख रही हैं। उन आँखों में वात्सल्य और आश्वासन है। विजय का मस्तक श्रद्धा और आदर से झुक गया। उसके कान पादक्षेप का मृदु मंद स्वर फिर भी बराबर सुनते रहे। कब तक! कुछ कहा नहीं जा सकता। अन्त में जैसे स्वर्गीय समाट् उसके बिलकुल पास आकर खड़े हो गये और एकटक उसकी ओर देखने लगे। उस दृष्टि में इतना बोझ था कि उसे सँभालना विजय की शक्ति से बाहर हो गया। उसने हाथ उठाना चाहा कि चरणस्पर्श कर लूँ, पर हाथ न उठे। उसने चरणों पर गिरकर प्रणाम करना चाहा, पर शरीर उसके अधिकार से बाहर हो गया। उसका श्वास घुटने लगा। उसकी चेतना जवाब देने लगी।

इसी समय उसे लगा, जैसे स्वर्गीय सम्राट् कह रहे हों, "बेटा विजय, तू भूल रहा है। इस अपवित्र और अपूर्ण संसार में प्रेयसी और पृथिवी साथ-साथ नहीं निभ सकतीं। यहाँ दो में से एक को पकड़ना होता है। पर इससे भिन्न एक दूसरा संसार भी है, इससे अधिक पूर्ण,

अधिक पवित्र ! वहाँ तुम दोनों का साथ-साथ उपभोग कर सकते हो, दोनों को साथ-साथ निभा सकते हो। वह देखो, ऊपर की ओर ! आओ, इस ज़ीने पर मेरे साथ-साथ चढ़ चलो ! मैं तुम्हें उस पवित्र लोक में पहुँचा दूँगा।" विजय मानो उठा और स्वर्गीय सम्राट्—अपने चाचा—का हाथ पकड़कर उस ज़ीने पर चढ़ने लगा।

दूसरे दिन सोकर उठने पर विजय को ऐसा लगा कि उसका शरीर और मन स्वस्थ नहीं है। गत रात्रि की घटनायें एक-एक करके उसके मानसपटल पर अंकित होने लगीं। अमजद ख़ाँ की बातचीत, शाह साहब की कृपा, काग़ज़, कोयला, सेब और फिर सहसा क़ैदख़ाने के अधिकारी का आगमन और लानत-मलामत, सभी चीज़ें रह-रहकर उसके दिल को कचोटने लगीं। इतना ज़लील अपनी ज़िन्दगी में उसे कभी न होना पड़ा था। इसके बाद उसे अधिकारी के वे शब्द याद हो आये जो उसने चलते-चलाते कहे थे—"आपकी बाबत जो फ़ैसला होना था, वह हो चुका है।" इस बात का क्या अर्थ हो सकता है? यह तो नहीं कि उसके लिए फाँसी, सूली या ऐसी ही कोई दूसरी सज़ा निश्चित हो चुकी है। यदि ऐसा ही है तो उसका वश ही क्या है। फिर उसे रात में देखे हुए स्वप्न की याद हो आई। स्वर्गीय सम्राट् ने उसे अपने साथ ऊपर जाने के लिए बुलाया और वह उनके साथ-साथ ज़ीने पर चढ़ता हुआ ऊपर की ओर चला गया। इस स्वप्न का अर्थ भी सम्भवतः यही हो सकता है कि उसके स्वर्ग की सीढ़ी पर चढ़ने का समय अब निकट आ गया है। अब अधिक देर नहीं है। कमरे में मन्द प्रकाश आ चुका

था जिससे उसकी प्रत्येक वस्तु धुँधली और उदास दिखाई देती थी। उसने एक दृष्टि उन दोनों छिद्रों की ओर डाली जिनसे होकर उसने गत रात्रि अमजद ख़ाँ और शाह साहब से बातचीत की थी। कितने भले हैं दोनों; यदि वे न होते तो विजयपाल के लिए इस जगह दो दिन भी ज़िन्दा रहना कठिन हो जाता। और वह अधिकारी! उसका भी क्या अपराध! उसके ज़िम्मे जो काम है उसे वह पूरा कर रहा है। उसमें किसी को शिकायत क्यों होनी चाहिए। और अगर हो भी तो उससे क्या फ़ायदा।

एक अँगड़ाई लेकर वह उठ बैठा। सारा शरीर टूट रहा था। उठने को जी न चाहता था। और सच बात तो यह थी कि वह उठ बैठे, या लेटा ही रहे; इससे उस कालकोठरी की मनहूस ज़िन्दगी में कोई अन्तर न आ सकता था। फिर भी उसे उठना था। कब तक इस तरह लेटे रहा जा सकता था!

सुराही से पानी लेकर उसने हाथ-मुँह धोया और फिर आकर अपने तख़्त पर बैठ गया। उसी समय उसे उत्तर ओर की दीवाल पर एक छाया का आभास हुआ। शायद गौखे से कोई झाँक रहा था। दृष्टि उठाकर उसने उस ओर देखा। दो चमकीली आँखें सचमुच उसी की ओर देख रही थीं। वह उठकर खड़ा हो गया।

"रात क्या कह रहा था वह हरामी का पिल्ला?" ऊपर से प्रश्न हुआ।

"लानत-मलामत कर रहा था। कह रहा था कि मेरे लिए सज़ाये मौत का फ़ैसला हो चुका है।"

"झूठा है। परले दर्जे का मक्कार! उसे क्या इल्म कि कहाँ क्या हो रहा है। वह यों ही बका करता है।"

विजय को इन शब्दों से कुछ आश्वासन मिला। पर यह आश्वासन चिरस्थायी न रह सका। सन्देह का सूत्र पकड़कर उसने फिर कहा—"कहीं से तो उसे ज्ञात हुआ ही होगा। इन लोगों के पास शाही फ़रमान आते-जाते रहते हैं।"

"फ़रमान-वरमान कुछ नहीं; यों ही बक रहा था। उसकी ऐसी आदत है।"

"आपने क्या उसकी बातचीत सुनी थी?"

"मैं सब सुन रहा था। जी में आता था कि अगर गौखा कुछ और चौड़ा होता तो फेंककर उसके मुँह पर कोई चीज़ मारता जिससे मियाँ के होश दुरुस्त हो जाते।"

इन शब्दों में विजय को सच्चे मित्र का आश्वासन प्राप्त हुआ।

"पर आपने", ख़ान ने आगे कहा—"उसे तुर्की-ब-तुर्की जवाब नहीं दिया। इससे मुझे ज़रूर तअज्जुब हो रहा था। जो दबता है, उसे ये लोग और भी दबाते हैं।"

विजयपाल को इससे सचमुच बल मिला। उसने निश्चय कर लिया कि भविष्य में अधिकारी ने यदि इस तरह की छेड़छाड़ की तो वह उसका मुँह ही नोच लेगा।

"और सुनिए!" ख़ान ने आगे कहा, "वह फल और काग़ज़ उठा ले गया है? काग़ज़ों पर कुछ लिखा तो नहीं था?"

"जी नहीं।"

"आपने यह तो नहीं बतला दिया कि काग़ज़ आपको किससे मिले थे?"

"नहीं।"

"अच्छा ही किया। अब की बार अगर वह आये और फिर वही सवाल पूछे तो कह देना कि बैरम ख़ाँ की भतीजी ने भेजे थे!"

"उसे तो मैं जानता भी नहीं।" विजयपाल ने भोलेपन से कह दिया।

"क़ैदख़ाने की रिश्तेदारियों के लिए जान-पहचान की ज़रूरत नहीं होती?"

विजय सोच-विचार में पड़ गया।

"आपको भी कुछ करना चाहिए। इस तरह सीधे सिपाही बनने से यहाँ काम नहीं चलता। यहाँ तिकड़म करनी होती है।"

"मैं क्या कर सकता हूँ?"

"मैं बतलाऊँ; कुछ न हो तो आप बीमार पड़ जाइए।"

"बीमार पड़ जाऊँ! यह भी अपने वश की बात है?"

"बस की बात क्यों नहीं है! खाना-पीना छोड़ दीजिए और चुपचाप तख़्त पर लेट जाइए।"

"इससे उनका क्या नुक़सान होगा; मुझे ही भूखा मरना पड़ेगा।"

"ऐसी बात नहीं है। ग़ैर फ़ैसला क़ैदी को तकलीफ़ देना उसूल के ख़िलाफ़ है। क़ैदख़ाने के छोटे-बड़े हाकिम आपके पास दौड़े आयेंगे और

आपकी ख़ुशामद करेंगे। तआज्जुब नहीं कि सदरुस्सदूर साहब को ख़ुद तशरीफ़ लानी पड़े, बशर्ते कि आप स्वाँग को आख़ीर तक निभा सकें।"

"मगर उससे होगा क्या?" विजय ने लापरवाही से कहा।

"होगा क्या? यही कि शाही हकीम को बुलाया जायगा। दवाई तजवीज़ होगी। थोड़ा तहलका-हंगामा रहेगा। हम लोगों को भी कुछ रिआयतें मिल जायँगी। बाहर ख़बर पहुँचेगी तो आपके दोस्त-अहबाब आसमान सिर पर उठा लेंगे। बैरम ख़ाँ को लेने के देने पड़ जायँगे।"

"बीमारी का झूठा बहाना कब तक चल सकता है? कुछ ही देर बाद खुल जायगा तब ज़लील होना पड़ेगा। और फिर हकीम साहब दवा पीने को कहेंगे।"

"बीमारी का बहाना बहुत देर तक चल सकता है। और दवा का पीना या न पीना तो तुम्हारे बस की बात है। चाहे पीना, चाहे कुल्ली कर देना।"

"नाम किस बीमारी का लिया जायगा।"

"बीमारी का नाम लेना तुम्हारा काम तो नहीं है। तुम्हें तो चुपचाप बीमार बनकर लेट रहना है। फिर हकीम ख़ुद-बख़ुद देखेगा कि तुम्हें क्या शिकायत है, और उसका क्या इलाज होना चाहिए।"

"और अगर नब्ज़ देखकर हकीम ने कह दिया कि इसे कोई बीमारी नहीं है, तब क्या होगा?"

"ऐसा हो नहीं सकता। क्योंकि इधर क़ैदख़ाने में जो मर्ज़ ज़्यादा चलते हैं, उनकी तमीज़ हकीम लुक़मान को भी नहीं हो सकती।"

"क्या मर्ज़ चलते हैं?"

"उनका नाम जानना हमारा काम नहीं है। यह काम हकीमों का है। हम सिर्फ़ यही जानते हैं कि उस मर्ज़ का मरीज़ आबोदाना छोड़कर गुम-सुम बैठ जाता है। कभी-कभी, और ख़ासकर जेलदार के आने पर, ज़ोर-ज़ोर से फूट-फूटकर रोने लगता है, और इस क़दर रोता है कि फिर समझाये नहीं समझता। हकीम इसे अमूमन 'मालीखोलिया' कह देते हैं। और चूँकि मालीख़ोलिया के मरीज़ अकसर पागलपन के शिकार हो जाते हैं और पागल को मौत की सज़ा या दूसरे क़िस्म की कोई सख़्त सज़ा देना शरअ के ख़िलाफ़ है, इसलिए मरीज़ को क़ुदरती हालत में लाने की हरचन्द कोशिश की जाती है।"

"तजवीज़ तो अच्छी है, मगर शायद मैं इसमें कामयाब न हो सकूँगा। बचपन से फ़रेब, मक्कारी और झूठ बोलने का अभ्यास जो नहीं किया।"

"तब तुमने दर असल बड़ी ग़लती की। और इससे भी बड़ी यह ग़लती हुई कि मक्कारी में महारत हासिल किये बिना सल्तनत और मुहब्बत के मामलों में हाथ डाल बैठे। अरे मियाँ, क़सम से कहता हूँ कि मुहब्बत और सयासत—दोनों साँप के बिल हैं। जन्तर-मन्तर जाने बिना इनमें हाथ डाल देना नादानी है।"

"पर अब तो हाथ डाल ही चुका हूँ।"

"तो पढ़ाई की बिस्मिल्लाह भी अब हो जानी चाहिए। आप जैसे लोगों के लिए बादलगढ़ मकतब है और मैं यक़ीन के साथ कह सकता हूँ कि यहाँ से आप इस फ़न में उस्ताद होकर ही निकलेंगे।"

खटके की आवाज़ ने इसी समय विजयपाल का ध्यान दूसरी ओर आकर्षित कर दिया। वह आकर चुपचाप तख़्त पर बैठ रहा।

आनेवाला जेलदार था जो नित्य नियम के अनुसार भोजन और जल कहारों के सिर-पर रखवा कर आया था।

"आदाब अर्ज़ है।" अपनी सहज शिष्टता से जेलदार ने अभिवादन किया।

विजयपाल शून्य दृष्टि से उसकी ओर देखता रहा। उत्तर में एक भी शब्द उसके मुँह से न निकला।

कहारों को तिपाई पर भोजन का सामान रखने का आदेश देकर जेलदार विजयपाल के ठीक सामने खड़ा हो गया और बड़े अदब से बोला—"जनाब के दुश्मनों की तबीअत कुछ अलील दिखाई देती है।"

विजयपाल ने फिर भी कुछ उत्तर न दिया।

"बड़ी मनहूस जगह है यह! शाहज़ादों की तबीअत यहाँ ज़रूर ख़राब हो जाया करती है।" उसने संवेदना के स्वर में फिर कहा।

विजयपाल चुप रहा। उसकी आँखों में आँसू छलक आये थे।

"किसी की याद सता रही है, शायद। बड़ी ख़ुशक़िस्मत होगी वह माहेरू!"

विजयपाल गुम-सुम बैठा रहा।

"शायद मुहाफ़िज़ ने कुछ सख़्त कलामी की है। बड़ा पाजी आदमी है।"

विजयपाल ने सिर झुका लिया।

जेलदार चुपचाप बाहर चला गया। उसके पीछे फाटक भी बन्द हो गया। विजय बहुत देर तक उसी अवस्था में बना रहा।

धीरे-धीरे कमरे में अंधकार व्याप्त होने लगा। उसने समझा अब रात हो गई। वह उठकर धीरे-धीरे टहलने लगा। भोजन अब भी यथास्थान रक्खा था। उसने उसे छुआ तक नहीं।

उसकी इच्छा हुई कि ख़ाँ को बुलाकर सारी स्थिति स्पष्ट कर दे और उससे सम्मति ले। वह दीवाल की ओर बढ़ा भी। पर इसी समय उसने देखा, शाह की ओर के झरोखे से एक पोटली झूल रही है। विगत रात्रि के अनुभव ने एक बार उसे पोटली से हाथ लगाने से रोका; साथ ही उसे ध्यान आया कि यहाँ इस तरह डरने से काम न चलेगा। उसने तिपाई को खींचकर दीवाल के पास कर लिया और उस पर चढ़कर पोटली में बँधे सेब, अमरूद और केले खोल लिए। फिर वह अपने तख्त पर जा बैठा और इतमीनान के साथ उन फलों को खाने लगा।

जब सब फल समाप्त हो गये तब वह फिर उठा और छिलकों को इकट्ठा करके उसने फिर उसी पोटली में बाँध दिया और फिर डोरी को हिलाकर संकेत किया। शाह ने एक बार नीचे को झाँका और पोटली को ऊपर खींच लिया। विजय अब निश्चिन्त होकर तख्त पर जा सोया।

दूसरे दिन विजय ने देखा, जेलदार सबेरे ही सबेरे उसके कमरे में आ गया था। उसने चाहा कि उठकर पहले दिनों सा अभिवादन करे, और वह उठने ही वाला था कि उसे पिछली रात की बीमारी का बहाना स्मरण हो आया। वह सिर पर हाथ धरे चुपचाप बैठा शून्य दृष्टि से जेलदार की ओर देखने लगा।

"कैसी तबीअत है ?" जेलदार ने प्रश्न किया।

"अच्छी नहीं है।" विजय ने धीरे से कह दिया।

"क्या तकलीफ़ मालूम पड़ती है ?" साहस पाकर जेलदार ने पूछा।

"रात को नींद नहीं आती, और थोड़ी बहुत कभी आती भी है तब बुरे-बुरे ख्वाब देखकर चौंक पड़ता हूँ। सिर में हर वक्त तेज़ दर्द रहता है।"

"आपने खाना नहीं खाया ?" तिपाई के ऊपर रक्खे भोजन की ओर संकेत करते हुए जेलदार ने पूछा।

"खाने की इच्छा ही नहीं होती!" विजय ने खाने की ओर बिना देखे ही कह दिया।

"मेरी समझ से आपकी इन सारी बीमारियों का सबब नहूसत है। अगर साथ में कोई हमजोली हो और उससे बातचीत करने का मौक़ा मिलता रहे तो यह शिकायत न हो।"

"शायद।"

"इस बुर्ज के पिछवाड़ेवाले बुर्ज में एक और शाहज़ादे को क़ैद किया गया है जिसका तअल्लुक़ क़न्नौज के बाग़ियों से बतलाया जाता है। आप चाहें तो उससे बातचीत करने का मौक़ा आपको दिया जा सकता है। मगर एक शर्त्त है कि बातचीत मुख़्तसिर ही होगी और आपसी मामलों से आगे न बढ़ेगी। क्योंकि वह क़ैदी बड़ा ख़तरनाक बतलाया जाता है।"

"कौन राजकुमार हो सकता है!" विजयपाल मन ही मन सोचने लगा। फिर उसने पूछा—"कौन शाहज़ादा है ?"

"किसी हिन्दू राजा का लड़का है। आप लोगों के नाम मुझे ठीक से याद नहीं रहते।" जेलदार ने साधारण विचार के पश्चात् कहा।

विजयपाल फिर सोचने लगा। सहसा उसे ध्यान आ गया, शायद कुशलपाल होगा। उसका स्मरण आते ही विजय का हृदय घृणा से भर गया और उसने मन ही मन निश्चय कर लिया कि भेंट होते ही वह उसका मुँह नोंच लेगा।

उसे चुप देखकर जेलदार ने कहा—"आप चाहें तो आपको मैं आज शाम को उसकी कोठरी में ले चल सकता हूँ। पर उससे पहले आपको मेरी एक अर्ज़ मंज़ूर करनी पड़ेगी।"

"वह क्या?" जेलदार के सज्जनोचित प्रस्ताव पर विजयपाल ने पूछा।

"यही कि आप इसी वक़्त थोड़ा-सा खाना खा लीजिए।" मुस्कराते हुए जेलदार ने कहा।

"यह खाना तो बासी है।" विजय ने घृणा के साथ थाली की ओर देखते हुए कहा।

"अभी ताज़ा मँगाये देता हूँ।" उत्साहित होते हुए जेलदार ने कहा।

"पर मैं बहुत थोड़ा खा सकूँगा, और वह भी महज़ आपका हठ रखने के लिए।" विजय ने अनुरोध के स्वर में कहा।

"जितनी मर्ज़ी हो, खा लीजिए।" कहकर जेलदार ने कहार को ताज़ा खाना लाने के लिए भेज दिया।

थोड़ी ही देर बाद कहार भोजन ले आया। अपने वचन को रखने के लिए विजयपाल ने जेलदार की उपस्थिति में ही थोड़ा-सा खा लिया।

इसके बाद शाम को ठीक समय पर आने का वचन देकर जेलदार चला गया।

विजय दिन भर इसी चिन्ता में पड़ा रहा कि जिस राजकुमार के सम्बन्ध में जेलदार ने कहा है, वह कौन हो सकता है। जेलदार ने उसका संबन्ध क़न्नौज की बग़ावत से बतलाया है और यह भी कहा है कि वह बड़ा ख़तरनाक आदमी है। क़न्नौज की बग़ावत में जो लोग अगुआ हैं उनमें हिन्दू सिर्फ़ दो हैं—वह स्वयं और चम्पालाल। तो क्या चम्पालाल को भी पकड़ लिया गया है और यहीं लाया गया है। यदि वह चम्पालाल ही हुआ तो सचमुच मामला टेढ़ा है। मुराद भाई और इम्दाद भी अवश्य पकड़ लिए गये होंगे और फिर इस तरह सारी की सारी योजना मिट्टी में मिल गई होगी। पर उन लोगों की गिरफ़्तारी का आधार क्या हो सकता है। क्या कुशलपाल ने मुख़बिरी की है और उसी का यह सब, नतीजा है। और यदि वह कुशलपाल ही हुआ तो...!

कुशलपाल पर उसका शुबह शुरू से ही था। पर अगर वह भी बादलगढ़ में बन्द है और उसके साथ भी ख़तरनाक क़ैदी का बर्ताव किया जा रहा है, तब तो यह अनुमान ग़लत हो सकता है। शाह साहब और अमजद ख़ाँ से इस मामले में सलाह लेना ठीक रहेगा या नहीं। मगर ऐसा करने के लिए उनके सामने सारा कच्चा चिट्ठा रख देना होगा, जो ठीक नहीं है। इस सीमा तक किसी का विश्वास कर लेना ठीक न होगा। सम्भव है कि जौनपुर के षड्यन्त्र के संबन्ध में यहाँ किसी को अधिक न मालूम हो। उस दशा में उसका शाह साहब या अमजद ख़ाँ को कुछ

बतला देना हानिकारक हो सकता है। जो कुछ भी हो, शाम को सब मालूम पड़ जायगा।

इस प्रकार वह दिन भर शाम की मुलाक़ात की तैयारी करता रहा और मन ही मन सोचता रहा कि यदि चम्पालाल हुआ तो वह क्या-क्या बातचीत करेगा और यदि कुशलपाल हुआ तो वह किस तरह उससे पेश आयेगा। वह चाहता था कि आज शाम जल्द हो जाय!

आख़िर चौथे पहर का समय भी आ गया। जेलदार ने दो सिपाहियों के साथ विजय की कोठरी में प्रवेश किया और उससे अपने साथ चलने के लिए कहा। विजय पहले से तैयार बैठा था। चारों आदमी कई गलियारे, सहन और ऊँची-नीची सीढ़ियाँ पार करते हुए एक कोठरी के सामने पहुँचे जिसके किवाड़ लोहे की मोटी-मोटी छड़ों से बने थे। विजय ने देखा, द्वार से सटे हुए तख़्त पर एक व्यक्ति लेटा हुआ है। उसकी पीठ बाहर की ओर है। बग़ल में एक तिपाई पर जूठे बर्त्तन जमा हैं जिनमें बची हुई जूठन ऐसे भद्दे ढंग से छितराई पड़ी है कि झुंड की झुंड मक्खियाँ चारों ओर भिनक रही हैं। उसके कपड़े बहुत मामूली और चिथड़े-चिथड़े हैं, जिनसे ज्ञात होता है कि वह किसी निम्नवर्ग का व्यक्ति है।

"इसके साथ वार्त्तालाप करना मेरी शान के ख़िलाफ़ होगा।" विजय ने मन ही मन निश्चय किया। फिर भी वह उस कोठरी की ओर बढ़ गया। उसे वहाँ छोड़ कर जेलदार और सिपाही वापस चले गये।

सहसा किसी की उपस्थिति का आभास पाकर ही तख़्त पर लेटे हुए क़ैदी ने जँभाई लेते हुए करवट ली। "हाय भगवान्!" उसने कराहते हुए कहा।

विजय को उसका कण्ठस्वर कुछ परिचित-सा लगा। वह तख़्त के कुछ और पास पहुँच गया।

"मालिक ज़ालिमों को ग़ारत करे।" कहकर क़ैदी उठ बैठा। विजय की उससे आँखें चार हो गईं।

"तुम यहाँ, विजयपाल जी!" क़ैदी ने सहसा जैसे चौंकते हुए कहा।

"सरदार कुशलपाल जी!" विजय ने भी आश्चर्य के साथ कहा।

"ठीक, ठीक; तुम मुझे पहचानते हो! पर अब मेरा दूसरा नाम है। यहाँ मैं 'पुरबिया' के नाम से मशहूर हूँ। क़ैदियों का नाम याद रखने में सहूलियत हो, इसलिए यहाँ के लोग उनके मनमाने नाम रख लेते हैं।" बनावटी कुशलपाल ने कहा।

"पर आप पुरबिया तो हैं नहीं?" विजय ने कहा।

"इसे कौन देखता-जानता है। मेरा रिश्ता क़न्नौज से जोड़ा गया है तो मुझे पुरबिया होना चाहिए।" घृणापूर्ण मुस्कान के साथ कुशलपाल ने सफ़ाई दी।

"आप यहाँ क़ैद में हैं क्या?" कुछ आश्चर्य प्रकट करते हुए विजयपाल ने कहा।

"और आप क्या ससुराल में समझ रहे हैं?" उसके आश्चर्य का समाधान-सा करते हुए बनावटी कुशलपाल ने कहा।

"तब दुश्मनों को हमारा भेद मालूम हो चुका है ?" वार्त्तालाप को मुख्य प्रसंग की ओर मोड़ते हुए विजय ने कहा।

"मेरा अन्दाज़ भी यही है।" बनावटी कुशलपाल ने एक ख़ास अदा से मुँह बनाते हुए कहा।

"और इसका श्रेय आपको है ?" विजय ने अपना आन्तरिक क्षोभ प्रकट करते हुए व्यंग्य किया।

"मुझे ? आप मज़ाक कर रहे हैं ?" चौंकते हुए बनावटी कुशलपाल ने कहा।

"हाँ, आपको। भेद खोलनेवाले आप ही हैं !" विजय ने दृढ़ता के साथ कहा।

"पागल तो नहीं हो गये हो ?"

"मुहाफ़िज़ ने मुझे बतलाया है।"

"मुहाफ़िज़ ने ! ठीक है। वह सचमुच नेक आदमी है। जानते हो, मुझसे उसने क्या कहा है ?"

"नहीं।"

"उसने कहा है कि आपकी मुख़बिरी पर मुझे गिरफ़्तार करके यहाँ पहुँचाया गया है !"

"मेरी !"

"और नहीं तो क्या ! पर इसके मानी यह नहीं हैं कि हम उन लोगों के बहकाने में आ जायँ और एक दूसरे का गला काटने को तैयार हो जायँ।"

"आख़िर उन लोगों को हमारा भेद कैसे ज्ञात हुआ?" असमंजस में पड़ते हुए विजय ने पूछा।

"यही तो मेरी समझ में भी नहीं आता। पर एक बात अपनी ओर से कह देना चाहता हूँ। आपको यह जान लेना चाहिए कि अगर मैं मुख़बिर बन जाता तो यहाँ और इस हालत में क्यों दिखाई देता। आप जानते ही हैं, मुख़बिरी एक सौदा है जिसकी क़ीमत बहुत ज़्यादा है, ख़ासकर मुल्ला पीरमोहम्मद की नज़रों में।"

"हो सकता है कि आपका कहना ठीक हो।"

"हो सकता है! यानी आपका शुबह मुझ पर बदस्तूर क़ायम है।" कुछ परेशान होते हुए बनावटी कुशलपाल ने कहा।

"अच्छा, जाने दीजिए! मुझे यही प्रसन्नता है कि आपके दर्शन हो गये।" कुछ नर्म पड़ते हुए विजयपाल ने कहा।

"पर इस प्रकार की मुलाक़ातें मुझे क़तई पसन्द नहीं हैं।" कुछ उदासी के साथ बनावटी कुशलपाल ने कहा।

"आख़िर क्यों?"

"ऐसी मुलाक़ातें अपने पीछे ग़म छिपाये रहती हैं?"

"यानी?"

"माफ़ कीजिए। आपका तजर्बा बहुत कम है। आप हर एक पर इतनी जल्दी यक़ीन कर लेते हैं कि......।"

"किस पर मैंने विश्वास कर लिया?"

"मेरा मतलब किसी ख़ास शख़्स से नहीं है। यही आज की ही बात

ले लीजिए। आपको क्या मालूम कि आप हमसे जो बातचीत कर रहे हैं, उसे कोई तीसरा नहीं सुन रहा है।"

"तीसरा यहाँ कौन बैठा है?" इधर-उधर देखते हुए विजयपाल ने कहा।

"यों ज़ाहिरा कोई भी न बैठा हो, पर ऐसी बातें सुनने के लिए दीवाल के भी कान हो जाते हैं और ख़ासकर ऐसी जगह में, जैसी कि यह बादलगढ़ है।"

विजय चुप सुनता रहा।

"आपको एक बात बतलाता हूँ जो आपके बहुत काम की होगी; आप यहाँ से चले जायँ, उस हालत में भी और यहाँ रहें उस हालत में भी।"

"कहिए; मैं सुन रहा हूँ।"

"आप हर एक का इतना जल्द विश्वास न कर लिया कीजिए। साथ ही ज़बान से जब कुछ कहा कीजिए, बहुत देख-भाल कर! बुज़ुर्गों का क़ौल है कि साज़िशकार के दो आँखें अगर आगे हों तो चार आँखें पीछे होनी चाहिएँ। मतलब यह कि उसे आगे देखने की उतनी ज़रूरत नहीं है, जितनी कि पीछे देखने की।"

विजय की समझ में आ गया कि वह क्या भूल कर रहा था। वह बनावटी कुशलपाल की ओर ध्यान से देखता हुआ चुपचाप खड़ा रहा।

"शेख़ साहब भी पकड़ गये हैं, क्या?" कुछ देर के पसोपेश के बाद बनावटी कुशलपाल ने पूछा।

"कह नहीं सकता। मैं ख़ुद आपसे पूछनेवाला था।" विजय ने साधारण भाव से उत्तर दिया।

"शायद वे भी गिरफ़्तार हो गये होंगे। आप किसी लड़की को उनके पास छोड़ आये थे?"

"आपको कैसे मालूम हुआ?"

"दुनिया में किसी चीज़ को छिपा रखना मुश्किल है। और फिर ऐसी चीज़ को जो रोशन हो! ख़ैर, मेरा मतलब यह है कि उस लडकी ने सारा राज़ खोल दिया होगा। औरत ज़ात...!"

"असम्भव! वह लड़की बहुत समझदार है और साहसी भी। फिर हमारा कोई भेद उसे मालूम नहीं।"

"औरत से कुछ भी नहीं छिपता।"

"यह मैं नहीं मान सकता। और मान लो, उसे कुछ मालूम भी हो तो वह कभी किसी को नहीं बतायेगी।"

"आप फिर ग़लती कर रहे हैं। औरत के दिल की बात जान लेना ज़रा भी मुश्किल नहीं है। आप किसी औरत से बातचीत शुरू भर कर दीजिए। वह आप से आप अपने भेद की सारी बातें आपको बताने लगेगी। और अगर कहीं उसे थोड़ा-बहुत डरा-धमका दिया जाय, तब तो कहना ही क्या? जो कुछ चाहिए, कहला लीजिए।"

"नन्दा ऐसी धमकियों में नहीं आ सकती। वह मुझे प्राणों से अधिक प्यार करती है!"

"प्यार करती है तब तो और मुश्किल है। प्यार एक ऐसी चीज़ है जो औरत के दिमाग़ को खोल देती है। ऐसी औरतें इशारा पाते ही

तोते की तरह पढ़ने लगती हैं। वही तो कहता हूँ कि अभी आपको दुनिया का तजर्बा नहीं है। ख़ैर, जाने दीजिए इन बातों को। अपना हाल सुनाइए।"

"मैं जैसा कुछ हूँ, सामने हाज़िर हूँ।"

"मेरा मतलब है, वक़्त कैसे काटते हैं?"

"दिन सोकर, रात कविता लिखकर, पड़ोसियों से बातें करके, दीवाल में छेद करके या सेब-केले खाकर!"

"ये सब चीज़ें कहाँ से मिल जाती हैं!"

"किसी न किसी तरह मिल ही जाती हैं!"

"कोई कुछ कहता नहीं?"

"किसी को कुछ मालूम हो तब न! और फिर अकेला मैं ही यह सब करूँ, तब तो कुछ बात भी हो। यहाँ तो हर एक यही करता है।"

नक़ली कुशलपाल ने आश्चर्य के साथ विजयपाल की ओर देखा। फिर कुछ सोचकर कहा—"अच्छा, यह बताइए कि क्या यह सच है कि आपको मौत की सज़ा दी गई है?"

"मुझे?" इस अप्रत्याशित प्रश्न से भौंचक्का-सा होकर विजय ने कहा।

नक़ली कुशलपाल ने सिर हिला दिया।

"आपको कैसे मालूम हुआ?" सिहरते हुए विजयपाल ने पूछा।

"आज सबेरे ही सुना था कि बीस क़ैदियों के लिए सज़ायेमौत का हुक्म हुआ है। उनमें आपका नाम था, और मेरा भी!"

"आपकी सूचना ठीक हो सकती है। मैं भी यही अनुमान कर रहा था। फिर भी आप निश्चिन्त-से दिखाई देते हैं।"

"सचमुच ?"

"हाँ, आपके चेहरे से घबड़ाहट का कोई लक्षण प्रकट नहीं होता। सचमुच आप वीर हैं। मैं नहीं समझता था कि आप ऐसे साहसी हैं।"

"आपको इससे तअज्जुब होता है ?"

"बेशक !"

"इसमें तअज्जुब की क्या बात है। हमारे और आपके जैसे पेशेवाले सर पर कफ़न बाँधकर तो बाहर निकलते ही हैं। न जाने कब मल्कुलमौत का पैग़ाम मिल जाय। तब कहाँ कफ़न खोजते फिरेंगे !"

"लेकिन मैं...?"

"आप इसके लिए अभी तैयार नहीं हैं, यही न ?"

"मैं कुछ दिन और ज़िन्दा रहना चाहता था।"

"तब आपने सचमुच बेवक़ूफ़ी की। मेरा मतलब यह है कि ज़िन्दगी का लालच जब आपके मद्दे नज़र था तब आपको ऐसे ख़तरनाक काम में हाथ नहीं डालना चाहिए था।"

"गुट्ट में शामिल होते वक्त़ उस तरह का कोई लालच मेरे सामने नहीं था।"

"अब ?"

"अब क्या ? अब तो जो होना था, वह हो चुका। क़दम आगे बढ़ाकर फिर पीछे नहीं लौटाया जा सकता।"

"शाबाश! आपसे मैं ऐसी ही उम्मीद रखता था। क्या आपको हवस में ले गये थे?"

"ले तो गए थे, पर तकलीफ़ नहीं दी।"

"तो अब दी जायगी।"

"क्यों?"

"यहाँ का शायद यही क़ायदा है कि एक दिन मुजरिम को वहाँ ले जाकर सब चीज़ें दिखाते-समझाते हैं। फिर उसे दो-चार दिन सोचने-समझने का मौक़ा देते हैं। अगर असामी फिर भी अपनी बात पर क़ायम रहता है तो उसे तकलीफ़ें देते हैं। मेरे साथ ऐसा हो चुका है।"

"यानी आपको तकलीफ़ें दी जा चुकी हैं।"

"देखते नहीं", अपने फटे वस्त्रों और घुटनों में लगे ज़ख्मों की ओर, जिनमें जगह-जगह पर पट्टियाँ बँधी थीं, संकेत करते हुए बनावटी कुशलपाल ने कहा।

"आपको कौन-सी तकलीफ़ दी गई थी?"

"पानीवाली! पाँच चिलमचियाँ पानी मेरे पेट में ढकेल दिया गया था।"

"कष्ट तो बहुत हुआ होगा?" कुछ काँपती आवाज़ से विजयपाल ने पूछा।

"क्या कहना! पर अब सब ठीक है। यहाँ तो ऐसी तबीअत पाई है कि ऐसी-वैसी तकलीफ़ें याद भी नहीं रहतीं। हाँ, यह ज़रूर हुआ है कि उस दिन से आँतों ने छुट्टी-सी ले रक्खी है। शोरबा तक हज़म करना नहीं चाहतीं।"

"आपका साहस मेरे लिए अच्छा उदाहरण है ?"

"पर आपने क्या तय किया है ? क्या आपका इरादा कुछ भी नही बताने का है !"

"बेशक !"

"आप अभी कह रहे थे न कि ज़िन्दगी का थोड़ा-सा लोभ आप में बाक़ी है ?"

"वह बात सच है, फिर भी मैं उस तरीक़े से ज़िन्दा रहना पसन्द नहीं करता।"

"मुझे यक़ीन है। फिर भी अगर आप चाहें तो मुहाफ़िज़ को एक-दो बातें बताकर उन तकलीफ़ों से बच सकते हैं।"

"मैं ऐसा नहीं कर सकता। ख़ैर, अभी आप कह रहे थे न कि मुझे मौत की सज़ा देना तय हुआ है ?"

"मुझसे ख़ुद मुहाफ़िज़ ने कहा था।"

विजय का मुँह सूख गया। उसका यह भाव-परिवर्तन नक़ली कुशलपाल से छिपा न रह सका। विजय की परेशानी का लाभ उठाते हुए उसने कहा—"फिर भी मेरी सलाह यही है कि आप थोड़ा-बहुत इक़बाल करके अपनी जान बचा लें तो अच्छा होगा।"

"जो काम आपने नहीं किया, उसे करने की सलाह मुझे क्यों दे रहे हैं ?" चिन्ता और सन्देह के स्वर में विजय ने प्रश्न किया।

"हम दोनों की हालतों में काफ़ी फ़र्क़ है। मेरे आगे-पीछे कोई नहीं है। मेरे मरने पर किसी के फूल जैसे नाज़ुक दिल को सदमा नहीं होगा; किसी की सीप जैसी आँखें आँसू नहीं बहायेंगी।"

विजय को तुरन्त नन्दा का ध्यान आ गया। उसने एक गहरी साँस ली।

"आप समझ गए न कि हम दोनों की हालतों में किस हद तक ज़मीन-आसमान का फ़र्क़ है। अपनी तरह मुझे भी साँसें भरते कभी आपने देखा है?"

"कोई चिन्ता नहीं। शेख़ साहब तो हैं ही, मेरे पीछे वे उसकी रक्षा करेंगे?"

"और अगर वे भी गिरफ्तार कर लिये गये, जो ग़ैर मुमकिन नहीं है?"

"तब......?"

"हाँ, उस हालत में क्या होगा?"

"जो और हज़ारों विधवाओं की रक्षा करता है, वह उसकी भी रक्षा करेगा।"

"आपका लड़कपन अभी नहीं गया!"

"कैसे?"

"मान लीजिए कि शेख़ साहब गिरफ़्तार नहीं हुए?"

"तब?"

"तब क्या वे उसके साथ......!"

"चुप रहिए!"

"क्यों?"

"अपनी सफ़ेद दाढ़ी पर स्याही पोतना उन्हें कैसे गवारा होगा?"

"वैसी स्याही सब पसन्द करते हैं। इसी लिए तो लोग ख़िज़ाब लगाना पसंद करते हैं, पेठे का पानी* लगाना नहीं।"

"मैं ऐसी बातें ख़याल में लाना भी नहीं चाहता!"

"नहीं-नहीं, मेरा मतलब यह नहीं है कि आप ऐसी बातों के पीछे परेशान हों। मैंने तो ऐसे ही मामूली-सी एक बात कह दी थी।"

"कोई इधर ही आ रहा है।" एक व्यक्ति की ओर संकेत करते हुए विजयपाल ने कहा, जो उसी की ओर चला आ रहा था।

बनावटी कुशलपाल भी उसकी ओर देखने लगा। फिर बोला—"हमारी मुलाक़ात का वक़्त शायद ख़त्म हो चुका है। यह कहकर वह फिर चुपचाप तख़्त पर लेट गया।

इसी बीच जँगलेदार किवाड़ खुले और जेलदार भीतर आया। विजय को सम्बोधित करते हुए उसने कहा—"अपने साथी से बातचीत करके आपकी तबीअत ज़रूर हलकी हुई होगी!"

"बेशक, सरदार साहब मेरे पुराने मुलाक़ाती हैं।"

"तब तो मेरे लिए मुश्किल है। लेकिन ख़ैर, मैं आपको ज़बान दे चुका हूँ। आपको मैं दिन में एक बार यहाँ आकर सरदार साहब से बातचीत करने की रियायत दे सकता हूँ। आप किस वक़्त आना पसन्द करेंगे, सबेरे को या शाम के वक़्त?"

विजय कुशलपाल की ओर देखने लगा।

---

*पेठे के पानी से काले बाल सफ़ेद हो जाते हैं।

"इसी वक्त ठीक रहेगा।" जल्दी से कुशलपाल ने कह दिया।

"अच्छी बात है।" कहकर जेलदार ने विजयपाल की ओर रुख़ किया।

दोनों ने एक-दूसरे को अभिवादन किया। इसके बाद विजय उठकर जेलदार के साथ-साथ अपनी कोठरी की ओर चल दिया।

अपनी कोठरी में लौट आने पर विजयपाल ने देखा कि अमजद ख़ाँ उसकी प्रतीक्षा में झरोखे के पीछे बैठे हैं। उसने तुरन्त तिपाई खींचकर दीवाल के पास लगा ली और उस पर खड़े होकर धीरे से कहा—"मैं भेंट कर आया ?"

"किससे ?" अमजद ख़ाँ ने प्रश्न किया।

"एक जान-पहचान के क़ैदी से !"

"क्या नाम है उसका !"

"सरदार कुशलपाल !"

"सरदार कुशलपाल ?"

"हाँ, आप क्या उन्हें जानते हैं !"

"ज़रूर ! माछीवाड़ेवाले न ?"

"हाँ, वे ही तो !"

"जो शेख़ कमाल बियावानी के शागिर्द बनकर यहाँ सराय फ़िरोज़ी में रहते थे ?"

"वही ! कैसे आदमी हैं वे !"

"मुग़लों के जानी दुश्मन !"

"ठीक है। यही मैं भी समझ रहा था !"

"उनसे हमारे तअल्लुक़ात बहुत पुराने हैं। क्या वे भी बादलगढ़ में हैं?"

"हाँ।"

अमजद ख़ाँ ने एक गहरी साँस ली। फिर कहा—"कब गिरफ़्तार किए गए?"

"शायद मेरे साथ ही!"

"आदमी बहुत दिलावर और ठिकाने का है!"

"मेरा ख़याल भी ऐसा ही है।"

"मुअतबिर आदमी है।"

"यही चाहिए। मेरे तीन दोस्तों की जानें उसी के हाथ में हैं!"

"एक आप, दो और कौन?"

"मैं अपने को नहीं गिनता।"

"क्यों!"

"मुझे तो मौत की सज़ा दी जा चुकी है!"

"मौत की सज़ा?"

"और नहीं तो क्या!"

"झूठ है!"

"झूठ है?" हृदय में एक सिहरन-सी अनुभव करते हुए विजयपाल ने कहा!

"झूठ नहीं तो क्या है! इस बुर्ज़ में हम पाँच-छः क़ैदी एक ही तरह के हैं। हमारे मुक़दमे की समाअत के लिए अदालत सालसी की तजवीज़ होगी और जो सज़ा दी जायगी वह सबके लिए एक-सी होगी!"

"आपको यह सब कैसे मालूम हुआ !"

"शाह साहब से जेलदार की बातचीत हुई थी !"

"मगर कुशलपाल भी झूठ नहीं बोलेंगे।"

"हो सकता है उन्हें ग़लत ख़बर मिली हो !"

"कह रहे थे कि ख़ुद मुहाफ़िज़ ने उनसे कहा है।"

"मुहाफ़िज़ अकसर शरारतभरी बातें करता है। उस पर ज़्यादा यक़ीन नहीं किया जा सकता।"

इसी समय शाह साहब भी अपनी ओर के झरोखे के पीछे आ गये और उन्होंने विजय को संकेत किया। विजय ने तिपाई खींचकर उस झरोखे के नीचे लगा ली।

"सुनते हो मियाँ ?" शाह साहब ने पुकारा।

"जी !"

"आज सबेरे जेलदार दरवाज़े के सामने खड़ा मोहतसिब से बतला रहा था कि हम लोगों के मामले की समाअत के लिए आज ही अदालत सालसी बैठ रही है।

"उन्हें जो कुछ करना होगा, करेंगे ही !"

"अरे मियाँ करेंगे क्या ! बिहश्त से भी आगे कहीं ले जायँगे ?" कहकर शाह ने हँस दिया।

विजय को उस स्वप्न की याद आ गई जिसमें उसने स्वयं को स्वर्गीय सम्राट् हेमू विक्रमादित्य के साथ स्वर्ग की ओर जाते अनुभव किया था। उसकी इच्छा हुई कि वह किसी प्रकार अपने को कोठरी के घनीभूत अंधकार में विलीन कर दे।

इसी समय उसे कोठरी में हलके प्रकाश की झलक दिखाई दी और कोठरी के दरवाज़े पर कुछ शब्द सुनाई दिया। उसे लगा अंतिम क्षण आ पहुँचा है। तिपाई को यथास्थान रखकर वह तख़्त पर स्थिर भाव से बैठ गया। आठ सशस्त्र सिपाहियों, जेलदार और एक मुंशी के साथ एक उच्च अधिकारी ने उसकी कोठरी में प्रवेश किया। विजयपाल उठकर खड़ा हो गया।

"शाहज़ादे साहब, अदालती सालसी ने आपको क़त्ल और बग़ावत के जुर्मों का मुलज़िम क़रार दिया है। अगर आप अपनी तरफ़ से कुछ सफ़ाई पेश करना चाहते हों तो कर सकते हैं। आपके बयान को क़लम-बन्द करने की ग़रज़ से ही हम लोग आपको तकलीफ़ देने आये हैं। अगर आप इसकी तैयारी के वास्ते कुछ मियाद चाहते हों तो वह भी ख़ुशी से मंज़ूर की जा सकती है; बशर्ते कि आप दो दिन से ज़्यादा वक़्त न लें। अगर आप कुछ बयान इस वक़्त देना चाहें और उनकी बिना पर अपने मामले पर दोबारा ग़ौर करने की दरख़्वास्त करें तो मैं उसके वास्ते भी अदालत से सिफ़ारिश कर सकता हूँ। अपने मामले के काग़ज़ात आप देखना चाहें तो वे भी हाज़िर हैं। आपके ख़िलाफ़ जो कुछ शहादत पेश हुई है वह भी मौजूद है! चाहें तो उसका भी मुताला कर सकते हैं।" अधिकारी ने कहा।

"मैं सिर्फ़ सज़ा का हुक्म सुनना चाहता हूँ, और कुछ नहीं।" विजय ने वीरोचित दृढ़ता के साथ कहा।

"इतनी ज़िद अच्छी नहीं होती, शाहज़ादे साहब! बेहतर हो कि

आप इक़बाल कर लें। आपकी इस भोली सूरत पर मुझे तरस आता है।" उच्च अधिकारी ने फिर कहा।

"जब मैं यही नहीं जानता कि मुझे किस बिना पर क़ातिल और बाग़ी ठहराया गया है, तब मैं क्या बतलाऊँ ?"

"आप जानना चाहते हैं! अच्छा सुनिए! आप क़न्नौज से जनाब वकील मुतलक़ को क़त्ल करने के इरादे से चले और आगरे आये। वहाँ से आप चलकर सराय फ़िरोज़ी पहुँचे और एक और शख़्स के पास, जिसका नाम सरदार कुशलपाल है और जो ख़ुद ख़ानख़ानाँ के क़त्ल की घात में एक मुद्दत से है, आकर ठहरे।" नर्मी के साथ उच्च अधिकारी ने दोहरा दिया।

'इन लोगों से कुछ छिपा नहीं है ?' विजय ने मन में सोचा। फिर कहा—"अगर यह तोहमतें सच भी हों तो आपके पास—अदालत के पास—इनकी सचाई का क्या सबूत है ? मान लीजिए कि मैं इसी इरादे से चला था, जैसा कि आप फ़रमाते हैं, पर न तो मैंने किसी पर हाथ उठाया और न किसी से कुछ कहा। इस हालत में मैं किसी अपराध-विशेष का अपराधी कैसे माना जा सकता हूँ ?"

"आपका कहना ठीक हो सकता है। पर आपके साथियों से अदालत को आपके इरादे का पता लग गया है।"

"यानी सरदार कुशलपाल ने मुख़बिरी की है ?"

"मेरा मतलब आपके दूसरे साथियों से है।"

"दूसरे साथियों से ? क्या मेरे और सरदार कुशलपाल जी के

अलावा और लोग भी गिरफ़्त में हैं ?" आश्चर्य के साथ विजयपाल ने प्रश्न किया।

"हाँ, मुराद बेग, इम्दाद ख़ाँ और चम्पालाल।"

"मै समझा नहीं।" मन में कँपकँपी जैसी अनुभव करते हुए विजय-पाल ने कहा।

"आप क्या नहीं समझे ? मुराद बेग, इम्दाद ख़ाँ और चम्पालाल गिरफ़्तार करके ग्वालियर के क़िले में पहुँचा दिये गये हैं जहाँ उनके मामले की तफ़तीश हो रही है।"

"मुराद बेग गिरफ़्तार हो गये ? नामुमकिन !" कुछ ऊँचे स्वर में विजय ने कहा।

अधिकारी इससे कुछ भी विचलित नहीं हुआ। उसने शान्ति के साथ कहा—"नामुमकिन क्यों ?"

"क़न्नौज से लेकर कड़ा तक के लोग उन्हें जान से ज़्यादा प्यार करते हैं।"

"ज़रूर करते होंगे। पर यक़ीन मानिए कि उन लोगों की गिरफ़्तारी हो गई और किसी को उँगली उठाने तक की हिम्मत नहीं हुई। सब अपना काम बदस्तूर कर रहे हैं। हाँ, कुछ लोग यह जानने की कोशिश ज़रूर कर रहे हैं कि उन लोगों की गर्दनकुशी किस जगह होगी। शायद, वे भी उस तमाशे में शामिल होना चाहते होंगे।"

"मुझे विश्वास नहीं होता।" विजय ने कुछ निरपेक्ष भाव से कहा।

"ज़रा काग़ज़ इधर देना।" कहते हुए अधिकारी ने मुंशी की ओर हाथ बढ़ाया और एक काग़ज़ निकालकर विजय के सामने करते हुए कहा—

"यह देखिए। यह उन लोगों के बयान हैं ! क्या अब भी आपको शक है?"

"पर इसमें यह कहीं नहीं लिखा कि उन लोगों ने मुझे क़सूरवार बतलाया है। सरसरी निगाह से काग़ज़ को पढ़ते हुए विजय ने कहा।"

"हम लोग जो कुछ जानना चाहते थे, वह सब उन्होंने बतला दिया है। उसी से आप क़सूरवार साबित हो जाते हैं।"

"अच्छी बात है। तब मेरा इक़बाल बेकार है। क्योंकि आप लोगों को सब कुछ मालूम हो ही चुका है।"

"आपका आख़िरी जवाब यही है?"

"जी!"

"मोहतसिब साहब, फ़ैसला पढ़ दीजिए।" मोहतसिब की ओर मुँह करके उसने आज्ञा दी।

मोहतसिब ने पढ़ा—

"ख़ुदा के बन्दे और शाहंशाह आज़म के सरपरस्त सदरुस्सदूर वकीले मुतलक़ आलीजाह खानखानाँ बैरम खाँ को क़त्ल करने और सल्तनत मुग़लिया के निज़ाम में बेजा मदाख़लत करने की साज़िश का शरीक मुलज़िम पाकर यह अदालत सरदार विजयपाल के लिए सज़ायेमौत तजवीज़ करती है। और अगर ख़ुद शाहंशाह आलम या जनाब वकीले मुतलक़ साहब उस पर रहम करके किसी दूसरी सज़ा की सिफ़ारिश न करें, यह हुक्म बिला तवक़्क़ुफ़ अमल में लाया जाय, और नीज़ मुलज़िम हाज़ा की सारी जायदाद मनक़ूला व ग़ैरमनक़ूला ज़ब्त करके ज़र नक़द पर नीलाम फ़रोख़्त कर दी जाय और उससे जो रक़म वसूल हो उसे बतौर जुर्माना शाही ख़ज़ाने

में जमा कर दिया जाय। बदस्तख़त मीर अद्ल जनाब हाजी मोहम्मद सीस्तानी और बमोहर अदालत के बतारीख़······।"

"बस बस ! बीच में टोकते हुए विजयपाल ने कहा। वीरोचित साहस और दर्प इस समय उसके चेहरे पर झलक रहा था।"

अधिकारी और मोहतसिब दोनों सन्नाटे में आकर उसकी ओर देखने लगे।

"इस आज्ञा का पालन कब किया जायगा ?"

"इसके लिए दूसरा हुक्मनामा जारी होगा।"

एक क्षण के लिए विजय को ऐसा लगा मानो उसकी आँखों के सामने अँधेरी झुकी आ रही है और उसका मस्तिष्क विचार-शून्य हो गया है। पर दूसरे ही क्षण उसने स्वयं को सँभाल लिया। फिर ओंठों पर घृणापूर्ण मुस्कान लाते हुए उसने कहा—

"मैं उस सज़ा के लिए तैयार हूँ। पर मैं यह जानना चाहता हूँ कि यदि मैं मरने से पहले किसी विशेष रिआयत के लिए प्रार्थना करूँ तो वह मुझे दी जायगी ?"

"यह रिआयत की क़िस्म पर मुनहसिर करता है। पर मैं आपको यह यक़ीन दिला सकता हूँ कि आपके थोड़ा-सा भी इक़बाल कर देने पर न सिर्फ़ सज़ा की मियाद बहुत दिनों के लिए टल सकती है, जनाब वकीले मुतलक़ आपको और भी बहुत-सी रिआयतें देना ख़ुशी से मंज़ूर करेंगे।"

"आप ग़लत समझ गये। मैं जिस तरह की रिआयत चाहता हूँ उससे आपका या वकीले मुतलक़ का किसी तरह का कोई नुक़सान नहीं होगा। हाँ मुफ़्त में ही वे मुझे ममनून व मशकूर ज़रूर कर देंगे।"

"आप क्या रिआयत चाहते हैं ?"

"पहली बात तो मैं यह चाहता हूँ कि मेरी सम्पत्ति की ज़ब्ती का हुक्म वापस ले लिया जाय। मेरे कोई औलाद नहीं है। इसलिए कुछ दिन बाद मेरी सारी सम्पत्ति, जो कि बहुत ज़्यादा यों भी नहीं है, लामुहाला सरकारी ख़ज़ाने में पहुँच जायगी; पर किसी ख़ास सबब से अपनी मौत के कुछ दिन बाद तक मैं और उसे बचाये रखना चाहता हूँ।"

"इसका फ़ैसला वकीले मुतलक़ ही कर सकते हैं।"

"दूसरी रिआयत और भी चाहता हूँ; पर मैं यह नहीं जानता कि उसे मंज़ूर करने का अधिकार किसको है !"

"पहले मुझे सुनाइए ! फिर मैं बतला दूँगा कि किस से दरख़्वास्त करने पर आपका काम चलेगा।"

"मैं एक लड़की से, जो आजकल शेख़ कमाल वियावानी की सरपरस्ती में है, और शेख़ साहब से एक बार भेंट करना चाहता हूँ।"

इस पर अधिकारी ने एक विचित्र प्रकार का मुँह बनाया, जिसका अर्थ विजय ने यह लगाया कि वह इस प्रकार की भेंट को उचित नहीं समझता। अतः उसने फिर प्रार्थना की—"मैं सिर्फ़ कुछ क्षणों के लिए मुलाक़ात चाहता हूँ; जहाँ भी आप लोग उचित समझें।"

"आपको इजाज़त मिल सकती है।"

"मैं आपका बहुत ऋणी रहूँगा।" दो क़दम आगे बढ़कर नम्रता से हाथ जोड़ते हुए विजय ने कहा।"

"फिर भी एक शर्त है !"

"मैं हर एक शर्त मानने को तैयार हूँ।"

"आप अपनी सज़ा के बारे में दो में से किसी से भी कुछ न कहेंगे।"

"यह शर्त मुझे वैसे भी मंज़ूर है। कारण यह है कि उन दोनों जनों में एक तो ऐसा है जो मेरे प्राणदंड की आज्ञा सुनते ही बेहोश हो जायगा।"

"तब ठीक है। आपको और कुछ कहना है?"

"और कुछ नहीं कहना है।"

"तब अपने बयानों को एक बार पढ़ लीजिए और दस्तख़त कर दीजिए।"

"विजय तख़्त पर बैठ गया और काग़ज़ हाथ में लेकर उसने अपने नकारात्मक उत्तरों को ध्यान से पढ़ा। फिर उन्हें ठीक पाकर उसने हस्ताक्षर कर दिये और काग़ज़ अधिकारी को लौटाते हुए पूछा—

"आपके दर्शन एक बार और हो सकेंगे?"

"मैं ठीक से नहीं कह सकता।"

"अच्छा, तो अब परलोक में ही मिलेंगे।" कहकर विजय ने दोनों हाथ जोड़ कर नमस्कार किया।

काग़ज़ हाथ में लेकर उदास चेहरा लिये अधिकारी अपने दल के साथ कोठरी से बाहर हो गया।

———

अधिकारी के कह जाने पर भी विजय को विश्वास नहीं हुआ कि मृत्युदंड से पूर्व उसे शेख़ साहब या नन्दा दो में एक से भी मिलने का अवसर मिल सकेगा। वह यह भी समझ गया था कि जेलख़ाने में उसे अब अधिक दिन न रक्खा जायगा। इस दशा में नन्दा से कुछ कह जाना या उसके लिए कुछ व्यवस्था कर जाना उसे असम्भव ही दिखाई देता था। अन्त में उसने यह निश्चय किया कि एक पत्र लिखा जाय, नन्दा के नाम, जो वसीयत के रूप में हो। वह पत्र यदि किसी प्रकार नन्दा तक पहुँच गया तो नन्दा शेख़ साहब के द्वारा बैरम ख़ाँ को वह पत्र दिखला सकेगी और संभव है कि बैरम ख़ाँ दया करके नन्दा को मेरी पैतृक संपत्ति का अधिकारी स्वीकार कर ले। यदि ऐसा न भी हो सका तो नन्दा को उस पत्र से कुछ न कुछ सान्त्वना तो मिल ही जायगी और उसे निश्चय हो जायगा कि मैं उसे कितना प्यार करता था।

पर नन्दा के पास पत्र पहुँचेगा कैसे ? जेलख़ाने का कोई अधिकारी ही यह कर सकता है। पर वे लोग इसकी चिन्ता क्यों करने लगे ? जेल-दार सहृदय प्रतीत होता है। उससे प्रार्थना की जाय तो सम्भव है वह इतना काम कर दे। पर नन्दा न जाने होगी कहाँ ! वह उसे शेख़ साहब

के पास छोड़ आया था। कुशलपाल गिरफ़्तार हो गये हैं तो शेख़ साहब भी कैसे बचे रहे होंगे। उस दशा में नन्दा न जाने कहाँ की मारी कहाँ पहुँची होगी। सम्भव है, वह फिर गिरफ़्तार करके उसी स्त्री के पास पहुँचा दी गई हो। यदि ऐसा हुआ होगा तो नन्दा का छुटकारा इस बार असम्भव ही होगा। अब उस पर चौकी-पहरा कड़ा रहेगा। और विजयपाल का पत्र तो वहाँ तक अब किसी प्रकार न पहुँच सकेगा। उसे रामपाल की याद आई! पर रामपाल का भी क्या ठिकाना। वह न जाने कहाँ पहुँचा होगा। सम्भव है, मेरी गिरफ़्तारी की सूचना उसे मिल गई हो और वह क़न्नौज लौट गया हो।

फिर भी पत्र उसे लिख डालना चाहिए। साँईं के सौ ख़याल! वह पत्र लिखकर शाह साहब या अमजद ख़ाँ को दे देगा। वे लोग किसी हिकमत से नन्दा के पास पहुँचा देंगे। और न पहुँचा सके तो फिर उपाय ही क्या है! पर प्रत्येक दशा में पत्र उसे लिखना ही है। आज की रात उसके जीवन की आख़िरी रात है। आज का एक-एक क्षण बहुमूल्य है। ऐसे अमूल्य समय को सोकर बरबाद नहीं करना चाहिए। फिर तो सोना ही सोना है।

वह उठ बैठा और शाह साहब के जँगले के नीचे पहुँचकर दीवाल ठोंकने लगा।

"क्या है?"

"मैं पत्र लिखना चाहता हूँ।"

"इस वक़्त!"

"ज़रूरत ही ऐसी आ पड़ी है!"

"भेजेंगे किस तरह ?"

"आपके हाथ !"

"मेरे हाथ !" शाह हँस पड़े। फिर बोले, "क्या कह रहे हैं आप ?"

"कोई मुलाक़ाती आयगा, उसे दे दूँगा।"

"कोई मुलाक़ाती आनेवाला है क्या ? पर यह बात यहाँ के लिए नई होगी।"

"नई होगी !"

"यहाँ के क़ैदियों को अक्सर मुलाक़ात करने की इजाज़त नहीं मिलती। अगर मिलती भी है तो मुलाक़ात का ढंग भी अजीब रहता है। आते-जाते वक़्त मुलाक़ाती की नंगाझार तलाशी ली जाती है। मुलाक़ात के वक़्त भी उसे एक दीवाल के एक तरफ़ खड़ा करते हैं और असामी को दूसरी तरफ़। जिससे दोनों एक-दूसरे की आवाज़ भर सुन पाते हैं, शक्ल नहीं देख पाते। उस पर मोहतसिब और सिपाही सर पर सवार रहते हैं। ख़ैर, आप चाहें तो ख़त लिख सकते हैं। काग़ज़, स्याही चाहिए क्या ?"

"जी, और रोशनी भी !"

"रोशनी अमजद ख़ाँ से लीजिए।"

शाह ने काग़ज़ और कोयले की बत्तियाँ नीचे डाल दीं, जिन्हें विजय ने टटोलकर उठा लिया। इसके बाद वह अमजद ख़ाँ को संकेत करने लगा।

"सलाम, कहिए ख़ैरियत तो है न ?" अमजद ख़ाँ ने ऊपर से पूछा।

"इनायत है ! रोशनी दे सकेंगे आज ?"

"मजबूरी है। उस दिन मेरी सारी चीज़ें उठा ली गई हैं और तब से शोरबेदार तरकारी भी नहीं मिलती जिससे तेल चुरा सकूँ। सूखी दाल-रोटी मिल रही है। बड़ी मुसीबत है। क्या कीजिएगा रोशनी का ?"

"ख़त लिखना चाहता था !"

"कल सवेरे लिख लीजिए ! ऐसी जल्दी क्या है !"

"वही करूँगा।" कहकर विजय अपने तख़्त पर जा लेटा और मन ही मन सोचने लगा, "कल न जाने कैसा हो।"

इसी सोच-विचार में पड़े-पड़े न जाने कब उसे नींद आ गई। स्वप्न में उसने देखा, एक मैदान है। बड़ा लम्बा-चौड़ा। ऐसा, जिसका ओर-छोर नहीं दिखाई देता। वह उसी मैदान के बीचोंबीच खड़ा है। ऊपर धुँधला आसमान है, नीचे मटमैली ज़मीन। दाहिनी तरफ़ उसका घोड़ा खड़ा है और बाईं तरफ़ उसके कन्धे पर हाथ रक्खे नन्दा। नन्दा बहुत प्रसन्न दिखाई दे रही है। वह आँखें बन्द किये मन ही मन कुछ गुनगुना रही है, मानो स्तोत्र पढ़ रही हो।

इसी बीच उसे ऐसा लगता है मानो भूकम्प आ गया हो। ज़मीन थाली की तरह थरथराने लगती है। आसमान में धुआँ-सा उड़ने लगता है। घोड़ा हिनहिनाकर भाग जाने की चेष्टा करता है। ज़मीन जगह-जगह दरक जाती है। नन्दा भयभीत हो जाती है और कहती है, "अब चलो भाग चलें कहीं, विपत्ति आनेवाली है।" विजय उत्तर देता है, "तुम्हें तो प्रत्येक समय भागना ही भागना सूझता है, नन्दा, मानो हम हरिण या ख़रगोश हों, जिनके पास भागने के सिवाय जान बचाने का दूसरा उपाय

नहीं है। फिर भागकर जायँगे कहाँ, वह देखो उधर!" कहकर वह नन्दा को मैदान की चारों सीमाओं की ओर देखने का संकेत करता है, जहाँ से अनन्त जल-राशि उमड़कर मैदान को आप्लावित करती हुई उन्हीं की ओर आ रही है।

नन्दा भय से दोनों आँखें बन्द करती हुई कहती है- "तुम जो उचित समझो, वही करो, प्यारे विजय। तुम पास हो तो मुझे भय किसका है! हम दोनों साथ-साथ डूब मरें तो भी हर्ज़ नहीं है।" यह कहकर वह विजय की छाती से चिपट जाती है।

इसी समय विजय को एक भयानक शब्द सुनाई पड़ता है। वह ऊपर की ओर सिर उठाकर देखता है। आसमान कुम्हार के चाक की तरह ज़ोर-ज़ोर से चक्कर लगा रहा है! सूरज, चाँद, तारे और नक्षत्र टूट रहे हैं, जिससे यह शब्द हो रहा है। उनके आघात से पृथ्वी पत्ते की तरह काँप रही है। विजय समझता है, प्रलयकाल आ गया। वह नन्दा को छाती में सटाने के लिए दोनों बाहु खोल देता है।

पर उसके बाहु खुले के खुले ही रह गये। उसकी नींद खुल गई।

कमरे में आनेवाला मन्द प्रकाश सूचना दे रहा था कि बाहर सवेरा हो चुका है। इसी समय उसे ऐसा लगा मानो भीतर का दरवाज़ा खोला जा रहा है। कल की बातें बिजली की तरह उसके स्मृतिपट पर चमक गईं। उसने समझा, वधिक उसे ले जाने के लिए आ पहुँचे हैं। आकस्मिक साहस का उसकी प्रत्येक धमनी में संचार हो उठा। वह तुरन्त उठ बैठा और अपने वस्त्र ठीक करने लगा जिससे वधिक उसे आशा से पहले ही तैयार पाकर आश्चर्य में आ जायँ।

पर उसे यह देखकर स्वयं आश्चर्य हुआ कि आनेवाला व्यक्ति बधिक न होकर जेलदार था। विजय ने उत्कण्ठा के साथ उसके मुँह की ओर देखा। वहाँ कोई असाधारण भाव नहीं था। जेलदार ने नित्य के अपने नियम के अनुसार सलाम करके मुस्कराते हुए कहा—"गोल चक्कर तक चलने की तकलीफ़ कीजिएगा?"

कारण पूछना विजय ने अनावश्यक समझा। वह चुपचाप उठकर जेलदार के पीछे हो लिया। उसे लगा, उसके कान हज़ारों मधुमक्खियों की सम्मिलित भनभनाहट से भर गये हैं। अब और किसी शब्द का सुनना-समझना उसके लिए संभव नहीं है।

रास्ते में उसने जेलदार से धीरे से प्रश्न किया—"गोल चक्कर में मुझे क्यों ले चल रहे हैं?"

सहज भाव से जेलदार ने उत्तर दिया—"मुलाक़ात के लिए।" विजय को लगा, इसी एक शब्द ने उसको आसमान से उतारकर फिर पृथ्वी पर रख दिया है जहाँ वह अपने पैर टिका सकता है। कानों में गूँजनेवाली भनभनाहट भी एक साथ बन्द हो गई। आशाभरी दृष्टि से जेलदार की ओर देखते हुए उसने फिर प्रश्न किया—"कैसी मुलाक़ात!"

"कल मोहतसिब से मुलाक़ात के लिए आपने कहा था, न?"

"तो क्या वही लोग आये हैं?" उत्सुकता को दबाने का असफल प्रयत्न करते हुए विजयपाल ने कहा।

"हाँ।" संक्षेप में जेलदार ने उत्तर दिया।

विजय एक क्षण के लिए उधेड़-बुन में पड़ गया। उसने दो व्यक्तियों से भेंट कराने की प्रार्थना की थी। जेलदार के इस संक्षिप्त-से उत्तर से वह

यह निश्चय न कर सका कि शेख़ साहब मुलाक़ात के लिए आये हैं, या नन्दा, या दोनों। उसे जेलदार से और अधिक पूछने का साहस नहीं हुआ। वह चुपचाप उसके पीछे-पीछे चला गया। गोल चक्कर में एक साथ तीन बड़े-बड़े कमरे थे। दो बड़े-बड़े, अगल-बगल, एक बीच में, उनसे कुछ छोटा पर चौकोर। इसी बीचवाले कमरे में विजय को ले जाकर ठहराते हुए जेलदार ने कहा—"इसी चौकी पर तशरीफ़ रखिए! मुलाक़ात यहीं होगी।" विजय ने एक नज़र से कमरे का कोना-कोना देख डाला। वहाँ कोई नहीं था। 'शायद बाहर होंगे', सोचकर विजय पीछेवाले जँगले से बाहर की ओर झाँकने लगा। उधर एक संतरी पहरा दे रहा था।

कुछ देर बाद कमरे का द्वार खुला। विजयपाल ने घूमकर देखा, शेख़ कमाल बियावानी स्थिर चरणों से कमरे में प्रवेश कर रहे थे। विजय को लगा, उनके आने से कमरे में सहसा पवित्रता और गंभीरता का प्रवेश हो गया है। वह दौड़कर शेख़ साहब के चरणों पर गिर पड़ा।

"इतनी परेशानी की क्या ज़रूरत है?" उसे हाथ का सहारा देते हुए शेख़ ने कहा।

"आपने इस ग़रीब की प्रार्थना पर यहाँ पधारने का कष्ट किया।" हाथ जोड़ते हुए विजय ने कहा।

"उन्सियत और इन्सानियत का तक़ाज़ा यही था।" शेख़ ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया।

"दुश्मनों ने आपको तो परेशान नहीं किया?"

"मुझे कोई क्यों परेशान करता ? ख़ासकर जब आप जैसे वफ़ादार लोग मेरे दोस्त हैं।"

"मैं आपका एक छोटा-सा सेवक हूँ!"

"मैं उम्मीद करता हूँ कि दुश्मन ने तुम्हारे मुँह से कुछ न जान पाया होगा।" शेख़ ने इतनी धीमी आवाज़ से, जिसे केवल विजयपाल ही सुन सके, कहा।

"अपने शरीर का मैं विश्वास दिलाता हूँ। दूसरों के बारे में नहीं कह सकता।"

"यह इशारा किस तरफ़ है?"

"सरदार कुशलपाल भी तो बादलगढ़ की मेहमानी में हैं।"

"हाँ, शायद! सुना कुछ मैंने भी था," बातें बनाते हुए बनावटी शेख़ (बैरम ख़ाँ) ने कहा।

"उनके बारे में आपका क्या ख़याल है?"

"मैं उस पर पूरा भरोसा करता हूँ।"

"तब ठीक है।"

"मुझे किस लिए याद किया गया?" प्रसंग को आगे बढ़ाते हुए बनावटी शेख़ ने पूछा।

"आपके दर्शनों की बड़ी इच्छा थी। साथ ही उस लड़की के बारे में भी...।" कुछ लज्जा का अनुभव करते हुए विजय ने कहा।

"हाँ, उस लड़की के बारे में क्या कहना चाहते हैं?"

"उस समय जल्दी में मैं उसकी बाबत आपको ज़्यादा न बता सका।

मैं चाहता हूँ कि आज आपको सारी बातें बतला दूँ। पर पहले मैं यह जानना चाहता हूँ कि वह है कहाँ?"

"वहीं, उसी महल में, जहाँ रखने का मैंने तुमसे वादा किया था।"

"तब ठीक है। हाँ, मैं यह प्रार्थना करना चाहता था कि मैं पिछले एक वर्ष से उससे प्रेम कर रहा हूँ, और वह भी मुझसे बहुत प्रेम करती है। हमारा यह वर्ष एक सुख-स्वप्न की भाँति व्यतीत हो गया। अब जब मेरी आँखें खुलीं तब मैं बादलगढ़ की इन मोटी मोटी दीवालों से घिरा हुआ हूँ। जब कि मैं उससे विवाह करने का स्वप्न अब भी देख रहा हूँ।"

"उसके मा-बाप की राय लिये बिना ही!" बीच में टोकते हुए बनावटी शेख़ ने कहा।

"मा-बाप उसके कोई नहीं हैं।"

"वह कह रही थी कि उसे उसके चाचा ने आगरे बुलाया था।"

"कहा उससे ज़रूर ऐसा ही गया था। पर यहाँ आकर उसने जो कुछ देखा और मुझे बतलाया, उससे मैं इस नतीजे पर पहुँचा कि किसी ऐयाश मुग़ल अमीर ने धोखा देकर उसे थान से आगरे बुला लिया था और वह उसे ख़रीद कर अपने हरम में डाल लेना चाहता था।"

"तुम्हारे इस तरह सोचने की बुनियाद क्या है?"

"उस लड़की ने मुझसे कहा था कि आगरे में एक मनुष्य, जिसे उस घर के लोग आलीजाह और जहाँपनाह कहते हैं, रात के अँधेरे में छिपकर उससे मिलने आया था। इसके बाद उसने उसे बहुत-से क़ीमती क़ीमती जेवर और कपड़े दिये। उन चीज़ों को मैंने अपनी आँखों देखा था। फिर

वह यहाँ जिस मकान में रक्खी गई थी वह भी कुछ ऐसा ही था। मेरा मतलब यह है कि वहाँ जिस तरह का साज़ो-सामान था, वैसा भले आदमियों के घर में नहीं होता। उन चीज़ों को देखकर नन्दा बहुत डर गई और एक पत्र-द्वारा उसने मुझे बुला भेजा। जब मैं उससे जाकर मिला तब उसने बाहर आने की ज़िद की। इसी लिए मैं उसे वहाँ से निकालकर आपके पास कर आया।"

"अब आप क्या चाहते हैं?"

"अब मैं चाहता हूँ कि किसी तरह हम दोनों विवाह के पवित्र बन्धन में बँध जायँ।"

"इस हालत में ब्याह रचाना क्या मुनासिब होगा?"

"कम से कम मैं ऐसा ही समझता हूँ।"

"तुम जानते ही हो कि तुम्हें क्या सज़ा मिल सकती है। उस हालत में उस लड़कीं कि ज़िन्दगी बरबाद करने से क्या फ़ायदा होगा?"

"मैं अपने फ़ायदे के ख़याल से नहीं, उस लड़की के फ़ायदे के लिए ही ऐसा करना चाहता हूँ।"

"यानी इधर आप सज़ा के लिए तैयार हैं उधर ब्याह भी रचाना चाहते हैं!"

"सज़ा के लिए तो मैं उसी दिन तैयार हो गया था जिस दिन मैंने इस काम में हाथ डाला था। क्योंकि जो आदमी दूसरे की जान लेने को निकलता है, वह अपनी जान से पहले हाथ धो लेता है। पर ब्याह करने का विचार मेरे दिल में अभी आया है, और वह भी एक ख़ास मतलब से। उस लड़की का कहीं कोई नहीं है, न कहीं उसको पैर रखने का

ठिकाना ही है। मैं यह भी निश्चय रूप से जानता हूँ कि मेरे सिवाय वह किसी से प्रेम नहीं करती, और न कर ही सकती है। मुझे यह भी विश्वास है कि मेरी मृत्यु के बाद वह किसी से विवाह कर लेने का विचार तक नहीं कर सकती। इस दशा में मैं यही उचित समझ रहा हूँ कि उसके लिए आजीविका का कुछ निश्चित साधन छोड़ जाऊँ। आप जानते ही हैं कि मेरे पास पैतृक सम्पत्ति है जो अधिक न होने पर भी इतनी अवश्य है कि नन्दा की ज़िन्दगी पार कर सकती है। पर मेरी सम्पत्ति पर उसका अधिकार मेरी पत्नी बनने पर ही हो सकता है। इसी लिए मैंने प्रार्थना की है कि मेरी सम्पत्ति की ज़ब्ती न हो। यदि बादशाह और ख़ानख़ानाँ साहब को आप यह जता दें कि मैं ऐसा क्यों चाहता हूँ तो वे निस्सन्देह मेरी प्रार्थना मंज़ूर कर लेंगे।"

"मान लो कि कोई तदबीर ऐसी निकल आये कि तुम यहाँ से निकल सको! उस हालत में तुम उस लड़की से शादी करके अपने घर पर आराम से रह सकोगे?"

"इसकी योजना बनाने और पूरी करने के लिए बहुत समय चाहिए। इधर मुझे कुछ घड़ियाँ कट रही हैं।"

"ऐसा क्यों?" कुछ आश्चर्य का भाव दिखलाते हुए शेख़ ने पूछा।

विजय को अधिकारी की शर्त्त याद हो आई। वह चुप रहा।

"मैं समझ गया। तुम्हें सज़ा का हुक्म शायद सुना दिया गया है और इसी से तुम इस क़दर परेशान दिखाई देते हो!"

विजय फिर भी चुप रहा।

"उस हालत में मेरी राय से बेहतर यह होगा कि तुम अपने गुनाह के लिए माफ़ी माँग लो!"

"गुनाह के लिए!" शेख़-द्वारा अपने कार्य को गुनाह कहे जाने पर आश्चर्य के साथ विजयपाल ने कहा।

"किसी की जान लेना गुनाह ही है। भले ही अपने दल के लोग उसे सबाब कहें।"

"मगर माफ़ी भी किस बहाने माँगी जाय। और मुझे यह विश्वास भी नहीं है कि बैरम ख़ाँ मुझे माफ़ कर देगा।"

"मैं अपना तजरबा बतलाता हूँ। तुम जानते हो कि मैं भी बैरम ख़ाँ का जानी दुश्मन हूँ और हर वक़्त उसे मिटाने की घात में रहता हूँ। पर यह सयासी मामला है। जहाँ तक उसकी शख़्शियत का सवाल है, ऐसा रहमदिल और ख़ुदापरस्त इन्सान इस ज़िन्दगी में मैंने दूसरा नहीं देखा। जब उसके साथ रहता हूँ, यही जी चाहता है कि उसके क़दम चूम लूँ। वह बहुत ही नेक दिल और साफ़ बातिन है। मैं समझता हूँ कि अगर तुम उससे माफ़ी माँगो तो वह ज़रूर माफ़ कर देगा। बेकार ख़ूँरेज़ी तो वह सयासी मामलात में भी पसन्द नहीं करता।"

"आप मेरे चाचा जी—महाराज विक्रमादित्य—की बात भूल जाते हैं। उन्हें बैरम ख़ाँ ने ही अपने हाथ से क़त्ल किया था।"

"वह मामला दूसरी क़िस्म का था। उस वक़्त उसे क़त्ल न किया जाता तो अफ़ग़ानों के क़ब्ज़े ढीले नहीं पड़ते। फिर तरदी बेग के क़त्ल के मामले पर भी स्याही पोतनी थी। दूसरे, जहाँ तक मैंने सुना है, हेमू राजा

का क़त्ल शेख़ गदाई के हाथ से हुआ था, बैरम ख़ाँ के हाथ से नहीं। बैरम ख़ाँ ने तो अकबर से यह कहते हुए साफ़ इनकार कर दिया था—

चे हाजत तेग़े शाही रा
बख़ूँ हरकसे आलूदन।
तू बनशीं इशारात कुन
बः चश्मे या बः अबरूये।*

यह बात मैं बैरम ख़ाँ की ज़ुबान की ही कह रहा हूँ।

कुछ देर तक विजयपाल चुपचाप सोचता खड़ा रहा। फिर बोला—"इसे मान भी लूँ तो यह मामला अब मेरा निजी नहीं है। अब यह इज्तिमाई मसला है। मैं एक जमाअत के हुक्म से यहाँ आया था। अब जब तक वह जमाअत माफ़ी माँगने का फ़ैसला न कर दे, मैं अकेला कैसे माफ़ी माँग सकता हूँ।"

"बुरा न मानना। मैं यहाँ पर यह जान लेना चाहता हूँ कि आपकी जमाअत में ऐसे कौन-कौन लोग थे जो ख़ालिस सयासी मसले को मद्दे नज़र रखते हुए साज़िश में शामिल हुए थे, और जिनका किसी न किसी तरह का ज़ाती बुग्ज़ बैरम ख़ाँ से नहीं था?"

"विजय क्षण भर तक खोया-खोया-सा खड़ा रहा। फिर बोला। आपका अनुमान ठीक है। हममें से हर एक ज़ाती मसले को लेकर बैरम ख़ाँ की जान का गाहक बना हुआ था। मगर जब एक ही इरादे के बहुत से लोग इकट्ठा हो गये तब वह मसला इज्तिमाई मसला बन गया। बड़े लोग इसे ही सयासत कह देते हैं।"

"ठीक है। अब वह जमाअत टूट गई, जैसा कि मैंने सुना है, और

---

* बादशाह की तलवार को हर किसी के ख़ून से भीगने की क्या आवश्यकता। तू बैठा-बैठा आँख या भौं से इशारा किये जा।

शायद क़यामत से पहले दुबारा वजूद में नहीं आ सकती। इस हालत में वह जमाअती मसला फिर ज़ाती मसला बन गया न! बुज़ुर्गों का क़ौल है कि अक़्लमन्द पहले अपनी दाढ़ी का मसख़रा बुझाता हैं तब पड़ोसी की दाढ़ी पर निगाह डालता है।"

"मेरे प्रति आपका बहुत अधिक स्नेह है। इसी लिए आप ऐसा कह रहे हैं।"

"हो सकता है। फिर भी मैं फ़िलहाल इसे बुरा नहीं समझता। मैं जानता हूँ कि बैरम ख़ाँ अब ज़्यादा ख़ूँरेज़ी करना नहीं चाहता। इसलिए तुम अगर दरख़्वास्त करो तो वह ज़रूर मंज़ूर कर लेगा।"

"मेरी प्रार्थना है कि आप मुझे अपने रास्ते से अलग ले जाने की कोशिश न करें और इस मामले में मुझे मेरे भाग्य पर छोड़ दें।"

"अच्छी बात है। तुम माफ़ी न माँगो। पर तुम अपने दोस्त अहबाब और ख़ैर अन्देशों को इससे मना नहीं कर सकते। तुम्हारी ओर से माफ़ी माँग लेने का उनको पूरा इख़्तियार है।"

विजय ने कुछ भी नहीं कहा। कुछ देर तक उसके मनोभाव को समझने की चेष्टा करने के पश्चात् बनावटी शेख़ उठकर द्वार के पास पहुँचा और उसने तीन बार कुंडी को खटखटाया। जेलदार हाथ जोड़े आकर हाज़िर हो गया। "नीचे मेरी गाड़ी में एक लड़की बैठी है। उसे इज़्ज़त के साथ यहाँ ले आया जाय।"

"जो हुक्म।" कहकर जेलदार उलटे पाँव लौट गया। इस आकस्मिक सूचना ने जैसे विजय की सारी जड़ता भंग कर दी। उसने छलकते हुए हृदय से पूछा—"क्या नन्दिनी भी आई है?"

"उसकी मुलाक़ात के लिए भी तो दरख़्वास्त की थी न !"

"प्रार्थना तो अवश्य की थी, पर आपको अकेला देखकर मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि उसकी मुलाक़ात की मंज़ूरी नहीं हुई।"

"बैरम ख़ाँ ऐसा बेरहम नहीं है।" कहकर शेख़ ने अर्थभरी दृष्टि से विजयपाल की ओर देखा। इसी समय जेलदार के पीछे-पीछे नन्दा किवाड़ खोलकर कमरे में आई।

"रंज और मोहब्बत तख़लिया पसन्द होते हैं।" कहते हुए शेख़ ने बाहर को क़दम बढ़ाये। जेलदार भी उनके पीछे-पीछे निकल गया।

नन्दा ने भीत मृगी की भाँति एक बार समूचे कमरे को देखा। इसी समय उसकी निगाह विजय पर पड़ी। वह सहसा दौड़कर उसे चिपट गई और उसकी छाती में मुँह छिपाकर फफक-फफककर रोने लगी। कुछ देर के लिए दोनों समय और परिस्थिति की सीमा से बाहर हो गये।

"नन्दा !" कुछ देर बाद विजय ने अपने को सँभालकर पुकारा। एक बार साहस करके नन्दा ने ऊपर को आँखें कीं। फिर मानो बच्चों की तरह डरकर उसने विजय की छाती में मुँह छिपा लिया। आँखें लगातार आँसू बरसा रही थीं।

"सुनो नन्दा !" विजय ने फिर पुकारा।

नन्दा इस बार कुछ सचेतन अवश्य हुई, पर उसकी बाँहें पूर्ववत् जकड़ी रहीं।

"मुझे बहुत-सी ज़रूरी बातें करनी हैं।" उसके मुँह को ऊपर उठाते हुए विजय ने कहा।

"क्या ?" बाहुबंधन को कुछ शिथिल करते हुए नन्दा ने कहा।

"ध्यान देकर सुनो, तो कहूँ।"

विजय को प्रेमपाश से मुक्त करती हुई नन्दा सीधी खड़ी हो गई। उसने एक बार आँखें पसारकर इधर-उधर देखा, फिर दोनों हथेलियों से आँखें ढक लीं।

"क्यों?" विजय ने उसकी इस अद्भुत मुद्रा को देखते हुए कहा।

"बड़ी भयानक जगह है यह!"

"भयानक थी ज़रूर; पर अब नहीं है।"

"अब क्या हो गया?"

"अब तुम जो यहाँ हो।"

नन्दा शर्मा गई।

"तुम देखती ही हो, नन्दा, कि मैं यहाँ क़ैद में हूँ और उन लोगों ने कृपा करके थोड़े ही समय के लिए हमारी मुलाक़ात मंजूर की है।" चेतावनी के स्वर में विजयपाल ने कहा।

"वे लोग कौन हैं? उन्होंने तुम्हें यहाँ क्यों रख छोड़ा है?"

"भोली बच्ची, तुम्हारी समझ में अब भी नहीं आया।"

"तुमने मुझे समझाया ही कब था?"

"और किसी ने भी कुछ नहीं बताया?"

"शेख़ साहब ने आज इधर आते-आते ज़रूर बताया था कि तुम यहाँ किसी को क़त्ल करने आये थे, इसी लिए गिरफ़्तार कर लिये गये। पर मैंने उस बात पर विश्वास नहीं किया। क्या वे ठीक कह रहे थे? देखो, सच कहना! अब कोई बात मुझसे छिपाना मत!"

"नहीं नन्दा, अब मैं कुछ न छिपाऊँगा। तुम जानती ही हो न,

कि पूर्व का देश मुग़लों का विरोधी है। वहाँ के लोग चाहते हैं कि मुग़लों को हिन्दुस्तान से निकाल दिया जाय। हमारे कुछ मित्र भी ऐसा ही प्रयत्न कर रहे थे। अब तुम्हीं कहो नन्दा, कि यदि मैं उनका साथ न देता तो वे लोग मुझे कायर न कहते?"

"यह तो मैं समझ गई। पर यह बात मेरी समझ में अब भी नहीं आई कि वे लोग तो वहीं रहे, और तुम यहाँ चले आये! ऐसा किस कारण हुआ?"

वे लोग भी तो गिरफ़्तार कर लिये गये हैं?" बात को बराने के लिए विजयपाल ने कहा।

"तुम्हारे सारे मित्र गिरफ़्तार हो गये हैं! तब तो ज़रूर उन्हीं में से किसी ने मुख़बिरी करके तुम्हें पकड़ा दिया होगा।"

"शायद यही हुआ। पर तुम खड़ी क्यों हो? बैठ जाओ न, जिसमें इतमीनान से बातचीत कर सकें।"

नन्दा वहीं फ़र्श पर बैठ गई। विजय कुछ देर तक उसकी भोली-भाली मुखमुद्रा को एकटक देखता रहा। फिर बोला—"मेरे पीछे तुम्हें अधिक कष्ट तो नहीं हुआ? शेख़ जी का बर्ताव कैसा रहा?"

"शेख़ जी बहुत अच्छे आदमी हैं। पर उनकी एक बात से मुझे बड़ी हैरानी हुई। मैं तुमसे कहने ही वाली थी।"

"क्या, क्या!!" उत्सुकता से विजय ने पूछा।

"यही, कि उनकी बोली उस आदमी से बहुत कुछ मिलती जुलती है जो आगरे के उस मकान में रात को मुझसे मिलने आया था। जो अपने को मेरा चाचा बतलाता था।"

"सच !" कुछ शान्त होते हुए विजय ने कहा।

'और नहीं तो क्या ? पर तुम सोच क्या रहे हो ?" विजय की अन्यमनस्कता को परिलक्षित करते हुए नन्दा ने कहा।

"मैं तुम्हारी बातें ध्यान से सुन रहा हूँ।"

"मैंने शेख़ साहब से कह दिया था कि यदि मेरे विजय को कुछ हो गया तो मैं भी अपने प्राण दे दूँगी।" नन्दा ने उत्साहित होते हुए कहा।

विजय का हृदय बल्लियों उछलने लगा। वह नन्दा के मुख से जो कुछ सुनना चाहता था, वही उसे सुनने को मिल गया।

"तुम्हें यहाँ देखकर मुझे बड़ा दुःख हो रहा है, प्यारे विजय ! विशेषतया अपनी असमर्थता को विचार कर ! यदि मैं अपने प्राण देकर भी तुम्हें यहाँ से निकाल सकती......।"

कहते-कहते नन्दा का गला भर आया। उसकी इस कातरता में भी विजय को अपूर्व आनन्द आया। नन्दा का हाथ अपने हृदय से दबाते हुए उसने कहा—"तुम चाहो तो मेरा बहुत कुछ भला कर सकती हो, नन्दा।"

"किस तरह !" चौंकते हुए नन्दा ने कहा।

"मेरी पत्नी बनकर ! मेरा मतलब है, हम दोनों विवाह के बन्धन में बँध जायँ। हम दो से एक हो जायँ; समाज की दृष्टि में, राज की दृष्टि में, लोक-परलोक की दृष्टि में ! इस जन्म के लिए—जन्म-जन्मान्तर के लिए !"

नन्दा की समझ में कुछ अधिक नहीं आया। वह सरलता से बोली—

"तो मैं निश्चय कर चुकी हूँ।"

"वह निश्चय अब कार्यरूप में परिणत होना चाहिए। उसके लिए यही उपयुक्त अवसर है।"

नन्दा चिन्ता में पड़ गई। विजय के शब्दों में उसे दुरभिसंधि दिखाई दी।

"तुम अब भी कुछ छिपा रहे हो!" शंकित नेत्रों से विजय की ओर देखते हुए उसने कहा।

"छिपा कुछ नहीं रहा हूँ, नन्दा; पर अब अधिक समय तक तुमसे पृथक् रहना······।"

"जेलख़ाने में हम दोनों साथ-साथ रह सकेंगे?"

"जेलख़ाने से मुक्ति पाने में भी अब अधिक देर नहीं है।"

"सच! किस तरह?" शंका और प्रसन्नता के सम्मिलित स्वर में नन्दा ने कहा।

"मुझे देशनिकाले का दण्ड दिया गया है!"

"देशनिकाले का?"

"हाँ, नन्दा; पर निर्वासन में तुम मेरा साथ देने को तैयार हो? क्या निर्वासित की पत्नी बनने का साहस तुममें है?"

"यह भी पूछने की ज़रूरत है? निर्वासन! मैं भगवान् को धन्यवाद देती हूँ! मैं तो तुम्हारे साथ अनन्तकाल तक जेलख़ाने में रहने को तैयार थी। यह सज़ा तो मुझे वरदान-सी लगती है! ईश्वर बड़ा दयालु है! तुम जहाँ जाओगे, मैं तुम्हारे साथ चलूँगी—देश में विदेश

में—पहाड़ों में, जंगलों में—अपने राम की सीता बनकर, अपने पाण्डव की द्रौपदी बनकर! तुम जहाँ रहोगे, वही देश मेरा देश होगा, वही जंगल मेरा घर होगा। तुम जिस मार्ग पर चलोगे, वही मेरा मार्ग होगा। मैं तुम्हारी सहचरी बनूँगी, अनुचरी रहूँगी। मैं तुम्हें हर तरह प्रसन्न करने का प्रयत्न करूँगी।

विजय ने उसका हाथ और ज़ोर से सीने से लगा लिया।

तुम्हें किस देश में निर्वासित किया जायगा? क्या तुम्हारे साथ-साथ चलने की आज्ञा मुझे मिलेगी?"

"कह नहीं सकता, प्यारी नन्दा; पर मुझे मुग़ल राज्य की सीमा के बाहर पहुँचा कर कहीं छोड़ दिया जायगा। तुम मेरे साथ नहीं चल सकोगी, पर पीछे से आकर मिल जाना।"

"कोई हर्ज़ नहीं! साथ न चल सकूँगी तो न सही। मैं शेख़ साहब से उस जगह का पता लगा लूँगी जहाँ तुम्हें भेजा जायगा, और तुम्हारे वहाँ पहुँचने से पहले ही वहाँ जा पहुँचूँगी, जिससे तुम्हें मेरी प्रतीक्षा न करनी पड़े। जेलख़ाने की गाड़ी से ज्यों ही तुम बाहर क़दम रक्खोगे, मैं तुम्हें स्वागत में आँखें बिछाये खड़ी मिलूँगी। हम लोग साथ-साथ देश-विदेश में भ्रमण करेंगे। कुछ दिन बाद सम्भव है, बादशाह तुम्हें क्षमा भी कर दें। क्योंकि प्रायः देखा जाता है कि जिस कार्य को आज दण्डनीय ठहराया जाता है, कुछ दिन बाद उसी को पुरस्कार-योग्य माना जाता है। ऐसा हुआ तो हम लोग फिर साथ ही साथ स्वदेश को लौटेंगे। हमारे मित्र और परिचित तब हमें पाकर कैसे प्रसन्न होंगे!"

विजय कुछ देर तक नन्दा के इस आशापूर्ण दिवास्वप्न का रस लेता रहा, फिर बोला—"सच कहता हूँ, नन्दा; तुम्हारे मुँह से ये आशाभरी मीठी-मीठी बातें सुनकर आज मुझे अभूतपूर्व आनन्द आ रहा है! ऐसे आनन्द का क्षण भर का भी जीवन सैकड़ों वर्ष के लम्बे जीवन से बढ़कर है।"

नन्दा का मस्तिष्क अप्रत्याशित भविष्य की कल्पना से भर रहा था। विजय के कथन पर कुछ ध्यान न देते हुए उसने कहा—"निर्वासन से पहले क्या एक बार तुमसे और भेंट करने का अवसर वे लोग दे सकते हैं? हमें एक दूसरे की ख़बर कैसे मिलेगी?"

"मुझसे वादा किया गया है कि आज शाम को, या कल सवेरे, वे लोग हमारे विवाह का प्रबन्ध कर देंगे।"

"यहीं, जेल के भीतर?" कुछ सिहरते हुए नन्दा ने पूछा।

"जहाँ भी हो, पर हमारे जीवनों को एक सूत्र में बाँधने के लिए यह आवश्यक है।"

"पर मान लो, उन लोगों ने अपने वचन का पालन न किया और मुझे दुबारा मुलाक़ात का अवसर देने से पहले ही तुम्हें यहाँ से हटा दिया गया?"

"सभी कुछ सम्भव है, प्यारी नन्दा!"

"क्या तुम्हारी समझ से तुम्हारे शीघ्र ही यहाँ से हटा दिये जाने की सम्भावना है?"

"कुछ कह नहीं सकता ! क़ैदियों का जीवन दूसरों के हाथ में होता है। वे जैसा चाहेंगे, करेंगे।"

"कोई परवाह नहीं, प्यारे विजय ! वे तुम्हें जितना शीघ्र यहाँ से हटा दें, उतना ही अच्छा। हमारा पुनर्मिलन उतना ही निकट आ जायगा। हमारे पुनर्मिलन के लिए हम दोनों का विवाह हो जाना बहुत आवश्यक नहीं है। मुझे तुम्हारी मर्यादा का ख़याल रहेगा। आज से ईश्वर को साक्षी देकर—सूर्य, पवन और वरुण देव को साक्षी देकर, मैं तुमको अपना पति बनाती हूँ। प्यारे ! वे लोग तुम्हें जहाँ ले जायँ, तुम प्रसन्नता से चले जाना ! जब तक ये मोटी-मोटी दीवालें तुम्हें बन्द किये रहेंगी, तुम्हारे जीवन के लिए मेरे दिल में सन्देह बना रहेगा। निश्चय रक्खो, कि तुम जहाँ कहीं रहोगे, एक सप्ताह के भीतर वहीं मैं तुमसे आ मिलूँगी—जन्म भर के लिए, जन्म-जन्मान्तर के लिए। फिर कोई शक्ति हम दोनों को जुदा न कर सकेगी।" कहते-कहते नन्दा का चेहरा तमतमा आया।

इसी समय द्वार खुला और जेलदार ने शेख़ साहब के साथ भीतर प्रवेश करते हुए कहा—"मुलाक़ात का वक़्त ख़त्म हो गया।"

प्रेम और संवेदनापूर्ण दृष्टि से विजय को देखती हुई नन्दा खड़ी हो गई। उसकी चेष्टा से विजय को लगा कि वह अभी-अभी फूट-फूटकर रो पड़ेगी, अतः उसने चेतावनी के शब्दों में कहा—"ऐसे ही अवसरों पर हमारे धैर्य की परीक्षा होती है।"

चुपचाप अंचल से आँसू पोंछती हुई नन्दा कमरे से बाहर हो गई।

इसी समय शेख़ के बनावटी नाम और परिधान में बैरम ख़ाँ विजय के पास पहुँचे। उनकी उपस्थिति में विजय का हृदय जैसे बाँध तोड़कर आँखों की राह बह चला। उसे हृदय से लगाते हुए बनावटी शेख़ ने कहा—"आख़िर वक्त में यह बुज़दिली क्यों?"

"मैं हज़ार कोशिश कर रहा हूँ, पिता जी, पर आँच के पास पहुँचने पर घी पिघल ही उठता है।"

नन्दा को हवेली में छोड़कर बैरम ख़ाँ सीधे मोहाफ़िज़ख़ाने में पहुँचे। मुल्ला इस समय काग़ज़ों से बुरी तरह उलझा हुआ था। यहाँ तक कि बैरम ख़ाँ के पीछे जाकर खड़े हो जाने पर भी उनकी उपस्थिति का उसे आभास न हुआ। पीछे से उसके कन्धे का स्पर्श करते हुए बैरम ख़ाँ ने कहा—"बहुत मशग़ूल दिखाई दे रहे हो ?"

"वही पुरखियों का मामला है।" चौंककर खड़े होते-होते मुल्ला ने उत्तर दिया।

"वह मामला तो हाजी मोहम्मद सीस्तानी की सुपुर्दगी में है न ?"

"मुक़दमे की समाअ़त तो उन्हीं ने की है !"

"फ़ैसला क्या किया ?"

"यह ख़त भेजा है।" कहते हुए मुल्ला ने एक ख़त ख़ानख़ानाँ के आगे बढ़ा दिया।

बैरम ख़ाँ ने एक बार ऊपर से नीचे तक पत्र को जाँचा, फिर ध्यान से उसे पढ़ा। चेहरे पर संतोष और प्रसन्नता के भाव झलकने लगे। फिर पत्र को मुल्ला के आगे रखते हुए बोले—"खरा सोना है।"

"बेशक, पर ऐसे आदमी सल्तनत के मसरफ़ के नहीं होते।"

"तुम्हारा इरादा क्या है?" बात को बदलने के विचार से मुल्ला के सामने रक्खे काग़ज़ों को उठाते हुए ख़ानख़ानाँ ने कहा।

"सीस्तानी के किये जो काम न हो सका वह मुझे करना पड़ रहा है।" कुछ सकुचते हुए मुल्ला ने उत्तर दिया।

मुल्ला की लिखी पंक्तियों पर ख़ानख़ानाँ की नज़र दौड़ गई। वे जैसे चौंक पड़े। भौं पर बल पड़ गये। परेशानी भरी दृष्टि से मुल्ला की आँखों में देखते हुए उन्होंने कहा—"सज़ाए मौत का हुक्मनामा!"

"अपना इरादा जहाँपनाह पर मैं पहले ही ज़ाहिर कर चुका था।"

"ठहरो! बात को ज़रा फिर से समझ लेने दो! अगर यह हुक्मनामा सीस्तानी की क़लम से लिखा जाता तो परेशान होने की ज़रूरत नहीं थी। मगर चूँकि यह तुम्हारी क़लम से लिखा जा रहा है, इसलिए दरबार के अमीरों को मुझ पर उँगली उठाने का मौक़ा मिलेगा और सीस्तानी साफ़ निकल जायगा। तुम जानते ही हो कि आजकल महलों में भीतर ही भीतर क्या गुल खिल रहे हैं। इस हालत में एक एक क़दम फूँक-फूँक कर रखना होगा। सज़ाए मौत का हुक्मनामा तुम किस बिना पर तैयार कर रहे हो!"

"वे लोग ग़द्दार हैं और सल्तनत को उलटने की साज़िश कर रहे थे।"

"सीस्तानी लिख रहा है कि उन तीनों के ख़िलाफ़ मुक़ामी शहादत एक भी नहीं है। न उनमें से कोई इक़बाली मुजरिम बनाया जा सका है। हमारे अपने ख़ुफ़िया नवीसों और वाक़या नवीसों के बयानात बाहमी इत्तिफ़ाक़ नहीं रखते। ऐसी हालत में जुर्म उन पर आयद नहीं होता। ज़्यादा से ज़्यादा उन्हें कोई मामूली सज़ा दी जा सकती है।"

"सीस्तानी की राय ज़रूर ऐसी है—और मैं यह भी मान लेता हूँ कि बाग़ियों के ख़िलाफ़ सीधा सबूत हमारे पास नहीं है—फिर भी हम जानते हैं कि उनका इरादा क्या था; और जो सज़ा उन्हें दी जा रही है वह उसी इरादे की बिना पर!"

"अगर कोई सवाल करे कि उन लोगों के वैसे इरादे का तुम्हारे पास क्या सबूत है?"

"विजयपाल से जहाँपनाह की मुँह-दर-मुँह बातचीत हो चुकी है!"

"ज़रा सब्र करो; ऐसे मामलों में बहुत-सी चीज़ों को एक में मिलाकर समझने की कोशिश करना ग़लत है। ठीक तरीक़ा हर चीज़ को अलग-अलग उसकी जगह पर रखकर समझना है। विजयपाल अपने इरादे के लिए ज़िम्मेवार हो सकता है, दूसरों के इरादे के लिए नहीं। ज़रा देर के लिए हम विजयपाल को अलग किये देते हैं, गोया वह इस साज़िश में शामिल नहीं था, और अगर था भी तो किसी ख़ास सबब से; उस हालत में उन लोगों के ख़िलाफ़ ऐसा क्या सुबूत तुम्हारे पास रह जाता है जिससे उन्हें सज़ाए मौत का मुजरिम मान लिया जाय!"

मुल्ला चुपचाप ख़ानख़ानाँ के मुँह की ओर देखने लगा। ख़ानख़ानाँ ने आगे कहा—"सीस्तानी का फ़ैसला बहुत कुछ मानी रख सकता है। उसे मीर अद्‌ल बनाकर भेजा गया है। इसलिए वह जो कुछ फ़ैसला करेगा, उसकी वक़त करनी होगी।"

"शायद उसे मामलात की अन्दरूनी जानकारी नहीं है।"

"मीर अद्‌ल का फ़र्ज़ है सबूत के बिना पर फ़ैसला कर देना। अगर उसके फ़ैसले के ख़िलाफ़ कार्रवाई हो जायगी तो वह कल ही शाहंशाह,

तुर्कमान अमीरों, माहम अतका और न जाने किस-किस से कहता फिरेगा कि मैंने तो सिर्फ़ ग्वालियर के क़िले में बैठकर मुक़दमे की समाअत का स्वाँग भर किया था, फ़ैसला तो ख़ानख़ानाँ ने सीकरी में बैठकर ख़ुद अपनी क़लम से तहरीर किया था। उस हालत में मैं इस सफ़ेद दाढ़ी को ले जाकर कहाँ छिपाऊँगा?" अपनी दाढ़ी की ओर संकेत करते हुए ख़ानख़ानाँ ने कहा।

"यह हुक्मनामा सीस्तानी के दस्तख़तों से जारी होगा।"

"यह भी मान लेता हूँ। मगर इस तरह के हुक्मनामे से तुम देखनेवालों को चकमा दे सकते हो, सीस्तानी को बेवक़ूफ़ बना सकते हो और मेरी आँखों में भी धूल झोंक सकते हो, पर हारूत-मारूत को चकमा नहीं दे सकते, मुन्किर-नकीर की आँखों में धूल नहीं झोंक सकते और न याजूज-माजूज को बेवक़ूफ़ बना सकते हो।"

"सल्तनत की पायदारी हमारा अव्वल फ़र्ज़ है।"

"पायदारी इन्साफ़ से होती है, ज़ुल्म से नहीं।"

"मूज़ी को क़त्ल कर देना ज़ुल्म नहीं कहाता।"

"मगर मूज़ी है कौन? उन तीनों में से किसी ने हमें ईज़ा नहीं पहुँचाई—कम से कम सबूत यही कहता है। रह गया सरदार विजयपाल का मामला! वह ज़रूर यहाँ इसी इरादे से आया था, मगर बेचारा कर कुछ न सका। और जब उसने कुछ किया नहीं, तब उसे सज़ा भी किस बात के लिए दी जाय? फिर ऐसे आदमी को सज़ा देना भी मसलहत नहीं है। तुम्हें मालूम है, ऐसा ही वाक़या मेरे साथ भी पेश आ चुका है। क़न्नौज की लड़ाई के बाद जब मैं गिरफ़्तार करके शेरशाह के

सामने पेश किया गया था, तब वह फ़ौरन मेरी गर्दनकुशी का हुक्म दे सकता था। क्योंकि वह जानता था मुग़ल सरदारों में मुझसे ज़्यादा ख़तरनाक उसके नज़दीक दूसरा नहीं था। पर जानते हो कि उसने क्या किया था ?"

मुल्ला चुपचाप सुनता रहा। बैरम ख़ाँ ने आगे कहा—"उसने फ़ौरन मेरी बन्दिश छुड़ा दी। अपने हाथ से मुझे पगड़ी पिन्हाई। मुझे गले लगाया। फिर बड़ी इज़्ज़त से मुझे अपने बराबर बिठाते हुए कहा—"हरगह इख़लास दारद खता नमींकुनद*।

शेरशाह की वही बात मेरे दिल में चुभ गई थी और इसी लिए मैं किसी तरह उसके ख़ेमे से खिसककर जन्नत आशियानी के क़ाफ़िले से जा मिला था।"

"उस कहानी से विजयपाल का क्या वास्ता ?"

"मेरा मतलब यह है कि वही इख़लास, वही साबित क़दमी सरदार विजयपाल में मौजूद है। वह नौजवान है। एक तरफ़ उसे ज़िन्दगी का मोह है, एक तरफ़ मोहब्बत का जोश; मगर बावजूद इन तमाम फ़ितरतों के, तुम्हारी और मेरी हज़ार कोशिशों के, हबस और जेलखाने के हादिसों और तकलीफ़ों के, और एक ऐसी नाज़नीन के इसरार के, जिसकी एक छोटी-सी ख़्वाहिश के लिए वह हज़ार जानें निसार कर सकता है, वह अपने इरादे से तिल भर इधर-उधर होने को तैयार नहीं हुआ। शेरशाह ने मेरे इख़लास की क़द्र करके मेरी जान बख़्शी थी। इख़लास का दूसरा

---

* जो सत्यनिष्ठ होता है उसका अपराध अपराध नहीं होता।

नमूना अब मेरे सामने है। तो क्या मैं उसकी गर्दनकुशी हो जाने दूँ ! अल्लाताला के सामने क्या जवाब दूँगा ?"

"क्या इसके दूसरे मानी यह नहीं हैं कि आप शाहंशाह के दुश्मनों को बढ़ावा दे रहे हैं ?"

"मैं शाहंशाह के दोस्तों और ख़ैरख़्वाहों को बढ़ाने की फ़िक्र में हूँ।"

"मान लीजिए कि आप कामयाब भी हो गये, यानी विजयपाल ने आपके कहने में आकर अपना इरादा बदल दिया। उस हालत में उसकी सदाक़त किस तरह क़ायम रह सकेगी !"

"तुम्हारा मतलब यही है न कि वह अपने साथियों के नज़दीक झूठा हो जायगा। मगर उसके साथी भी अपना- अपना इरादा बदलकर अगर हमारे साथी हो जायँ ?"

"तब उनके साथियों का मामला रह जायगा। और यह जंज़ीर आगे चलती जायगी जब तक कि उसकी पहली कड़ी काट नहीं दी जाती !"

"काट देना आख़िरी अमल हो सकता है, अव्वल अमल नहीं।"

आपका इरादा उनको बख़्श देने का है ? पर यह इतनी बड़ी ग़लती होगी कि...!"

"बेशक, यह एक बड़ी ग़लती हो सकती है। पर ग़लतियाँ इस लम्बी ज़िन्दगी में मैंने बेशुमार की हैं। आज भी ग़लतियों पर ग़लतियाँ कर रहा हूँ। तब इस एक ग़लती पर मुझे ज़्यादा अफ़सोस भी न होगा। फिर यह ग़लती न होकर एक पुरानी ग़लती की तसहीह भर हो सकती है।"

"आपका इशारा किस ग़लती की तरफ़ है ?"

"राजा रतनसेन के और मेरे क्या तअल्लुक़ात थे, यह तुम्हें मालूम नहीं है। नये उमरा में से भी कोई उस अम्र का वाक़िफ़कार नहीं है। उसकी जानकारी या तो ख़ुद मुझे थी, या फिर शाहंशाह जन्नत आशियानी को। राजा साहब मरहूम मेरे जाँनिसार दोस्तों में थे और उनके बाद उनके बाल-बच्चों की परवरिश का मैंने वादा किया था। आसमान की गर्दिश के सबब इस हिन्दोस्तान में पैर जमाना मेरे लिए उन दिनों मुश्किल हो गया था। कई वर्ष बाद लौटकर मैंने तलाश किया तब उसकी रानी को बेगम मुअज़्ज़िमा की शक्ल में सलीमशाह के हरम में पाया। मैं चाहता था कि उसे उसकी पुरानी जगह पर लौटा दिया जाय, पर वह अपने इस नये चोले से ऐसी वाबस्ता हो गई कि लौटकर बिलग्राम जाने को किसी तरह राज़ी न हुई। अब एक ऐसी लड़की का मामला दरपेश है जो मेरे उसी दोस्त रतनसेन की इकलौती बेटी है और जिसकी पैदायश राजा साहब मरहूम की वफ़ात के बाद हुई थी। तुम जानते ही हो कि वह लड़की सरदार विजयपाल से मुहब्बत करती है जो किसी सूरत में ग़ैरमुनासिब नहीं कही जा सकती। वह कई बार रो-रोकर मुझसे उसकी जान की भीख माँग चुकी है और मैं उसकी इल्तिजा को क़बूल कर चुका हूँ। उधर विजयपाल जी से भी मैं वादा कर चुका हूँ कि उन दोनों की शादी के लिए मैं शाहंशाह आलम और जनाब वकीले मुतलक़ से सिफ़ारिश करूँगा...।"

"और दूसरी तरफ़ मुझे अपने तरीक़े से काम करने की आप क़लमबन्द इजाज़त दे चुके हैं!" मुल्ला ने तानाज़नी के स्वर में कहा।

"वह मौक़ा और तरह का था। उस वक्त तक उस लड़की को मैं ठीक-ठीक समझ न पाया था।"

"और अब समझ पाया है तब न सिर्फ़ उसके आश्ना की रिहाई की फ़िक्र में हैं, कन्यादान का सवाब भी लेना चाहते हैं।"

"मैं वादा कर चुका हूँ।"

"तब इस हुक्मनामे को अज़ सरे नौ मुरत्तिब करना होगा।" कहकर मुल्ला ने हुक्मनामा टुकड़े-टुकड़े करके ज़मीन पर डाल दिया।

बैरम ख़ाँ के मुँह पर प्रसन्नता झलक उठी। अप्रत्याशित कृतज्ञता से पुलकित होते हुए उन्होंने कहा—

"मैं उम्मीद करता हूँ कि तुम आज ही इसका माक़ूल इन्तज़ाम कर दोगे।"

"बजा इर्शाद ख़ुदाबन्दे आलम।" कहकर मुल्ला ने दरबारी ढंग से उनको अभिवादन किया।

अभिवादन का उत्तर देकर बैरम ख़ाँ ख़ुश-ख़ुश मुहाफ़िज़ख़ाने से बाहर निकल गये। नियम के अनुसार मुल्ला ड्योढ़ी तक उन्हें पहुँचाने गया। विदा होते वक्त बैरम ख़ाँ ने फिर कहा—"हमारा मतलब ठीक से समझ गये न?"

मुल्ला ने उत्तर में फिर झुककर सलाम किया।

मुहाफ़िज़ख़ाने में अपनी जगह पर वापस आते ही मुल्ला ने तुरन्त जेलदार को बुला भेजा। जब वह आ गया तब उसे एक एकान्त कोठरी में ले जाकर उसके हाथ पर एक लिखित आज्ञापत्र रखते हुए उसने कहा—

"तुम्हें बहाना करने का मौक़ा न मिले, इसलिए यह तहरीरी हुक्मनामा दे रहा हूँ।"

हुक्मनामा पर निगाह डालते ही जेलदार काँप उठा और घुटनों पर बैठकर गिड़गिड़ाया—"मैं कहीं का नहीं रहूँगा, ग़रीब परवर!"

"क्यों?" भौं को असाधारण रूप से वंक करते हुए मुल्ला ने कहा।

"जनाब वकीले मुतलक़ को मालूम हो गया तो···।"

"उनसे कहेगा कौन?"

"ऐसी बात छिप नहीं सकती, हुज़ूर आली!"

"शायद इसलिए कि मैं ऐसा करने को कह रहा हूँ। वर्ना तुम लोग तो उस मसाले के बने हो कि इससे बड़ी बातें पचा जाते हो और किसी को कानोंकान ख़बर नहीं होती!"

जेलदार आश्चर्य के साथ मुल्ला के मुँह की ओर देखने लगा।

"मेरी बातें कुछ अजीब लग रही हैं, क्यों न? पर अगर मैं सवाल करूँ कि शाह साहब के पास ताज़े सेबों की टोकनी रोज़ सबेरे किसके हुक्म से पहुँचाई जाती है, तो आप क्या जवाब देंगे?"

"शाही क़ैदियों के वास्ते···।"

"चुप रहो। शाही क़ैदियों के वास्ते रात को औरतें मुहैय्या करने की भी इजाज़त है क्या?" कड़ककर मुल्ला ने पूछा।

"औरतें?"

"हाँ औरतें! जुम्मेरात की शब को दो नाज़नीनें बादलगढ़ में खिड़की के रास्ते पहुँची थीं और उसी रास्ते सुबह से पहले-पहले वापस हो गई थीं। फिर मालूम हुआ कि वह इन्तज़ाम तुम्हारे ज़रिये ही हुआ

था और उसके लिए तुमने महज़ पाँच सौ रुपये की बख़्शीश ली थी। अगर ख़ानख़ानाँ को इन सब बातों का पता चल जाय तो जानते हो क्या हो? तुम्हारी खाल खींच ली जाय! तुम समझते हो कि तुम्हारी इन करतूतों का पता मुझे नहीं रहता! पर याद रक्खो कि मैं ऐसे मामलों में दीदओ दानिस्ता इसी वास्ते चश्मपोशी करता हूँ कि हम लोगों को एक दूसरे की इम्दाद करनी चाहिए।"

"मैं आपके हुक्म का ताबेदार हूँ।"

"तो सब सामान ठीक रहेगा न?"

"जो इरशाद।"

"तब तुम जा सकते हो। और यक़ीन रक्खो कि तुम्हें कोई कुछ न कहेगा। न तुम्हारी नौकरी पर आँच आयेगी।"

जेलदार अभिवादन करके बिदा हो गया। मुल्ला फिर अपने काम में जुट गया।

× × ×

उसी रात को अपने कमरे में अचानक प्रकाश देखकर विजय हड़बड़ा कर उठ बैठा। बादलगढ़ के लिए ऐसी घटना असामान्य थी। उसने देखा, दो सिपाहियों के साथ जेलदार सामने खड़ा है। वह कुछ कहने ही वाला था कि जेलदार ने अपनी सामान्य शिष्टता के साथ अभिवादन किया।

उसके अभिवादन को स्वीकार करते हुए विजय उसकी ओर प्रश्न-सूचक दृष्टि से देखने लगा। जेलदार ने पास पहुँचकर धीरे से कहा—"एक ख़ास मतलब से बेवक़्त हाज़िर हुआ हूँ।"

"मैं समझ रहा हूँ। क्या मुझे इसी वक्त तैयार हो जाना चाहिए?"

"कल सबेरे तड़के!"

"शुक्रिया। मगर मैंने एक दरख़्वास्त की थी!"

"वह शायद मंज़ूर नहीं हुई है।"

"हुक्म आ गया है क्या?"

"हाँ, इत्तला देने आया हूँ, हालाँकि यह बात यहाँ के मामूल के मुआफ़िक़ नहीं है। मगर आपसे मुझे कुछ ख़ास तरह की मुहब्बत हो गई है और मुझे ऐसा लग रहा है मानो मेरा सगा भाई···" कहते-कहते जेलदार की आँखें भर आईं।

जेलदार की सहृदयता से विजय प्रभावित हो उठा। उसके हाथ को स्पर्श करते हुए उसने मृदुकंठ से कहा—"आपकी सज्जनता ही के कारण इस मनहूस जगह में भी मेरे ये दिन बड़े मज़े में कटे। और अब जो होने जा रहा है, उसके लिए रंज करने की ज़रूरत नहीं है। आपको मालूम होगा कि मैं इसके लिए पहले से ही तैयार हूँ।"

"इस कच्ची उम्र में···।" कहते-कहते जेलदार का गला भर आया।

क्षत्रियोचित धीरता का प्रदर्शन करते हुए विजयपाल बोला—"मृत्यु जब आ जाय, तभी उसके स्वागत के लिए हमें तैयार रहना चाहिए। परमेश्वर की आज्ञा का पालन करने के लिए ही वह दौड़ा करती है। किसी की उम्र कच्ची है या पक्की, यह सोचने की उसे फ़ुरसत नहीं है।"

जेलदार इस अद्भुत क़ैदी की बातें आश्चर्य से सुनता रहा। फिर बोला—"यह उम्र लुत्फ़ उठाने की होती है। और अगर किसी

हिकमत से वैसा करना मुमकिन हो सके—यानी अकाल मौत को बचाया जा सकता हो—तो वैसा न करना गुनाह है।"

"मैं आपकी बात समझा नहीं।"

"मोहतसिब कह रहा था न कि···।"

"राम राम! अब उन बातों से क्या फ़ायदा है? मोहतसिब के मतलब की बात मेरे पास कोई नहीं है।"

"सरदार कुशलपाल से मुलाक़ात करना आप पसन्द करेंगे?"

"क्या फ़ायदा! और मुलाक़ात का मौक़ा भी अब कैसे मिल सकता है!"

"उसे भी कल आपके साथ ही सज़ा दी जानेवाली है।"

"किसे? सरदार कुशलपाल को? क्या कह रहे हैं आप!" विजयपाल ने आश्चर्य के साथ पूछा।

"हाँ, जो जुर्म आप पर आयद किया गया है, वही उस पर भी है। दोनों को एक साथ सज़ा देने का हुक्म हुआ है। सरदार साहब चाहते हैं कि अगर आपको कुछ एतराज़ न हो तो आख़िरी मुलाक़ात हो जाय!"

"तब मैं ज़रूर मुलाक़ात करूँगा। मैं तो उन पर सन्देह कर रहा था। पर अब देख रहा हूँ कि मैं ग़लती पर था। राम राम! बड़ी भूल हुई। किस तरह उनसे मुलाक़ात हो सकती है?"

"आप चाहें तो इसी वक़्त मैं आपको उनकी कोठरी में पहुँचा दूँगा। फिर तो वक़्त मिलना मुश्किल है। रात आधी जा चुकी है।"

"मैं तैयार हूँ।"

जेलदार विजयपाल को लेकर उसी रास्ते से कुशलपाल की पूर्वपरिचित कोठरी के पास पहुँच गया। विजयपाल ने देखा, अपने उसी दिनवाले फटे वस्त्र पहने कुशलपाल द्वार की ओर पीठ किये तख़्त पर लेटा है। इन लोगों की पदचाप का अनुमान करके ही जैसे उसने गुनगुनाया—"ये जमदूत सबेरा होने भी देंगे या नहीं!" और फिर चादर को खींचकर मुँह ढँक लिया।

"सरदार विजयपाल जी तशरीफ़ लाये हैं।" उसके तख़्त के पास पहुँचकर जेलदार ने सूचना दी। छद्मवेशधारी कुशलपाल उठकर बैठ गया और बोला, "आइए विजयपाल जी! आपकी ही प्रतीक्षा में था। बड़ी कृपा की।"

विजयपाल को कोठरी में छोड़कर और बाहर से ताला बन्द करके जेलदार वहाँ से हट गया।

"ख़बरें तो आपको सब मिल ही चुकी होंगी?" कुशलपाल ने वार्त्तालाप को प्रारंभ करते हुए उदासी से कहा।

"जी, और मुझसे यह भी कहा गया है कि हम दोनों साथ ही साथ...।" गहरी साँस लेते हुए विजयपाल ने कहा।

"तुम शायद इस वक़्त के लिए तैयार नहीं थे?" मर्म को स्पर्श करते हुए छद्मवेशधारी कुशलपाल ने कहा।

"हमारी इच्छा या अनिच्छा की परवाह मौत क्यों करने लगी?"

"देखता हूँ कि तुम इस वक़्त तक ज़िन्दगी से बुरी तरह चस्पाँ हो!"

"मेरे लिए ऐसा करने का कारण है।"

"ज़िन्दा रहने के लिए हर एक के पास कारण होता है।"

"फिर भी मेरा मामला कुछ दूसरी तरह का है। और सच बात तो यह है कि ज़्यादा नहीं तो कम से कम चार-छः दिन ज़िन्दा रहना मैं और चाहता हूँ।"

"तब मैं एक तरकीब बता सकता हूँ।"

"इक़रारी मुजरिम बन जाना!"

"नहीं।"

"मुआफ़ी माँग लेना!"

"वह भी नहीं।"

"तब?"

"मेरे साथ...।" शेषांश को आँख के संकेत से पूरा करते हुए कुशलपाल ने कहा।

"तुम्हारे साथ?" सन्नाटे में आते हुए विजयपाल ने अर्धस्पष्ट स्वर में पूछा।

इधर-उधर अच्छी तरह देखकर बनावटी कुशलपाल ने कहा—"मैं जा रहा हूँ।"

"पर यह भी जानते हो कि सबेरा होते-होते हम दोनों इस दुनिया से...।"

"उससे पहले ही मैं...।"

"सच!"

"और नहीं तो क्या!"

"कैसे?"

"खिड़की को खोलकर देखो।" पीछे की खिड़की की ओर संकेत करते हुए कुशलपाल ने कहा।

"अच्छा !" धीरे से खिड़की खोलकर देखते हुए विजयपाल ने कहा।

"जँगले को हिलाकर देखो !'

"ओ हो !"

"बड़ी मुश्किल से इसे काट सका हूँ।"

"कमाल है ! पर चहारदीवारी ?"

"यह देखो ! टाट के बिछावन के नीचे से एक कमंद निकालकर विजय को दिखाते हुए कुशलपाल ने कहा।

"यह कहाँ से मिला ?"

"यह न पूछो ! यहीं तैयार कर लिया है !"

"आप सचमुच कुशलपाल हैं ?"

"मेरा इरादा अकेले जाने का था। फिर तुम्हें साथ ले जाने की भी जी में आ गई। सोचा, जेलवालों को उल्लू बनाना है, तो पूरी तरह बनाया जाय !"

"अब समय खोना ठीक नहीं।" मन में अद्भुत प्रकार की हड़बड़ी का अनुभव करते हुए विजय ने कहा।

"ठहरो ! यह मौक़ा हड़बड़ी का नहीं है। हमें क़दम-क़दम पर होशियारी से काम करना चाहिए।"

"सन्तरी पहरे पर होंगे ?"

"बादल भी आसमान पर पहरा दे रहे हैं।" कुछ मुस्कराते हुए कुशलपाल ने उत्तर दिया।

"आप सचमुच सरदार हैं !"

"अब आप भी सरदार बन जायँगे।"

जँगले से निकलकर दोनों जेल की चहारदीवारी के नीचे जा पहुँचे।

"मैं पहले चढ़ता हूँ।" कमन्द को दीवाल पर फेंककर और उसकी मज़बूती की जाँच करके विजयपाल ने कहा।

"ठीक है, चलो फिर! ज़रा होशियारी से!"

विजय दीवाल के ऊपर पहुँच गया। उसके बाद कुशलपाल भी चढ़ गया।

"नीचे कैसे उतरेंगे?"

"वह उधर!" एक सीढ़ी की ओर संकेत करते हुए कुशलपाल ने कहा।

"सीढ़ी लगी है! यानी आपके और साथी भी...?"

ओठों पर उँगली रखकर कुशलपाल ने चुप रहने का संकेत किया।

दोनों क्रमशः नीचे उतर गये!

"सीढ़ी को उठा लो!" कुशलपाल ने आदेश दिया।

विजयपाल ने सीढ़ी को उठाकर कंधे पर रख लिया।

"इसी से खाई को पार करना है।" कुशलपाल ने संकेत किया।

"सीढ़ी को आर-पार रखकर उस पर होकर दोनों दीवाल के नीचे की खाई को भी पार कर गये।

"चलो!"

दोनों द्रुत गति से सड़क पर चल दिये।

"अब हम स्वतंत्र हैं।" राह चलते विजय ने कहा।

"बेशक!" हाँफते हुए कुशलपाल ने उत्तर दिया।

"कहते थे कि बादलगढ़ से निकल जाना असम्भव है!" विजय ने प्रसन्नता से कहा।

"अब कभी इधर आना हो तो अकेले मत आना। मुझे साथ लेकर आना।" कुशलपाल ने मज़ाक़ किया।

दोनों चलते रहे।

"अब हम लोगों को मुख़्तलिफ़ सिम्तों को भागना है।"

"यही ठीक रहेगा।"

एक चौराहे पर पहुँच कर कुशलपाल रुक गया। विजयपाल भी खड़ा हो गया।

"ये घोड़े?" चौराहे के एक किनारे पीपल के नीचे खड़े दो घोड़ों की ओर संकेत करते हुए विजयपाल ने पूछा।

"ये हम दोनों के लिए हैं।"

विजयपाल का हृदय प्रसन्नता से उछलने लगा।

"आपकी कृपा से स्वतन्त्र वायु में श्वास लेने का मौक़ा मिला है।"

"और सुनो!"

"जी!"

"तुम्हारे पास पैसे तो होंगे नहीं!"

"मेरे पास एक पैसा भी नहीं है।"

"यह लो!" मुट्ठी भर रुपये अपने फटे कुरते की भीतरवाली

बसनी से उँडेल कर विजय के सामने करते हुए कुशलपाल ने कहा—"यह ख़र्च के लिए, और घोड़े पर चढ़कर रफ़ूचक्कर हो जाओ। अभी पहर भर रात बाक़ी है। मैं भी चला!"

"जय राम जी की!"

"जै······।"

दोनों घोड़े विभिन्न दिशाओं में सरपट भागने लगे।

———

बैरम ख़ाँ अभी शयनागार से बाहर आये ही थे कि थका और परेशान-सा मुल्ला उनके सामने आ खड़ा हुआ। उसे इस अवस्था में देखकर ख़ानख़ानाँ ने कहा--"कहो ख़ैरियत तो है, मुल्ला साहब, कहाँ से तशरीफ़ आ रही है?"

"सीधी बादलगढ़ से, ग़रीब परवर!"

"विजयपाल का क्या हाल-चाल है?"

"उसकी चाँदी है, आलीजाह!"

"कल मैंने जो कुछ कहा था, उसकी तैयारी हो चुकी?"

"सारी तैयारियाँ मुकम्मिल हैं, जनाब आली! सिर्फ़ एक छोटी-सी कसर रह गई है?"

"वह क्या?"

"यही कि नौशा साहब नहीं हैं?"

"नौशा साहब?"

"वह कल रात बादलगढ़ से तशरीफ़ ले गये हैं।"

"बादलगढ़ से! कैसी बातें कर रहे हो?"

"आदमी हर जगह से भाग जा सकता है! अगर उसे एक तरफ़

सज़ाये मौत का हुक्म सुना दिया जाय और दूसरी तरफ़ एक छोटा-सा सूराख़ मिल जाय !"

"बादलगढ़ की दीवालों में सूराख़ !"

"सूराख़ तो लोहे में भी बनाये जा सकते हैं, आलीजाह ! और यह सब करने-धरने को वहाँ काफ़ी मौक़ा रहता है ।"

"यानी वह नक़ब लगाकर भाग गया ? मगर आज उसकी शादी जो होनेवाली थी !"

"एक पुरानी मसल है कि जान जानाँ से ज़्यादा प्यारी होती है ।"

"आख़िर वह गया कहाँ ?"

"इस वक्त इस सवाल का जवाब दे सकना मुश्किल है, हाँ कोशिश करने पर कल शाम तक अलबत्ता कुछ अर्ज़ कर सकूँगा ।"

ख़ानख़ानाँ कुछ देर तक गहरी चिन्ता में डूबे रहे । फिर बोले—"मैंने उसकी रिहाई का फ़ैसला किया था ।"

"पर उसने आपको तकलीफ़ देना मुनासिब नहीं समझा और ख़ुद-ब-ख़ुद रिहाई हासिल कर ली ।"

"ख़ैर, अल्लाह के हर काम में कुछ मसलहत रहती है । अब इसका तज़किरा किसी से करने की ज़रूरत नहीं ।"

"बहुत ख़ूब; उसे दुबारा गिरफ़्तार करने की बाबत क्या हुक्म है ?"

"इस वक़्त कुछ करने-धरने की ज़रूरत नहीं है, फिर देखा जायगा ।"

"जो इरशाद !" कहकर मुल्ला जाने ही वाला था कि सामने से कुछ आहट सुनाई दी । मजलिसख़ाने का दरबान हाज़िर था ।

झुककर सलाम करते हुए दरबान ने प्रर्थना की—"एक जवान ड्योढ़ीख़ाने पर खड़ा शेख़ साहब को दरियाफ़्त कर रहा है।"

यह सुनते ही मुल्ला का मुँह उतर गया और बैरम ख़ाँ ख़ुशी से उछल पड़े। वे दरबान से बोले—"उसे थोडी देर बाद मजलिसख़ाने में हाज़िर करो।" और फिर स्वयं जल्दी-जल्दी वस्त्र बदलने लगे।

शेख़ के पुराने परिधान में ख़ानख़ानाँ जब मजलिसख़ाने में पहुँचे, विजयपाल बैठा उनकी प्रतीक्षा कर रहा था। उनके पहुँचते ही विजयपाल ने उनकी चरण-धूलि लेकर मस्तक से लगाई और फिर हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। उसकी ओर आश्चर्य से देखते हुए उन्होंने कहा—"विजयपाल जी! यहाँ कैसे?"

"सरदार कुशलपाल जी की सहायता से मैं वहाँ से बाहर निकल आया हूँ।" उद्वेग को दबाने की चेष्टा-सी करते हुए विजयपाल ने उत्तर दिया।

"मगर बजाय किसी जंगल या पहाड़ में पनाह लेने के तुम यहाँ—इस ख़तरनाक जगह पर—क्यों आये?"

"पहले मेरा भी इरादा किसी ऐसी जगह पर जा छिपने का था। मगर फिर•••!"

"उस लड़की का ख़याल आ गया क्या?"

"जी नहीं।"

"तब?"

"मुझे अपने उन तीनों मित्रों का ध्यान आ गया जो अभी तक ग्वालियर में क़ैद हैं और जिनके सिरों पर तलवारें झूल रही हैं।"

"इस हालत में तुम उनकी क्या मदद कर सकते हो ?"

"उन्हें छुडाने की कोशिश करना चाहता हूँ ।"

"किस तरह ?"

"जिस काम के लिए मैं यहाँ भेजा गया था। उसे पूरा करके ?"

"यानी खानखानाँ की गर्दन मारकर। यही न ? तुमने अपना इरादा अभी तक बदला नहीं है ?"

"जो हालत तब थी, वह अब भी बनी हुई है !"

"मगर शायद तुम वही नहीं रहे, जो पहले थे ! उस वक्त तक तुम्हें हालात की ठीक-ठीक जानकारी न थी और जोश में आकर तुम कुछ न कुछ कर गुज़रना चाहते थे। उसके नशेबो फ़राज़ की तुम्हें परवाह न थी। अब तुम मलकुलमौत के दरबार से होकर लौट आये हो। तुम्हें तजरबा हो गया होगा कि चीज़ें दरअस्ल वैसी ही नहीं होतीं, जैसी कि वे दिखाई देती हैं। अब बेहतर यह होगा कि तुम अव्वल किसी महफ़ूज़ मुक़ाम पर पहुँच कर अपनी बचत करो। बाद को जो चाहो, करना ।"

"मेरे इस तरह भाग निकलने के मेरे मित्र दूसरे अर्थ लगायेंगे।"

"क्या ?"

"वे कहेंगे कि मैं मुखबिरी करके छूटा हूँ। मैंने दुश्मनों को सारा भेद बतला दिया है।"

"अगर वे लोग अब तक ज़िन्दा न बचे हों ?"

"तब मेरी ज़िम्मेदारी और ज़्यादा हो जाती है। उनकी हत्या का बदला लेना मेरा कर्त्तव्य हो जाता है। जब तक मैं ऐसा न कर लूँ, मुझे शान्ति न मिलेगी। मेरी अन्तरात्मा मुझे धिक्कारती रहेगी।"

"तुम्हारा दिमाग़ अब भी गरम है। ज़रा आराम करने की ज़रूरत है। उस लड़की से मिलना चाहते हो?"

"मिलना तो चाहता हूँ, मगर एक शर्त पर! पहले आप मेरी सहायता के लिए वचन दीजिए। अब एक-एक क्षण का विलंब असह्य है। मेरी भाँति मेरे मित्रों को भी मृत्युदण्ड की आज्ञा दी जा चुकी है। आप कृपा करके मुझे यह वचन दे दीजिए कि आप मेरी सहायता अवश्य करेंगे। मैं आपसे दुबारा वचन इसलिए चाहता हूँ कि मैं भी आखिर मनुष्य हूँ। मुझमें भी कमज़ोरियाँ हैं। मुझे अपनी कमज़ोरियों से समझौता करना होगा—नन्दा के आँसुओं से निबटना होगा। नहीं; नहीं, मैं नन्दा से न मिलूँगा। और अगर आप भेजेंगे ही तो इसी शर्त पर मिलूँगा कि पहले आप मुझे खानखानाँ से मिलाने का वचन दे दें।"

"अगर यह शर्त मुझे मंज़ूर न हो?"

"उस हालत में मैं नन्दा से नहीं मिलूँगा। वह समझ लेगी कि मैं मर गया। निराश के हृदय में आशा-संचार करने से क्या लाभ!"

"तुम अपने इरादे से बाज़ न आओगे?"

"नहीं! यद्यपि मैं जानता हूँ कि आपकी सहायता बिना मुझे सफलता न मिलेगी।"

"उस सूरत में तुम करोगे क्या?"

"मैं कुछ दिनों तक घूम-फिरकर खानखानाँ की स्थिति का पता लगाऊँगा और उसके बाद अगर मौक़ा मिलेगा तो······।"

"ख़ूब सोच-समझ लो !"

"मैं सोच चुका हूँ। फिर भी एक बार मैं सहायता की भिक्षा आपसे अवश्य माँगूँगा।"

"यानी मुझे काँटों में घसीटे बग़ैर तुम मानोगे नहीं। अच्छी बात है। जाओ, नन्दिनी उधर उस हवेली में है। उससे मिल आओ।"

"लौटने पर मुझे आपका आश्वासन मिल जायगा ?"

"ज़रूर !"

"और आपका उत्तर वैसा ही होगा, जैसा मैं चाहता हूँ।"

"यही सोच रहा हूँ।"

विजय आश्वस्त भाव से नन्दा की हवेली में पहुँचा। सद्यःस्नाता नन्दा लाल रंग की रेशमी धोती पहने, माथे में टीका दिये, अपने लगाये हुए तुलसी के पौधे के सामने हाथ जोड़े बैठी थी। गीली केशराशि पीठ को आच्छादित कर भूमि पर फैली थी। वह प्रार्थना के स्वर में गुनगुना रही थी—"मा, मैं यह नहीं चाहती कि वे मुझे मिल ही जायँ। पर वे जहाँ कहीं रहें, कुशल से रहें। मैं आपसे उनके प्राणों की भीख माँग रही हूँ। मा तुम सब जानती हो, तुम सब कुछ कर सकती हो। क्या मेरी प्रार्थना पर ध्यान नहीं दोगी, मा !" उसके कपोलों पर आँसुओं की धारायें बह रही थीं। आँचल फैला हुआ था।

"विजय दबे पाँव उसके पीछे जा खड़ा हुआ और बहुत देर तक स्वयं को भूला हुआ उसकी प्रार्थनायें सुनता रहा। फिर बोला—"मैं आ गया, नन्दा !"

नन्दा ने पीछे मुड़कर देखा ! विजय ही तो था। उसे लगा, जैसे देवी के दरबार में उसकी प्रार्थना स्वीकृत हो गई है। वह किलकारी भरती हुई उठी और विजय के वक्षःस्थल से चिपट गई।

"अरे ! तुम कैसे आ गये, प्यारे···!"

"मैं जेलख़ाने से भागा हूँ।"

"ओ हो, और फिर भी यहाँ आ गए ! शायद मुझे साथ ले चलने के लिए ! अच्छा, अच्छा; मैं तैयार हूँ। चलो।" एक क्षण बाद सहसा अलग हटते हुए नन्दा ने कहा।

"ठहरो नन्दा ! उसके लिए अभी समय नहीं आया है ! अभी वह काम अधूरा ही पड़ा है जिसके लिए मैं क़न्नौज से चलकर यहाँ आया था। पर अब कुछ घण्टे का ही मामला रह गया है। आज शाम से पहले-पहले सब समाप्त हो जायगा। फिर या तो तुम्हें साथ लेकर ख़ुशी-ख़ुशी मैं क़न्नौज लौट चलूँगा, या फिर बादलगढ़ में पहुँचा दिया जाऊँगा। अगर तुम्हें आज्ञा मिल सके तो पहले की तरह फिर वहीं आकर मुझसे भेंट कर जाना। हैं, यह क्या ? तुम काँप रही हो ! यह ठीक नहीं ! तुम्हें साहस से काम लेना है। तुम जानती ही हो कि तुम्हारा विजय कितना बड़ा काम करने जा रहा है। इस तरह अधीर होकर तुम्हें उसकी राह न रोकनी चाहिए।"

नन्दा लड़खड़ाई। विजय ने उसे थाम कर उसी तुलसी के पौधे के पास बिठाते हुए कहा—"प्रार्थना करो, नन्दा ! प्रार्थना में बहुत बड़ी शक्ति होती है।" यह कहकर और नन्दा के ललाट का चुम्बन करके वह द्रुतगति से हवेली से बाहर हो गया।

सहन में पहुँचने पर विजयपाल को दरबान प्रतीक्षा करता मिला। उसने उसके हाथ पर एक पत्र रख दिया जिसमें लिखा था—

"अज़ीज़ शाहज़ादे, तुम्हें मालूम हुआ होगा कि इन दिनों यहाँ नौ रोज़ का जश्न चल रहा है। उसी सिलसिले में बारगाह में रोज़ दरबार होता है जिसमें अमीर-उमरा के साथ वकीले मुतलक़ भी मौजूद रहते हैं। वे हर रोज़ दोपहर से शाम तक बारगाह में क़याम करते हैं। उसके बाद नमाज़ हो जाने पर आराम करने के लिए क़लन्दरी में चले जाते हैं, जो बारगाह से मिला हुआ पाँईं बाग़ है। वहाँ उनकी इजाज़त बग़ैर दूसरा नहीं जा सकता।

"वकीले मुतलक़ साहब का क़दोक़ामत मेरे जैसा है। ख़ूब गोरा चेहरा, सफ़ेद लम्बी दाढ़ी। दाहिने बाज़ू में एक बाज़ूबन्द पहनते हैं जिसमें तीन क़तारों में नौ हीरे जड़े हैं। बीचवाला हीरा सबसे बड़ा और ज़्यादा आबदार है। यही उनकी पहचान है। उनके अलावा और कोई अमीर उस तरह का बाज़ूबन्द नहीं पहनता।

"इस ख़त के साथ जो एक दूसरा पुर्ज़ा रक्खा हुआ है, वह शिनाख़्त के वास्ते है। उसे दिखलाने पर तुम न सिर्फ़ बारगाह में, क़लन्दरी में भी पहुँच सकते हो। कोई दरबान तुम्हें रोकने की हिम्मत न कर सकेगा। क़लन्दरी में जनाब ख़ानख़ानाँ तुम्हें बिलकुल अकेले मिलेंगे।

"दरबान को मैंने सब कुछ समझा दिया है। वह तुम्हें ठहरने की जगह बता देगा और जिस चीज़ की ज़रूरत होगी मुहय्या कर देगा। एक दरबारी पोशाक भी वह तुम्हें देगा जिसे पहनकर तुम बारगाह के जश्न में शामिल हो सकते हो।"

पत्र पढ़कर विजय का दिल धड़कने लगा। जिस व्यक्ति की हत्या करने का विचार वह महीनों से रात-दिन करता रहा है, अब उसके निकट जाने का अवसर आ गया है। कुछ घण्टों बाद वह उसके ठीक सामने होगा, और शायद ऐसी जगह पर भी, जहाँ विजय के और उस व्यक्ति के बीच कोई अन्तर, कोई व्यवधान न होगा। इस विचार से उसके सारे शरीर से एक साथ प्रस्वेद छूट पड़ा और उसे लगा जैसे वह गिर जायगा। बरामदे के एक खम्भे का सहारा लेकर उसने स्वयं को सँभाला फिर दरबान के साथ निर्देशित स्थान की ओर विश्राम करने के लिए चल दिया।

× × ×

अपनी सहज चेतना पर अनावश्यक भार डालकर विजय अन्ततः बारगाह जाने के लिए तैयार हो गया। उसने निर्देशित पोशाक पहन ली और गाड़ी पर जा बैठा। वह चाहता था कि आक्रमण से पहले उसे कुछ समय मिल जाय, जिससे वह अपने लक्ष्य को अच्छी तरह देख-समझ ले, और कुछ समय तक उसके समीप रह भी ले जिससे आवश्यक समय पर एक महान् व्यक्तित्व से प्रभावित होकर उसके हाथ कुण्ठित न हो जायँ। मार्ग में अनेक प्रकार के अनुकूल-प्रतिकूल विचार उसके हृदय को आन्दोलित करने लगे। उसे लगा, जैसे उसमें उपयुक्त साहस का अभाव है और इसी लिए उसका इस समय बारगाह जाना व्यर्थ होगा। ख़ानख़ानाँ को सामने पाकर भी वह उन पर आक्रमण न कर सकेगा। परन्तु दूसरे क्षण ही उसे अपने उन साथियों का ध्यान आया जो ग्वालियर में अपनी गर्दनें काठ पर रक्खे, ऊपर से ख़ंज़र गिरने की प्रतीक्षा कर रहे होंगे, फिर

भी जिनकी आँखें किसी आशा के साथ सीकरी की ओर टकटकी लगाये होंगी। नहीं, नहीं, उसे बैरम ख़ाँ का वध अवश्य करना होगा, और आज ही करना होगा। वह अपने को किसी कमज़ोरी का शिकार न बनने देगा। उसका हृदय ज़ोर-ज़ोर धड़कने लगा।

परिचय-पत्र दिखाकर बारगाह की ड्योढ़ी में प्रवेश-लाभकर लेने पर उसे एक बार फिर दुर्बलता का अनुभव हुआ। इस जनाकीर्ण और आमोद-प्रमोद-पूर्ण स्थान पर वह कैसा बीभत्स काण्ड करने जा रहा है! फिर भी वह आगे बढ़ता गया और अन्ततः उस बड़े रेशमी शामियाने के पास पहुँच गया जिसके नीचे बैठे कुछ अमीर सलाह-मशविरा कर रहे थे और बीच-बीच आपस में हँसी-मज़ाक़ भी करते जाते थे। सम्भव है, उसका लक्ष्य भी इन्हीं में हो। उसने दूर से ही प्रत्येक अमीर के चेहरे और वेश-भूषा को ध्यान से देखा। सब एक से एक क़ीमती आभूषणों और वस्त्रों से सुसज्जित थे। सबके मुख-मण्डलों पर असाधारण दीप्ति थी। वह निर्णय न कर सका कि इनमें कौन बैरम ख़ाँ हो सकता है। इसी समय सहसा एक विचार उसके मस्तिष्क में बिजली की तरह कौंध गया। बादलगढ़ का जेलदार या मोहतसिब भी कहीं इस जशन में शामिल न हो। और यदि ऐसा हुआ तो वह कुछ करने-धरने से पहले ही धर लिया जायगा। वह वहाँ से हटकर दूसरी ओर चला गया। उधर एक बहुत बड़ा रुपहली चन्दोवा था जिसके नीचे कई अमीर बड़े-बड़े थाल अपने हाथों पर रक्खे पंक्तिबद्ध खड़े थे। उन थालों पर ज़री के काम के रूमाल पड़े थे जिनमें मोतियों की झालरें लटक रही थीं। अगल-बगल बड़े-बड़े ईरानी-तूरानी सरदार, जो अपने बल-पौरुष के आगे रुस्तम और असफ़न्दयार

को भी तुच्छ समझते होंगे, खोद, जिरह, बकतर, चार आईना आदि पहने, सिर से पैर तक लोहे में डूबे चित्र की भाँति चुपचाप खड़े थे। सामने एक ऊँचा ख़ाली सिंहासन था जिसकी दोनों बग़लों में छः-छः सुन्दरी लड़कियाँ खड़ी थीं। उन लड़कियों के हाथों में सुनहरी थालियाँ थीं। उन थालियों से सुनहरी और रुपहली धूल ले-लेकर वे सिंहासन पर निछावर कर रही थीं। दूसरी ओर नौबत बज रही थी जिसके शब्द में कानाघाली न सुनाई देती थी। विजय ने वहाँ भी ध्यान से देखा: वह अब भी निर्णय न कर सका कि ख़ानख़ानाँ इनमें कौन हो सकता है! इसके बाद उसने साधारण दर्शकों की टोली में मिलकर इधर-उधर घूमने की इच्छा की। पर उसे शीघ्र ही अपनी भूल ज्ञात हो गई। उसकी दरबारी पोशाक देखकर साधारण दर्शक उससे दूर हट जाते थे और उसे आतंक की दृष्टि से देखने लगते थे।

उसे बार बार आभास होने लगा कि इस वातावरण में वह अपने को खपा न सकेगा। सबकी आँखें उसी को घूर रही हैं और वह शीघ्र पकड़ लिया जायगा। दरबारियों के बीच पहुँचने का उसे साहस न हो रहा था और जन-साधारण उसे अपने में मिलाने को तैयार न थे। वह परेशान होकर इधर-उधर टहलने लगा। सोचता था कि रात हो जाय तो वह क़लन्दरी में जाकर अपना काम पूरा करे। अब वह अनुमान के सहारे पाँईं बाग़ की ओर चला, जिससे वह उस स्थान के बारे में पहले से ही जानकारी प्राप्त कर ले।

पाँईं बाग़ विजय की कल्पना से कहीं अधिक बड़ा और सुसज्जित था। उसके पाषाण-निर्मित द्वार के दोनों ओर केलों के स्वाभाविक खम्भे लगे थे

जिनमें बड़ी-बड़ी गहरें भूल रही थीं। ऊपर की ओर पच्चीकारी का लुभावना दृश्य था जिसमें खोदे गये रंग-बिरंगे फूल द्वार को ढकनेवाली लताओं के रंग-बिरंगे फूलों से इस प्रकार मिले थे कि दोनों में भेद करना कठिन था। द्वार इस समय बन्द था। एक सन्तरी पहरा दे रहा था। उसने चाहा कि बाग़ के सम्बन्ध में पहरेदार से कुछ पूछ-ताँछ करे, पर साहस न पड़ा। वह पीछे को फिरना ही चाहता था कि उसे अपने कंधे पर किसी के कर-स्पर्श का अनुभव हुआ। उसने मुड़कर देखा, शेख़ साहब खड़े मुस्करा रहे हैं। उनकी पोशाक श्वेत होने पर भी आज असाधारण रूप से सुन्दर और बहुमूल्य है।

"कहिए, क्या हाल है?" सहज मुस्कान के साथ शेख़ ने प्रश्न किया!

"यों ही बाग़ देखने चला आया था?"

"कुछ हिचकिचाहट हो रही है क्या?"

"नहीं तो!" अपने चोग़े में छिपे चाक़ू की ओर इशारा करते हुए विजय ने कहा।

"ख़ंजर की चमक तो साफ़ दिखाई पड़ रही है पर साथ ही क़ातिल का हाथ काँप रहा है।" कविता का सहारा लेते हुए शेख़ ने कहा!

"आपका अनुमान ठीक है। मैं आगा-पीछा कर रहा था और चाहता था कि यहाँ से भाग जाऊँ। पर आप यहाँ मिल गये। इसलिए मेरा साहस फिर लौट आया है।"

"यानी तुम अपना काम अच्छी तरह अँजाम दे सकोगे?"

"कोशिश करूँगा; पर आख़िर यह पराई जगह है।"

"अपने घर की दिलेरी तो ज़्यादा अहमियत नहीं रखती।"

"मैं चाहता हूँ कि आप पहले एक बार मुझे ख़ानख़ानाँ के दर्शन करा दें। इस भीड़-भाड़ में उन्हें पहचान सकना मेरे लिए मुश्किल है।"

"वे अभी-अभी तुम्हारे नज़दीक खड़े थे।"

"मेरे नज़दीक?"

"हाँ, हाँ, तुम्हारे नज़दीक, इतने ही नज़दीक, जितना कि मैं खड़ा हूँ।"

विजय सिहर उठा।

"तुम्हारा इस तरह इधर-उधर फिरना ठीक नहीं है। अच्छा हो, तुम उस चँदोवे के नीचे चलकर बैठो और वहीं से सारा तमाशा देखो। यहाँ तुम्हें कोई नहीं पहचानता, और न किसी को इतनी फ़ुरसत है कि तुम्हें पहचानता फिरे। तुम भी किसी को नहीं पहचानते; तुम्हारे हक़ में यह और भी अच्छा है। शाम होने में अब ज़्यादा देर नहीं है और उसके बाद तो तुम क़लन्दरी में जनाब वकीले मुतलक़ से मिलोगे ही?"

"यही ठीक होगा," कहकर विजयपाल चँदोवे की ओर जाने लगा।

"ठहरो, एक बात और सुनो।"

विजय लौट आया।

"क़लन्दरी में जाओगे किस तरह?"

"इस पुर्ज़े को दिखाकर। यही आपने बताया था!"

"ठीक है। पर इस तरह जाने पर दरबान तुमसे तरह-तरह के सवाल करेगा, और अगर तुम उनका ठीक से जवाब न दे सके तो मुसीबत में पड़ जाओगे ?"

"तब ?"

"मैं दूसरी तरकीब बतलाता हूँ। वह देखो, उधर एक चोर दरवाज़ा है। उस तरफ़ पहरा नहीं रहता। उसमें साँकल की जगह एक बटन लगा रहता है जिसे दबा देने पर दरवाज़ा खुल जाता है। मुझे ख़ानख़ानाँ से तख़लिए में बात-चीत करने की जब कभी ज़रूरत पड़ती है, तब मैं उसी रास्ते से जाता हूँ। और उन्हें तुम पहचान तो लोगे ही। वह जड़ाऊ बाजूबन्दवाली बात याद है न ?"

"जी याद है, मैं उन्हें पहचान लूँगा।"

"आज तुम्हारी आवाज़ कुछ ग़ैर मामूली है ! मुझे अन्देशा है कि कहीं ऐन मौक़े पर तुम ग़लती न कर बैठो !"

"नहीं, ग़लती नहीं होगी ! फिर भी आप समझ सकते हैं कि मैं जो काम करने जा रहा हूँ उसके लिए कितने साहस की आवश्यकता है। मैं समझता था कि मुझमें पर्याप्त साहस है। मेरे जैसा प्रत्येक मनुष्य शायद ऐसा ही समझता होगा। पर काम का सामना होने पर साहस की परीक्षा होती है। क्रोध और आवेश में आकर प्रतिज्ञा कर लेना जितना आसान है, मौक़े पर हाथों को दृढ़ बनाये रखना उतना आसान नहीं है। क्योंकि प्रतिज्ञा करने और काम करने के बीच जो समय रहता है वह दिल को हर तरह पीछे हटाने और कायर बनाने की कोशिश करता रहता

है। मेरे साथ भी ऐसी बहुत सी बातें हो चुकी हैं, इसी लिए दिल जब-तब आगा-पीछा करने लगता है।"

"अब भी मौक़ा है, ख़ूब सोच-समझ लो! साथ ही नन्दिनी की बाबत भी ग़ौर कर लो।"

"अब कुछ भी सोचना-समझना नहीं है। मेरे भाग्य के साथ नन्दिनी का ही नहीं, मेरे तीन दोस्तों का भी भाग्य बँधा हुआ है। इसलिए अब आगा-पीछा करने का मौक़ा नहीं है। मुझे यह काम कर डालना ही होगा। दिल आगा-पीछा करे तो करे, पर हाथ ग़लती नहीं करेंगे।"

"तुम बहादुर हो। मुझे यक़ीन है कि तुम अपना काम ज़रूर पूरा करोगे!" पीठ ठोंकते हुए बनावटी शेख़ ने कहा। "अच्छा जाओ; मेरी नसीहतें याद रखना।" कहते हुए वे एक तरफ़ को चले गये और विजय-पाल चँदोवे की तरफ़ चला गया।

जश्न चलता रहा और विजय की आँखें अनिच्छा होने पर भी उसे देखती रहीं। उस महोत्सव में सभी कुछ महान् था, सभी कुछ गौरव-पूर्ण। महत्ता और वैभव जैसे दिल खोलकर आत्म-प्रदर्शन कर रहे थे। देश-देश के राजा-उमराव अपने-अपने दलबल के साथ उपस्थित थे। उनके तम्बुओं और कारकूनों की सजावटें परस्पर प्रतिस्पर्धा-सी करती लग रही थीं। स्थान स्थान पर बहुमूल्य शामियाने खड़े थे जिनमें अनेक प्रकार की कार्यवाहियाँ चल रही थीं। कहीं ख़िलअतें बँट रही थीं, कहीं पारितो-षिक। कहीं मन्सब लुटाये जा रहे थे, जिनके उत्तर में मन्सबदारों की ओर से रुपये, अशर्फ़ियाँ और सोने-चाँदी के फूल ओलों की तरह बरसाए जा रहे थे। बहुत-से फ़र्राश और ख़वास भी वहाँ उपस्थित थे जिनकी झोलियाँ बादला और मुक़्क़ैस से भरी थीं। उधर मन्सब की घोषणा होती और इधर वे सन्दलियों पर चढ़कर सुनहली-रुपहली धूल उड़ाने लगते। एक समाँ-सा बँध जाता। नक़्क़ारख़ाना तरह-तरह के हिन्दुस्तानी, अरबी, तुरकी, ईरानी और फिरंगी बाजों के समवेत स्वर से गूँज उठता। फिर दमामे का शब्द सबको दबाकर वायुमंडल को घहरा देता।

तीसरा पहर ढलते-ढलते बारगाह के राजपथ पर साम्राज्य वधू की

बारात के दृश्य दिखाये गये। सबसे पहले पंक्तिबद्ध गजराज चले—भारी भरकम—अपने गौरव से आप ही धसकते हुए। सबसे आगे निशानवाला हाथी था, जिस पर सूर्यध्वज लहरा रहा था। उसके पीछे माही-मरातब तथा अन्य निशानोंवाले हाथी थे। सबसे पीछे जंगी हाथी थे जिनके शरीरों पर फ़ौलादी पाखरें थीं और मस्तकों पर भारीभारी ढालें। चेहरों पर गेंडों, शेरों और अरने भैंसों की खालें कल्लों समेत चढ़ा दी गई थीं जिनके कारण उनकी भयंकरता और भी बढ़ गई थी। भयानक सूरतोंवाले ये काले पहाड़ मदजल से भूमि को अभिषिक्त करते हुए सूँड़ों में गुर्ज, बर्छियाँ, भाले, साँकलें और तलवारें हिलाते हुए चल रहे थे।

हाथियों के पीछे-पीछे साँड़नियाँ थीं जो अपनी खिंची गर्दनों, तनी छातियों और कसे शरीरों से लक्का कबूतरों जैसी दिखाई देती थीं। उनके पीछे घोड़े थे जो उछलते-मचलते, खेलते-कूदते, शोख़ियाँ करते चल रहे थे। उनके रुपहली-सुनहली साजों और आभूषणों से ऐसा लगता था मानो साम्राज्य भर की सारी सम्पत्ति उन्हें सजाने में ही व्यय कर दी गई है।

बारगाह की धूप जब पच्छिम ओर की हवेलियों के पीछे जा छिपी तब शेरों, चीतों, गेंडों और कुत्तों का जलूस निकाला गया। सबकी आँखों पर ज़रदोज़ी के गिलाफ़ थे और गलों में ज़ंजीरें। छकडों के साथ-साथ उनके शिक्षक उन्हें चुमकारते-पुचकारते और दम-दिलासा देते चल रहे थे।

जानवरों की पंक्तियाँ समाप्त हुईं तब सैनिकों की पंक्तियाँ प्रारंभ हुईं। चुने हुए सवार और पैदल राजपूत, तुर्क, ईरानी, तूरानी और तातारी सैनिक अपने-अपने अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित, अपनी-अपनी देश-भाषाओं में गीत और कड़खे गाते चल रहे थे। दस्ते पर दस्ते, रिसाले पर

रिसला आ रहा था। 'ओह, यह न जाने कब समाप्त होगी', विजय ने मन ही मन कहा। आँखें उसकी फिर भी उस ओर लगी रहीं। अन्त में किसी प्रकार वह सिलसिला भी समाप्त हुआ। अब उसने दृष्टि उठाकर पच्छिम में आकाश की ओर देखा। सूर्य डूब चुका था। नौबतख़ाने में भी अब दमामे की कर्णकुहरभेदी ध्वनि हो रही थी। 'यह संध्या इस जीवन में फिर देखने को मिलेगी या नहीं', उसने मन ही मन गुन-गुनाया।

इसी समय नक़्क़ारे पर ज़ोर की चोट पडने के साथ आवाज़ें आईं—"ख़बरदार! होशियार! आदाब बजाओ, निगाह रूबरू जहाँपनाह सलामत!"

'शाहंशाह कहीं जा रहे हैं।' विजय ने सोचा। 'अब शायद ख़ानख़ानाँ भी क़लन्दरी की तरफ़ जायँगे।' उसने ने निश्चय किया। वह उठ-कर असंयत भाव से बारगाह में चलहक़दमी करने लगा। इतने में अंध-कार और भी घना हुआ। अब उसके क़दम आप से आप उसे क़लन्दरी की ओर ले चले।

झाड़ों और फ़ानूसों के प्रकाश से अब बारगाह जगमगा उठा। हर ओर दीवाली दिखाई देने लगी! एक साथ कई स्थानों पर आतशबाज़ियाँ होने लगीं, जिनके रुपहली और सुनहली माहताबों के प्रकाश में विजय को वस्तुएँ कुछ दूसरे ही रूप में दिखाई देने लगीं। साथ-साथ संगीत की लहरें भी हवा में छितराने लगीं। विजय अब पाँईं बाग़ के चोर-द्वार के सामने था। आँखें फैलाकर एक बार उसने चारों ओर अच्छी तरह

देखा । उधर कोई नहीं था । उसने धीरे से बटन दबाया । द्वार खुल गया । साँस रोककर दबे पाँव उसने बाग़ में प्रवेश किया ।

इस समय उसकी मनोवस्था विलक्षण हो रही थी । उसे अपनी छाया से डर लगता था और अपनी ही साँसों से शंका हो रही थी । वह एक ऐसे अनोखे संसार में था जहाँ का प्रत्येक फूल-पत्ता उसे आँखें फाड़-फाडकर देख रहा था । उसकी चेतना मानो जवाब दे गई थी और दूर से आता हुआ संगीत उसको क्रन्दनध्वनि-सा लगता था । बाग़ में व्याप्त पुष्पगंध उसे दम घोटती-सी प्रतीत हो रही थी और उसे ऐसा लगता था मानो वह ऐसे एक संकीर्ण घेरे में घिर गया है जिसमें हाथ-पैर फैलाने भर को पर्याप्त अवकाश नहीं है । ऐसे संकुचित स्थान में, ऐसे घनीभूत वातावरण में, वह बहुत देर ठहर न सकेगा । उसे शीघ्र ही यहाँ से बाहर हो जाना चाहिए ।

वह और आगे बढ़ा । अब वह रौसों के एक चतुष्पथ पर था । चारों ओर चारों खम्भों से फ़ानूस बँधे थे । नीचे मख़मली घास थी जिसमें जड़े छोटे-छोटे फूलदार पौधे हरे मख़मल में बेल-बूटे से दिखाई देते थे । उसने फ़ानूसों के प्रकाश में देखा, प्रत्येक पौधा जैसे किसी अनागत आशंका से काँप रहा है । उसके पैर लड़खडाने लगे । वह एक खम्भे को पकड़कर वहीं घास पर बैठ गया । पर इस अवस्था में भी वह अधिक देर तक न रह सका । ग्वालियर के क़िले में बन्द अपने उन तीन मित्रों की मूर्त्तियाँ उसके मनस्पटल पर प्रतिबिम्बित हो उठीं जो इस समय भी आशापूर्ण हृदय से आगरे की ओर टकटकी लगाये होंगे । वह उठा और आगे बढ़ा ।

वातावरण सर्वथा शान्त, सर्वथा निःशब्द, था । न कहीं कोई सन्तरी

था, न पहरेदार। मनुष्य की छाया भी कहीं दिखाई न देती थी। इस प्रशान्त स्थान को उसे रक्तप्लावित करना होगा! इस विपरीत वातावरण में उसे नर-हत्या करनी होगी! वह सिहर उठा। पर कर्त्तव्य कर्त्तव्य है। अपना कर्त्तव्य उसे अवश्य पूरा करना होगा।

वह और आगे बढ़ा।

अब वह बाग़ के ठीक बीच में था। यहाँ संगमर्मर का एक हौज़ था, जिसके बीच फ़व्वारा पूरे वेग से जल उछाल रहा था। बीच में कमल के फूल खिले थे। किनारे-किनारे स्फटिक की वेदियों पर पत्थर की पुतलियाँ नृत्यमुद्रा में खड़ी थीं। चारों कोनों पर पत्थर के चार खम्भे लगे थे जिन पर चार फ़ानूस लटक रहे थे। उन फ़ानूसों में प्रज्वलित मोमबत्तियों का प्रकाश नीचे जल में प्रतिभासित हो रहा था। प्रकाश की धारा ने जल-धाराओं के साथ घुल-मिलकर झिलमिली का एक पर्दा-सा बना दिया था जिसकी चकाचौंध में किनारे लगे गुलाब के फूल भीतर के कमलों से सटे हुए दिखाई दे रहे थे। मानो सुनहली तारों में गूँथ कर किसी ने गजरे बिखेर दिये हों।

विजय कुछ देर तक खड़ा अपलक उस दृश्य को देखता रहा। उसे लगा, उसका मन अपने ही प्रति विद्रोही होता जा रहा है। वह बहुत देर तक खड़ा खड़ा बाह्य का अभ्यन्तर के साथ समन्वय करने का प्रयत्न करता रहा।

बारगाह से आनेवाले दमामे के अकस्मात् ज़ोर के शब्दों ने फिर उसका ध्यान भंग किया। जेब में चाक़ू को सँभालकर उसकी आँखें फिर किसी का अन्वेषण करने लगीं। इस बार उसने देखा, वह जहाँ पर खड़ा

है उस स्थान से ५० क़दम की दूरी पर केलों के झुरमुट के बीच एक वेदी और भी बनी है जिस पर कोई मनुष्य-मूर्त्ति पत्थर की भाँति अविचल बैठी है। वह दबे पाँव उसी ओर को अग्रसर हुआ।

विजय को लगा, उसके रोम-रोम में जाड़ा समा गया है। उसका भीतर-बाहर सब काँप उठा। वह कौन हो सकता है! उसने ध्यान से देखा। उस मानवमूर्त्ति का मुँह दूसरी ओर को था। इसी समय उसे दिखाई दिया, बाग़ की मकर चाँदनी में बाज़ूबन्द के रत्न नवग्रह की भाँति दमक रहे हैं। ज़रूर ख़ानख़ानाँ ही हैं! तब उन पर पीठ पीछे से आक्रमण कर देना चाहिए!

वह बिल्ली की तरह पैर रखता हुआ आगे बढ़ा। शिला पर बैठी मूर्त्ति में कुछ स्पन्दन हुआ। विजय ठिठक गया। मूर्त्ति इस समय उसी की ओर देख रही थी। विजय के हाथ-पाँव फूल गये।

विजय उलटे पाँव कुछ दूर पीछे लौट आया। उसने अपने को बहुत सँभाला। हृदय की प्रतिहिंसापूर्ण भावनाओं को भरसक उभारने की चेष्टा की। चाक़ू निकाल कर दाहिने हाथ की मुट्ठी में जमा कर पकड़ लिया और फिर अग्रसर हुआ।

अब केवल चार क़दम का अन्तर था।

मूर्त्ति में फिर स्पन्दन हुआ। दाहिने हाथ में लगे बाज़ूबन्द के हीरे चौगुने उद्भासित हो उठे। विजय फिर ठिठक गया। मूर्त्ति का हाथ आगे बढ़ा। विजय को सुन पड़ा—"बहादुर इस तरह आगा-पीछा नहीं करते।"

विजय का शरीर जड़ हो गया। हाथ-पैर शिथिल हो गये। अब न

उसमें आगे बढ़ने की शक्ति थी न पीछे लौट आने की। वह जड़ की भाँति जहाँ खड़ा था, वहीं खड़ा रह गया।

अब उस मानवमूर्त्ति की बारी थी।

उसने रत्नजटित पगड़ी को उतारकर एक ओर रख दिया। शाही लबादा भी एक ओर उतार दिया। और फिर मन्द-मन्द गति से विजयपाल की ओर चली।

विजयपाल ने भागना चाहा, पर उसकी टाँगों को जैसे काठ मार गया हो। वह एकटक भूमि की ओर देखने लगा।

मूर्त्ति धीरे-धीरे विजयपाल के पास पहुँच गई और उसके सिर पर हाथ रखकर बोली—"इधर देखो, बहादुर शाहज़ादे; बैरम ख़ाँ तुम्हारे पास खड़ा है!"

विजय ने साहस करके ऊपर को आँखें उठाईं। शेख़ साहब खड़े मुस्करा रहे थे। छुरा उसके हाथ से छूट पड़ा और वह कटे वृक्ष की भाँति उन के चरणों पर गिर पड़ा।

"उठिए उठिए, विजयपाल जी;" विजय को उठाने की चेष्टा करते हुए शेख़ ने कहा।

मुझे सज़ा दीजिए, ख़ानख़ानाँ साहब; मेरी गर्दन उड़वा दीजिए। मैं आपको क़त्ल करने आया था।" बच्चों की भाँति सुबकियाँ भरते हुए विजयपाल ने कहा।

"तुम मेरे अज़ीज़ हो।" उसके सिर पर हाथ रखते हुए ख़ानख़ानाँ ने कहा।

"क़ातिल अज़ीज़ नहीं, दुश्मन होता है, जहाँपनाह!"

"होता होगा; पर मेरी बहन बेगम मुअज़्ज़िमा और मेरे दोस्त राजा रतनसेन का दामाद और मेरी अज़ीज़ा नन्दिनी का शौहर मेरा क़ातिल होने पर भी मेरा दुश्मन नहीं हो सकता। उसे सज़ा नहीं दी जा सकती।"

विजय भौंचक्का-सा ख़ानख़ानाँ के मुँह की ओर देखने लगा। फिर बोला—"ये रिश्ते मेरी समझ में नहीं आये, जहाँपनाह!"

"इसलिए कि उनकी बाबत न तुम्हें कुछ इल्म है और न नन्दिनी को ही। अब मैं तुम्हें बतलाये देता हूँ कि जिस लड़की को तुम लावारिस या यतीम समझ रहे हो वह बिलग्राम के मरहूम राजा रतनसिंह की लड़की है। राजा साहब की बेवा रानी ज़माने की गर्दिश का शिकार होकर यहाँ सलीमशाह के महलों में रहती है। उसी ने नन्दिनी को कात्यायनी माई के थान से यहाँ बुला भेजा था, जिसके यहाँ से तुम उस दिन नन्दिनी को निकाल लाये थे।"

विजय उठकर सीधा बैठ गया। फिर ख़ानख़ानाँ की आँखों में आँख डालते हुए उसने पूछा—"और वह मुग़ल अमीर कौन है जिसने उस महल में उस रात को नन्दिनी से भेंट की थी और जिसने फिर वहाँ से निकालकर नन्दा को सीकरी के उस गन्दे मकान में रक्खा था?"

कुछ देर आगा-पीछा करने के बाद बैरम ख़ाँ ने उत्तर दिया—"वह अमीर वही है जिसकी सदाक़त और नेकनीयती पर न सिर्फ़ मुग़लों को, आगरे के बच्चे-बच्चे को भरोसा है। और आख़िर में जिसकी गोद में नन्दिनी को सौंप कर तुम बेफ़िक्री की साँस ले रहे थे।"

अपने चाचा और शेख़ के कण्ठस्वर की एकता के संबंध में जेलख़ाने

में नन्दा ने जो कुछ कहा था, वह विजय को स्मरण हो आया। वह ख़ानख़ानाँ के चरणों में लोट गया और बोला—

"तब मुझसे बहुत बड़ी ग़लती हुई, पिता जी! मैं आपका जन्म-जन्म अपराधी रहूँगा! अब मेरा उद्धार इन्हीं चरणों में प्राण छोड़ने पर हो सकेगा।"

ख़ानख़ानाँ ने गम्भीर होकर कहा—अज़ीज़ शाहज़ादे! इन्सान को तौलने के लिए मुझे सिर्फ़ एक तराज़ू अल्लाहताला ने दी है—सचाई और ईमानदारी की। जो शख़्स इस तराज़ू पर पूरा तुल जाता है, उसका गुनाह न सिर्फ़ मेरी नज़र में, उस पाक परवर्दिगार की नज़र में भी क़ाबिले मुआफ़ी है। मुझे तुममें ये दोनों चीज़ें पूरी-पूरी दिखाई दीं।"

"तब मुझे मुआफ़ कर दीजिए, जहाँपनाह!"

"मुआफ़ तो तुम्हें नन्दा की सिफ़ारिश से मैं पहले ही कर चुका हूँ।"

"और मेरी सिफ़ारिश से?"

"तुम्हारा मतलब किससे है?"

"अपने उन तीन अभागे साथियों से, जो ग्वालियर के क़िले में क़ैद हैं और जिन्हें सज़ाये मौत का हुक्म हो चुका है।"

"उनकी रिहाई मेरे इख़्तियार से बाहर की बात है।"

"आप वकीले मुतलक़ हैं! आप सब कुछ कर सकते हैं, पिता जी।"

"दुरुस्त है। मगर उनके मुक़दमे के पूरे अख़्तियारात एक दूसरे शख़्स को दिये जा चुके हैं। वह जो कुछ मुनासिब समझेगा, करेगा।"

"अगर उन लोगों को भी मुआफ़ न किया गया तो मेरी रिहाई

और मुआफ़ी बेकार होगी। दुनिया और ज़माने की लानत और थूक अपने सिर पर लादकर मैं ज़िन्दा रहना नहीं चाहता।"

"मैं उन्हें छुड़ाने की कोशिश करूँगा।"

"मुझे वचन दीजिए।" कहकर याचनापूर्ण दृष्टि से विजय ने खानख़ानाँ के मुँह की ओर देखा।"

"मैं कह चुका हूँ। अब तुम मेरी गाड़ी पर चलकर नन्दा की हवेली में आराम करो। तब तक मैं तुम्हारे दोस्तों की बाबत पता लगाता हूँ। मगर ख़बरदार! नन्दा से इस मामले में एक बात भी न कहना।"

विजय ने उत्तर में सिर झुका दिया और फिर प्रसन्न होकर पाईं बाग़ से बाहर निकल गया। उसे आज अपना दिल ऐसा हलका लग रहा था जैसा पिछले बहुत समय से जब से उसने इस षड्यंत्र में भाग लिया था, नहीं लगा था।

पाईं बाग़ से निकलकर ख़ानख़ानाँ उन्हीं पैरों मुल्ला की हवेली पर जा पहुँचे। मुल्ला इस समय भीतर था। सदर फाटक पर जो उजबक दरबान पहरे पर तैनात था, वह न तो बैरम ख़ाँ के पद-गौरव से परिचित था और न उन्हें शक्ल-सूरत से ही पहचानता था। दूसरे ख़ानख़ानाँ इस प्रकार कहीं जाते-आते नहीं थे। और मुल्ला के घर पर तो वे शायद आज से पहले कभी नहीं गये थे। दरबान ने अपने नित्य के अभ्यासानुसार उन्हें द्वार पर ही रोकते हुए कहा—"यहीं ठहरिए, अन्दर जाने की इजाज़त नहीं है।"

"मुझे बहुत ज़रूरी काम से मिलना है।" ख़ानख़ानाँ ने आग्रह के साथ कहा।

"तो यहीं रुक जाइए। मालिक की इजाज़त मिलने पर अन्दर जा सकेंगे।"

बैरम ख़ाँ रुक गये, पर उन्हें बहुत बुरा लगा। दरबान का यह व्यवहार उन्हें अपमानजनक प्रतीत हुआ। यदि कोई और मौक़ा होता तो वे शायद इसे हँसकर टाल जाते; या यह समझ कर कि दरबान ने अपने कर्त्तव्य का ही पालन किया है, वे इसकी उपेक्षा कर जाते। पर

आज उनके मन की स्थिति दूसरे प्रकार की थी । वे जिस काम के लिए पैदल चलकर यहाँ तक आये थे, उसमें इस प्रकार विघ्न पड़ना उन्हें सह्य न हो सका। उन्हें इसमें मुल्ला की भी गुप्त अभिसंधि दिखाई दी । उन्होंने कुढ़ते हुए मन ही मन कहा—"बदेखुद करदारा दरमाँ नबाशद"—अर्थात् जो बुराई स्वयं अपने हाथों की है, उसका क्या इलाज ?

ख़ानख़ानाँ उलटे पाँव लौट जाने का विचार कर ही रहे थे कि दरबान के आगे-आगे स्वयं मुल्ला बाहर आ गया और वकीले मुतलक़ को उस अवस्था में वहाँ खड़ा देखकर उसके पाँव तले से ज़मीन खिसक गई। बड़े अदब से अभिवादन करके वह ख़ानख़ानाँ के पास पहुँचा और उनका हाथ पकड़कर बोला—"जहाँपनाह, यहाँ, इस हालत में ! अन्दर तशरीफ़ ले चलिए ।"

"तुम्हारे महल के क़ायदे की पाबन्दी में खड़ा हूँ ।" रुखाई से हाथ छुड़ाते हुए बैरम ख़ाँ ने कहा।

"मुआफ़ कीजिएगा, दरबान आपको पहचानता नहीं था ।"

"बल्कि तुम भी···!" भवों को अधिक बंक करते हुए उसी रुखाई से ख़ानख़ानाँ ने उत्तर दिया।

मुल्ला सहम गया।

रोषाग्नि को भीतर ही भीतर पीने की चेष्टा करते हुए ख़ानख़ानाँ ने खड़े ही खड़े पूछा—"ग्वालियर के वास्ते कोई हुक्मनामा भेजा है ?"

"हुक्मनामे तो कई भेजे गये हैं ।"

"मेरा मालब उस मामले से है, जिसकी समाअत सीस्तानी के सुपुर्द है !"

"उसके मुताल्लिक़ भी एक हुक्मनामा भेजा गया है।"

"कब ?"

"कुछ ही देर पहले।"

"उसमें क्या लिखा है ?"

"जहाँपनाह को सब मालूम है।"

"वही मज़मून जो उस दिन देखा था ?"

"क़रीब-क़रीब।"

"तुमने उसे अज़सरेनौ क़लमबंद करने का वादा किया था !"

"मगर बाद को उसे उसी शक्ल में रवाना करना ज़्यादा सही मालूम हुआ।"

"ऐसा क्यों ?"

"सल्तनत की बहबूदी इसी में समझ पड़ी।"

"मुझसे मशविरा करने की भी ज़रूरत नहीं समझी गई।"

"मुझे डर था कि जहाँपनाह उन लोगों को साफ़ छोड़ देने के लिए ज़ोर देंगे।"

ख़ैर, उन लोगों की सज़ा के लिए तारीख़ कौन-सी मुक़र्रर हुई है।"

"कल की !"

"और वक़्त ?"

"अलस्सुबह !"

"हरकारा किसी तरह वापस हो सकता है ?"

"अब ग़ैर मुमकिन है। वह पाँच-छः कोस पहुँच भी गया होगा।"

"रास्ते में कहीं क़याम ज़रूर करेगा !"

"कह दिया गया है कि सुबह होने के पेश्तर ही ग्वालियर पहुँच कर हुक्मनामा हाकिम को दे दे।"

"इतनी जल्दबाज़ी की ज़रूरत ?"

"मुझे यक़ीन था कि छोड़ दिये जाने पर वे लोग हमारा इस मुल्क में ठहरना दुशवार कर देंगे।"

"हूँ !"

बैरम ख़ाँ ने ज़मीन पर ज़ोर से पैर पटका। फिर क्रुद्ध सर्प की तरह फुफकार कर बोले—

"तुमने मुझे दीन-दुनिया कहीं का नहीं रक्खा। तुमने मेरी सारी ख़ुशी ग़ारत कर दी। मेरी सारी उम्मीदों पर पानी फेर दिया। मैं तुम्हें ज़ालिम और बेरहम ज़रूर समझता था, मगर दोस्तमार नहीं। ख़ैर, जो हुआ सो हुआ; अब बेहतरी इसी में है कि अलम, नक्क़ारा और मरातिब के वे सारे निशान जो मेरी तरफ़ से तुम्हें दिये गये थे, सुबह होने से पहले ही वापस कर दो। क्योंकि मुझे यक़ीन हो गया है कि तुम्हारे हौसले में जाहोजलाल और मरातिब के लिए जगह नहीं है।"

यह कहकर आग्नेय नेत्रों से मुल्ला को देखते हुए ख़ानख़ानाँ अपने महलों की ओर चल दिये। मुल्ला काठ की तरह खड़ा-खड़ा सब देखता रहा। उसे इतना साहस भी न हुआ कि जाकर उनके पैरों पर गिरकर क्षमा-याचना कर सके।

दीवानख़ाने में पहुँचते ही बैरम ख़ाँ ने तुरन्त विजयपाल को बुला भेजा। उसके आ जाने पर कहा—"एक बहुत बड़ी ग़लती हो चुकी है। अब समझ में नहीं आता कि उसकी दुरुस्ती किस तरह हो।"

बैरम ख़ाँ के सहजगंभीर मुख पर ऐसी घबराहट इससे पहले विजय ने कभी न देखी थी। उसका मुँह सूख गया। वह निर्निमेष दृष्टि से उनके मुख की ओर देखता रह गया।

उसे इस तरह खड़े देख बैरम ख़ाँ ने कहा—"मौत का परवाना लेकर हरकारा ग्वालियर को रवाना हो चुका है।"

"कब ?"

"कुछ देर पहले।"

"अब क्या होगा ?" सकपकाते हुए विजय ने प्रश्न किया।

"होगा क्या, सदरुस्सदूर के हुक्म के मुताबिक़ कल अलस्सुबह उन लोगों को सज़ा दे दी जायगी।"

"और आप कुछ न करेंगे ?" क्षोभ और निराशा-मिश्रित स्वर में ख़ानख़ानाँ की ओर देखते हुए विजय ने पूछा।

"मैं अब सिर्फ़ यह कर सकता हूँ कि अपने क़लम से उन लोगों की रिहाई का परवाना लिख भेजूँ। पर वह बेसूद होगा। उसके वहाँ पहुँचने के पेश्तर ही वे लोग मौत के घाट उतार दिये जायँगे।"

विजय के तमसाच्छादित हृदयाकाश में सहसा आशा की बिजली कौंध गई। उसने तुरन्त कहा—"आप हुक्मनामा मुझे दिला दीजिए और एक घोड़ा भी। मैं सुबह होने से पेश्तर ही ग्वालियर पहुँच जाऊँगा।"

"अच्छी बात है ! आप तैयार होकर आजाइए। बाक़ी इन्तज़ाम मैं कर रहा हूँ।" कहकर ख़ानख़ानाँ ने क़लमदान निकाला। विजय भी तैयार होने के लिए नन्दा की हवेली की ओर चल दिया।

विजय की हड़बड़ी और तैयारी ने नन्दा को फिर आशंकित कर

दिया। वह सामने आकर खड़ी हो गई और घबराई आवाज़ में बोली—"अब कहाँ की तैयारियाँ हो रही हैं?"

"बड़ा ज़रूरी काम आ गया है, नन्दा! मुझे इसी वक़्त ग्वालियर जाना होगा।" अँगरखे की तनियाँ कसते-कसते विजय ने उत्तर दिया।

"रात में?...नहीं, इस वक़्त मैं आपको बाहर न जाने दूँगी।" विजय का हाथ पकड़ते हुए नन्दा ने कहा।

"और अगर मैं इसी वक़्त न चल दिया तो सब चौपट हो जायगा।" जूते में पैर डालते-डालते विजय ने कहा।

"तुम फिर हठ करने लगे। मैं कहती हूँ, सबेरे जाना।"

"नहीं नन्दा; मेरे साथी ग्वालियर में क़ैद हैं। उनको फाँसी की सज़ा सुनाई जा चुकी है। उन्हीं की रिहाई का हुक्म लेकर मैं जा रहा हूँ।"

नन्दा काँप उठी। वह विजय के और अधिक निकट जाते हुए बोली—"किसी हरकारे को भेज दो, प्यारे विजय! तुम न जाओ।"

"नहीं नन्दा, हरकारे से यह काम न होगा। मुझे ही जाना पड़ेगा।" विजय ने नन्दा का समाधान करने की चेष्टा करते हुए कहा।

"मेरा दिल बहुत कच्चा हो रहा है, प्यारे विजय! मेरी दाहिनी आँख फड़क रही है। माता जी कहती थीं कि स्त्री की दाहिनी आँख का फड़कना बहुत अशुभ होता है।"

"अशुभ तो अब दूर हो चुका है। अब सब शुभ ही शुभ है। ग्वालियर से लौटते ही हम दोनों विवाह-बन्धन में बँधेंगे और फिर हम दोनों को कोई एक-दूसरे से अलग न कर सकेगा।"

"सुख के दिन आने पर देवता भी ईर्ष्या करने लगते हैं। प्यारे

विजय ! इसी लिए विवाह के एक-दो सप्ताह पूर्व से ही वर को घर से बाहर नहीं निकलने देते। मैं भी तुम्हें नहीं जाने दूँगी।" लता की भाँति विजय को परिवेष्टित करते हुए नन्दा ने कहा।

"मुझे रोको मत, नन्दा। बस, इस बार मेरी बात और मान लो। फिर मैं तुम्हारे पास से क्षण भर को अलग न होऊँगा।" नन्दा से अपने को अलग करने की चेष्टा करते हुए विजय ने कहा।

"अच्छी बात है। तुम जाओ। पर मेरी भी एक बात तुम्हें माननी पड़ेगी!"

"वह क्या?" प्रसन्नता के आवेग में विजय ने पूछा।

"मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगी।"

"यह कैसे संभव हो सकता है, नन्दा! घोड़े को पूरी तेज़ी से दौड़ाते हुए मुझे वहाँ पहुँचना है। तुमने घोड़े की सवारी कभी की नहीं। भला इतने लम्बे सफ़र में तुम्हें...?"

"मुझे अपने पीछे बिठा लेना, प्यारे विजय! मैं तुम्हारी पीठ का सहारा लिये रहूँगी। मुझे विश्वास है...!"

"और शेख़ साहब क्या कहेंगे?" भर्त्सना मिश्रित स्वर में विजय ने कहा।

"वे कुछ न कहेंगे। वे बहुत सज्जन हैं। उनके लिए एक पत्र लिखकर रख दीजिए।"

"नहीं नन्दा, यह बहुत अनुचित होगा। जानती हो, हम पर उनके कितने उपकार हैं?"

"फिर भी वे बुरा न मानेंगे। मैं विश्वास दिलाती हूँ।"

नहीं नन्दा, ऐसी छोटी-छोटी बातों के लिए हमें उनका दिल नहीं दुखाना चाहिए।" चलने की अन्तिम तैयारी करते हुए विजय ने कहा।

तब तुमने मुझे छोड़कर चले जाने का ही निश्चय कर लिया है?" नन्दा के स्वर में तेज़ी थी, और आँखों में रुखाई।

विजय अप्रतिभ हो गया। नम्र स्वर में बोला, "नहीं नन्दा, तुम्हें छोड़कर मैं नहीं जा रहा हूँ। परवाना देकर मैं उलटे पाँव लौट आऊँगा।"

चाँदी ने इसी समय आकर सूचना दी कि घोड़ा तैयार है। विजय द्वार की ओर अग्रसर हुआ।

हताश नन्दा ने दोनों हाथों से अपना मुँह ढक लिया और बिलखती हुई बोली—"हाय रे मेरा भाग्य!"

विजय घूमकर खड़ा हो गया। उसे घूमते देख नन्दा ने अपना मुँह दूसरी ओर फेर लिया।

"यह क्या कर रही हो, नन्दा!" विजय ने आक्रोशपूर्ण स्वर में कहा।

"अपने भाग्य को रो रही हूँ जो मुझे ये आँख-मिचौनी के खेल खिला रहा है। क्षण भर के लिए मिलन, और फिर पहाड़-सी वियोग-भरी रातें!" कह कर नन्दा ज़ोर से फूट-फूट कर रोने लगी।

"इस तरह रोकर जी कच्चा न करो, नन्दा। तुम जानती हो कि तुम्हारे एक आँसू का मूल्य मेरी दृष्टि में अपने सौ जीवनों से अधिक है।" यह कहकर विजय ने उसका सिर अपनी छाती से सटा लिया।

कुछ क्षण तक इसी अवस्था में खड़े रहने के पश्चात् नन्दा ने पूछा—"तब जाना ही स्थिर रहा ?"

"जाना तो होगा ही, नन्दा।"

"अच्छी बात है।" कहकर नन्दा ने अपने दोनों हाथ विजय की ग्रीवा में डाल दिये। फिर अपने शरीर का भार देकर उसने विजय का सिर नीचे की ओर झुकाने का प्रयत्न किया। उसके इस अप्रकट संकेत पर जब विजय ने अपना सिर नीचे को झुका दिया तब नन्दा ने अपने अधरोष्ठ विजय के अधरोष्ठों पर रख दिये।

कुछ देर तक नन्दा निश्चेष्ट इसी अवस्था में खड़ी रही। फिर सहसा अलग हट गई और बोली—"अब आप जाइए। अब मैं न रोकूँगी। मैं जो चाहती थी, वह मुझे मिल गया। मेरा जीवन सार्थक हो गया। अब आवश्यकता पड़ने पर मैं शान्ति से मर सकूँगी।"

विजय मुस्कराता हुआ बाहर हो गया। आग्रहपूर्ण प्रेम की एक घड़ी अपने जीवन में उसे सबसे अधिक मधुर, सबसे अधिक अमृतमय प्रतीत हुई।

आज्ञापत्र और घोड़ा लिये बाहर नौकर तैयार खड़ा था।

विजय अविलम्ब घोड़े पर सवार हो गया और उसकी बाग ग्वालियर की ओर मोड़ते हुए उसने दोनों एड़ें एक साथ लगा दीं। घोड़ा जैसे हवा में उड़ चला। अंधकार में भूत की तरह खड़े मकानों और अड्डेदार की पुकार 'घोड़ा तैयार है, हुज़ूर' से ही विजय ने अनुमान कर लिया कि पहला पड़ाव निकल रहा है।

उसने घोड़े को और भी गरम किया। दूसरा पड़ाव भी इसी तरह

निकल गया। विजय के घोड़े में अभी काफ़ी दम था। तीसरे पड़ाव तक पहुँचने के पहले ही घोड़े ने अपनी चाल धीमी कर दी। विजय ने चाँदनी के सहारे देखा उसकी गर्दन और मुँह से फेन के टुकड़े गिर रहे थे और बढ़ती हुई श्वास-प्रश्वास से तंग अब तब कर रहा था।

पड़ाव पर पहुँच कर घोड़ा आप से आप रुक गया। अड्डेदार घोड़ा लिये तैयार खड़ा था। उसके हाथ पर कुछ रखकर विजय घोड़े पर सवार हो गया और फिर उड़ चला।

यह घोड़ा भी अच्छा था। सवार के एक बार के संकेत पर ही वह पूरी चाल पर आ गया। विजय ने उसे और बढ़ावा दिया। एक पड़ाव वह बिना रुके ही पार कर गया, पर अगले पड़ाव पर पहुँचने से पहले ही कन्नी काटने लगा। जैसे-तैसे पड़ाव पर पहुँच कर घोड़ा बदलते हुए उसने अड्डेदार से पूछा—"ग्वालियर कितने पड़ाव आगे है?"

"पाँच पड़ाव और!" ताज़े घोड़े की रास हाथ में थमाते हुए अड्डेदार ने उत्तर दिया। विजय को प्यास लगी थी, फिर भी उसने पानी न पिया और सवार होकर आगे चल दिया। राह में बराबर उसकी आँखें पूर्व की क्षितिज पर जमी थीं और वह सूर्योदय के प्रत्येक चिह्न का भय और आशंका के साथ निरीक्षण कर रहा था। साथ ही उसके कान किनारे के वृक्षों पर बसेरा लेनेवाले पक्षियों की कलध्वनि की ओर लगे हुए थे। वह तीर की तरह बढ़ता जा रहा था।

चम्बल नदी के पुल पर उसने फिर घोड़ा बदला। एक गिलास पानी भी माँग कर पिया। आधे से अधिक मार्ग समाप्त हो चुका था।

पूर्व में प्रभात का अभी कोई चिह्न न था। सन्तोष की साँस लेते हुए उसने अड्डेदार से प्रश्न किया—"पहला हरकारा कितना आगे गया है!"

"काफ़ी देर हुई। अब तक ग्वालियर के आस-पास पहुँच गया होगा।"

"कोई हर्ज़ नहीं।" कहकर विजय कूद कर घोड़े पर सवार हो तीर की तरह उड़ चला।

पुल से अभी दो-ढाई कोस ही पहुँचा होगा कि उधर से दो बहलियाँ आती हुई उसे मिलीं। पूरी रफ़्तार पर भागते हुए घोड़े ने उन्हें देखा और कतराकर सफ़ाई से निकल गया। घोड़े की इस चालाकी पर विजय को प्रसन्नता अवश्य हुई, पर साथ ही बहलियों को देखकर उसे चिन्ता भी हुई। बहलियाँ शायद अगले पड़ाव से आई थीं। यदि यह सच था तो सबेरा होने में अब अधिक देर नहीं है। उसने अन्वेषक की दृष्टि से पूर्व की ओर देखा। शुक्रोदय हो चुका था, यद्यपि उषा की लाली पूर्वी क्षितिज पर अब तक नहीं छितराई थी। उसने ध्यान के साथ आगे सड़क की ओर देखा। उन बहलियों के सिवाय और कोई यात्री उस पर नहीं दिखाई पड़ा।

चम्बल के बाद तीसरे पड़ाव पर उसने फिर घोड़ा बदला। उसका शरीर थककर चूर हो गया था। फिर भी जैसे कोई अदृश्य शक्ति प्रतिक्षण उसे आगे बढ़ने को प्रेरित कर रही थी।

एक पड़ाव और गया। सड़क पर यातायात अब काफ़ी हो रहा था। पूर्व की दिशा में लाली छितरा गई थी। निराशा भरी दृष्टि से उसने सामने

की ओर देखा। दूर क्षितिज के वृक्षों पर क़िले का गुम्बद मुकुट की भाँति दिखाई पड़ रहा था।

"अब अधिक दूर नहीं है," कहकर विजय ने घोड़े को और तेज़ कर दिया।

घोड़ा रही-सही शक्ति बटोरकर पूरे वेग से भागा। विजय की आँखें निर्निमेष गुम्बद पर टिकी थीं। सहसा शहरपनाह के द्वार पर पहुँचते-पहुँचते घोड़ा लड़खड़ाया। विजय ने ज़ोर से लगाम खींचकर उसे गिरने से रोक लिया और एड़ तथा चाबुक के प्रयोग से उसे सचेत करने का प्रयत्न किया। इसका थके घोड़े पर कुछ प्रभाव हुआ अवश्य, किन्तु लगभग १०० गज़ आगे वह फिर एक पत्थर से टकराकर गिर पड़ा। अब उसे उठाकर खड़ा करना असंभव था।

अपनी नौका को किनारे पर डूबते देखकर हताश नाविक जिस प्रकार उसे छोड़ जल में कूद पड़ता है, उसी प्रकार विजय भी घोड़े को छोड़कर अलग खड़ा हो गया, और उसे उठाने में समय व्यय न कर पैदल ही क़िले की ओर चल पड़ा। राजपथ शून्य था। प्रभात हो जाने पर भी नागरिकों में जीवन-संचार नहीं हुआ, यह देखकर उसे कुछ आश्चर्य हुआ। पर वह अविराम गति से क़िले की ओर बढ़ता ही गया।

चार या पाँच चौराहे पार करने के बाद वह उस सड़क पर पहुँचा जो सीधी क़िले को जाती थी। इस सड़क पर बहुत अधिक भीड़-भाड़ थी। चिन्तित और विषण्ण नागरिक इधर-उधर देखते और परस्पर काना-फूसी करते हुए क़िले की ओर जा रहे थे। इसी समय विजय के कान में दमामे का शब्द पड़ा। उसका हृदय दहल उठा।

अत्यधिक प्रयत्न से भीड़ के भीतर मार्ग बनाता हुआ वह आगे बढ़ा। वह ज्यों-ज्यों आगे बढ़ता भीड़ भी त्यों-त्यों बढ़ती जाती थी और आगे बढ़ना अधिक कठिन होता जाता। दमामे का शब्द भी कुछ-कुछ अन्तर से उसके कानों में बराबर पड़ रहा था। पर उसे किसी की परवाह नहीं थी। हाथ में काग़ज़ को मज़बूती से दबाये धक्का-मुक्की करता हुआ वह भीड़ को चीरता आगे बढ़ता रहा।

सामने एक बड़ा फाटक था। उसके दोनों पार्श्वों में खड़े कई पहरेदार यातायात का नियंत्रण कर रहे थे। विजय फाटक पार कर एक सहन में पहुँचा जहाँ मख़मली घास बिछी थी और जो चारों ओर से ऊँची-ऊँची दीवालों से घिरा था।

जनसमूह आगे बढ़ रहा था। वह भी बढ़ता गया। सामने ही एक दूसरा फाटक था। इस फाटक को लाँघने पर उसे एक बड़ा सहन मिला जो पहले की तरह ही था। इसी सहन में आकर सब लोग दीवाल के पास किनारे-किनारे जमा हो रहे थे।

विजय ने देखा, सहन के बीचोंबीच एक ऊँचा चबूतरा बना है जिस पर पाँच-छः अधिकारी बैठे मूँछों पर ताव दे रहे हैं। चबूतरे से कुछ दूर हटकर चार मस्त हाथी खड़े झूम रहे हैं। दूसरी ओर दो दमामे बराबर में रक्खे हैं जिनके पास चोबें उठाये दो चोबदार संकेत की प्रतीक्षा में खड़े हैं। चबूतरे के चारों ओर घुड़सवार सैनिक खड़े हैं, एक-दूसरे के बीच कुछ जगह छोड़कर। जिससे दर्शकों को भीतर की कार्यवाही को देखने में रुकावट न हो। वह चबूतरे की ओर बढ़ा। इसी समय दमामे

का ज़ोर का शब्द हुआ और खड़े हाथियों में से एक चिंघाड़ कर सूँड़ उठाये आगे बढ़ा। दर्शकों में हड़कम्प मच गया।

"सल्तनत के दुश्मन पामाल हों।" अधिकारियों में से एक ने ज़ोर से पुकारा। साथ ही दमामे का भी शब्द हुआ। अश्वारोहियों के पास पहुँचते-पहुँचते विजय ने देखा, दो आदमी ख़ून से लथपथ एक लाश को उठाकर लाये और उसे चबूतरे पर एक किनारे रख दिया। वहाँ एक और लाश पहले से रक्खी फड़क रही थी। विजय किंकर्त्तव्य विमूढ़ की भाँति अश्वारोहियों के पीछे खड़ा हो गया।

दमामे का फिर शब्द हुआ।

चबूतरे पर बैठे अधिकारियों में से एक ने उठकर कहा—"शाहंशाह सलामत रहें, सल्तनत के दुश्मन पामाल हों।"

शेष लोगों ने भी सिर झुकाकर जैसे उसके कथन का अनुमोदन किया। हाथियों के अफ़सर ने सामने खड़े होकर प्रार्थना की :—

"सल्तनत के दुश्मनों की पामाली और हुज़ूर शाहंशाह की नमकहलाली का मौक़ा इस बार हमारे जंगी हाथी 'जल जंगल' को दिया जाय।"

"दुरुस्त है। 'जल जंगल' को आगे बढ़ाओ।" अधिकारी ने हुक्म दे दिया।

विजय ने चाहा, बैरम ख़ाँ का आज्ञा-पत्र दिखाकर अधिकारी को रोक दे। पर उसी समय उसकी निगाह मुराद और इम्दाद ख़ाँ की फड़कती लाशों पर पड़ी। साथ ही उसने चम्पालाल को भी देखा, जो

चबूतरे से कुछ दूर पर बँधा दोनों हाथ जोड़े, आकाश की ओर देख रहा था।

महावत का संकेत पाकर 'जल जंगल' चिंघाड़ा और झूमता हुआ निर्दिष्ट स्थल की ओर बढ़ा।

विजय ने आज्ञापत्र अधिकारियों की ओर फेंक दिया। फिर "मैं भी आ गया चम्पालाल जी," कहता हुआ उछलकर उसके पास जा पहुँचा। किसी अज्ञात प्रेरणा से दोनों मित्र एक दूसरे के हृदय से चिपट गये। 'जल जंगल' बढ़ा और दोनों को पीसता हुआ निकल गया।

उपस्थित जनता भय से चीख़ उठी। सबने देखा, हाथी के पहाड़ जैसे पैरों के नीचे कुचले जाने पर भी स्नेहीमित्रों का स्नेहपाश शिथिल नहीं हुआ था।

सूर्योदय में अभी विलम्ब था। सलीमशाह के महल से निकलकर एक घोड़ागाडी पूर्व की ओर जा रही थी। मुश्की रंग के दो घोड़े उसमें जुते थे जिनकी वागें सँभाले दो कोचवान कोचबक्स में बैठे थे। पीछे के पायदान पर दो अरदली हथियार लगाये खड़े थे।

गाड़ी की खिडकियाँ बन्द थीं। घोड़े निर्बाधगति से चल रहे थे। सूर्य निकलने से पहले ही वे पहिले पड़ाव से आगे बढ़ गये।

धीरे-धीरे गाड़ी की दाहनी ओर की खिड़की खुली और एक स्त्री का गोरा-गोरा हाथ बाहर निकला। नवग्रहो के रत्न नवोदित सूर्य की किरणों में चमक उठे।

"देख नन्दा, सूरज निकल रहा है।" गाड़ी में उस स्त्री का कण्ठस्वर सुनाई दिया।

धीमे स्वर में नन्दा ने उत्तर दिया—"सूरज अब कभी नहीं निकलेगा, माता जी!"

राजरानी ने फिर कुछ न कहा। वह पीछे छूटते हुए वृक्षों को शून्य दृष्टि से बैठी देखती रही।

"उठ नन्दा, देख दूसरा पड़ाव आ गया है।" नन्दा को जगाने की चेष्टा करते हुए राजरानी ने कहा।

"दूसरा पड़ाव!···यहीं से तो वे हमसे अलग हुए थे!" कहकर नन्दा ने एक गहरी साँस ली और फिर अर्द्धजाग्रत्-सी अवस्था में पूर्ववत् पड़ रही।

"उठ नन्दा, क्या रात-दिन सोया ही करेगी। ज़रा आँखें खोलकर देख तो···?"

इससे पूर्व कि नन्दा कुछ कहे, गाड़ी कात्यायनी माई के थान में प्रवेश कर रही थी।

"आ गई मेरी बच्ची, अपने आश्रम में शान्ति से रहने के लिए!" गाड़ी पर से अपनी गोद में नन्दा को सँभालते-सँभालते कात्यायनी माई ने कहा।

"रहने के लिए नहीं, माता जी मरने के लिए!" नन्दा ने अवरुद्ध कण्ठ से उत्तर दिया और बहुत देर से रोके हुए आँसुओं से आश्रम की भूमि को सींचने लगी।

अब नन्दा अपनी कोठरी में गई। कोठरी की प्रत्येक वस्तु वैसी ही रक्खी थी जैसा कि उसे छोड़कर वह एक महीने पहले गई थी।

शनैः शनैः ग्रीष्म का तेज बढ़ने लगा। हहर हहर कर लूएँ चलने लगीं। आकाश-भूमि सब तपने लगीं। थान की पथरीली दीवालें दोपहर में तवे की तरह गर्म हो जाती थीं। नन्दा भी अपनी कोठरी में पड़ी गर्म उसाँसें लेती रहती थी।

ज्येष्ठ का दशहरा आया। आश्रम की सभी महिलायें राजघाट पर स्नान करने गईं। उनके आग्रह पर नन्दा भी साथ चली गई। उसने

भी भागीरथी में स्नान किया और अजयपाल की मूर्त्ति को दूध-बताशा चढ़ाया।

धीरे-धीरे ऊष्मा कुछ कम हुई। आकाश मेघों से घिर गया। पुरवाई खिड़की की राह नन्दा की कोठरी में आती और उसके दुर्बल शरीर में हड़कम्प पैदाकर जाती।

बादल और घने हुए। बगलों की श्वेत पंक्तियाँ वायु को चीरकर सामने उड़ने लगीं। धाराधर बरसने लगे। कालिन्दी उमड़ चली। ऊमस के कारण भीतर रहना असंभव हो गया। फिर भी नन्दा अपनी कोठरी में ही रहती थी। किसी आश्रमवासिनी के विशेष आग्रह पर ही वह कभी-कभी सहन में निकल कर टहलती या उनके साथ जाकर नदी में उषा-स्नान कर आती।

शरद् के आगमन के साथ-साथ नदी का जल और भी निर्मल हो गया। दोनों तट मीलों तक फूले हुए काँस से भर गये। जैसे धोबियों ने श्वेत वस्त्र धोकर फैला दिये हों। नन्दा खिडकी खोलकर इस दृश्य को बैठी घंटों निर्निमेष देखा करती और अतीत की स्मृतियों में खो जाती।

एक संध्या को विगत जीवन की स्मृतियाँ उसके चित्त को असाधारण रूप से आन्दोलित करने लगीं। उनसे छुटकारा पाने के लिए उसने नदी की ओर की खिड़की खोल दी और झाँककर बाहर की ओर देखा। छिछली धारा धीरे-धीरे बह रही थी।

उसकी आँखें नदी के दूसरे तट पर टिक गईं। वे शायद जवासे के उस छोटे-से पौधे को खोज निकालने का प्रयत्न कर रही थीं जिसके सहारे विजय अपना घोड़ा छोड़ दिया करता था। कुछ देर इसी प्रकार देखकर

ठंढी साँस भरकर उसने खिड़की से नीचे को झाँका। शायद नीचे की सिकता पर विजय के उस दिन के पद-चिह्न...!"

नन्दा का हृदय भीतर ही भीतर मसोस उठा। शून्य के सिवा वहाँ और कुछ न था। वह फिर खाट पर लेट रही और बचपन में याद किये रामायण के निम्नश्लोक गुनगुनाने लगी—

यतोऽहं राघवादन्यं मनसापि न चिन्तये।
ततो मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हसि॥

मनसा कर्मणा वाचा यतो रामं समर्चये।
ततो मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हसि॥

यथैतत्सत्यमुक्तं मे वेद्मि रामात्परं न च।
ततो मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हसि॥

× × ×

मैं राम के सिवा दूसरे का मन से चिन्तन भी नहीं करती। यदि यह सत्य है तो भगवती पृथ्वी मुझे अपनी गोद में स्थान दें। यदि मैं मन, वाणी और कर्म से केवल राम से ही प्रेम करती हूँ तो भगवती पृथ्वी मुझे अपनी गोद में स्थान दें। राम को छोड़कर मैं दूसरे किसी को नहीं जानती, यदि मेरा यह कथन सत्य हो, तो भगवती पृथ्वी मुझे अपनी गोद में स्थान दें।

———